

ज्ञान चेतना वर्ष

पढमं णाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सब्बसंजए ।

अण्णाणी किं काही किं वा णाही सेयपावमं ॥

सबसे पहला स्थान ज्ञान का है। और उसके बाद दया अर्थात् क्रिया है। ज्ञानपूर्वक क्रिया करने से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। अज्ञानी जिसे साध्य साधन का भी ज्ञान नहीं है, वह क्या कर सकता है? वह अपने कल्याण और अकल्याण को भी कैसे समझ सकता है।

इस विषय को लेकर हुक्म संघ के नवम् पट्टधर १००८ आचार्य श्री रामलालजी म. सा. ने चतुर्विध संघ के उपर महती कृपा करके पिछले सात वर्ष से ज्ञान के उपर विशेष बल देते हुए अनेक आयामों के माध्यम से जो श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने चार तीर्थ बताए हैं, साधु साध्वी, श्रावक व श्राविका वर्ग इन सभी को ज्ञान वर्धन में लगा दिया है। आचार्य भगवंत चाहते हैं की मेरा श्रावक वर्ग ज्ञानवान बनें, क्रियावान बने व अपना वर्तमान जीवन मोक्षगामी बनावे।

इस वर्ष को तो आचार्य श्री ने "ज्ञान चेतना वर्ष" घोषित करके जो चार आयाम दिए हैं वास्तव में एक श्रावक को इतना ज्ञान आवश्यक है। हम शासनिष्ठ के उपकारों को भूल नहीं सकते हैं। आचार्य श्री के आशीर्वाद से मुझे भी चारों आयाम लगभग पूर्ण करने का सामर्थ्य मिला है। आप सभी पाठक बन्धुओं से यही निवेदन करना चाहता हूँ कि अ. भा. सा. समता युवा संघ ने आचार्य श्री रामेश के आह्वान को घर-घर तक पहुंचाने का प्रयास किया है, और चारों आयामों को एक ही पुस्तक में संकलन करके इस पुस्तक का प्रकाशन कराया है। आप इसे कंठस्थ कर अपना जीवन ज्ञानमय और क्रियामय बनाकर कल्याण मार्ग की ओर प्रशस्त करें।

शुभमंगल।

अशोक चीपड - (प्रतापगढ़)

अध्यक्ष

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन समता युवा संघ

(प्रधान कार्यालय - रतलाम)

॥ श्री महावीराय नमः ॥

ज्ञान चेतना के चार आयाम

संकलनकर्ता : सम्पतराज रांके

सह संकलन : महेश नाहटा

प्रकाशक :

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन समता युवा संघ

रतलाम (म. प्र.)

पुस्तक का नाम	:	ज्ञान चेतना के चार आयाम
मूल्य	:	रुपये 10 /- (अर्ध मूल्य)
संकलन कर्ता	:	सम्पतराज रांका - मुंबई
संस्करण	:	प्रथम आवृत्ती : 3000, जून 2006 द्वितीय आवृत्ती : 1500, जौलाई 2006 तृतीय आवृत्ती : 2000, अगस्त 2006
प्रकाशक एवं पुस्तक प्राप्ती स्थान	:	(1) श्री अ. भा साधुमार्गी जैन समता युवा संघ समता परिसर, हाथीराम दरवाजा, रतलाम (म. प्र) - 457 001 फोन : (0741) 2241706 (2) छाजदेवी दुल्हराज रांका चॅरिटेबल ट्रस्ट सी-21, भारत नगर, ग्रान्ट रोड (पूर्व), मुंबई - 400 007. फोन : (022) 23074892, 23079876
मुद्रक	:	माऊली प्रिन्टर्स एण्ड आर्ट्स, भायखला, मुंबई

**आचार्य श्री रामेश का है फरमान ।
हर गृहस्थ बन जाये क्रियावान ॥**

**आचार्य श्री रामेश के सपनों को पूरा करे ।
9 तत्त्व के ज्ञाता बने, 12 व्रत धारक बने ॥**

प्रकाशकीय

निर्गन्ध श्रमण संस्कृति के संरक्षण में, आधुनिक युग में आचार्य १००८ श्री राम लाल जी म. सा. का विशेष योगदान है। आचार्य वृद्धि के प्रति आप सतत जागरूक हैं। निर्मल साधना के आप प्रतिक हैं। इसी संदर्भ में ज्ञान चेतना के चार आयाम का संकलन किया गया है जिसके अन्तर्गत श्रावक श्राविकाओं के लिए समुचित जानकारी हेतु, शास्त्रीय दृष्टीकोण को मध्यनजर रखते हुए पूर्णतया सावधानी के साथ जैन दर्शन के आगमिक घरातल पर सम्पादन किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक को आचार्य भगवान व सभी सन्त महापुरुषों एवम् महासतियाँ जी म. सा. का आशिर्वाद प्राप्त हो तथा आचार्य भगवान द्वारा २००५-०६ के ज्ञान चेतना वर्ष के उपलक्ष में यह पुस्तक कारगर सिद्ध हो, एवम् उनके संघ आवाहन, "अहो श्रावक श्राविकाओ व्रत्तधारी बनो, तत्त्वज्ञाता बनो" का संदेश जन-जन तक पहुँचे।

ज्ञान चेतना के चार आयाम पुस्तक का पूर्णतया ध्यान रखते हुए संकलन किया गया है, परन्तु फिर भी कोई त्रुटी एवं अशुद्धी के लिए क्षमा चाहते हैं।

समता युवा संघ (मुंबई)

हेमंत सिंगी
विवेन्द्र अभ्याणी

सुन्दरलाल बोथरा
शेकेन्द्र छाजेड़

महेन्द्र चोरडिया

अ. भा. सा. जैन समता युवा संघ (रतलाम)

अशोक चिपड़
अध्यक्ष

विनीद मेहता
महामंत्री

आचार्य श्री नानेश

एक परिचय

- १) आचार्य श्री नानेश का जन्म वि. सं. १९७७ ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया को दांता गाँव (राजस्थान) में हुआ। आपकी माताजी श्रीमती श्रृंगारबाई पोखरना एवं पिता श्रीमान मोडीलालजी पोखरना थे। आपकी दीक्षा विक्रम सम्वत् १९९६ को कपासनमें हुई। आचार्य पद वि. सं. २०१९ माघ कृष्णा द्वितीया को उदयपुर में प्राप्त हुआ।
- २) लगभग ६० वर्ष तक संयम साधना की कठोर मर्यादाओं में रहकर मुक्ति पथ पर कदम बढ़ाया।
- ३) लगभग ३८ वर्षों तक आचार्य पद पर आसीन होकर हजारों कि.मी. की पदयात्रा करके जनसाधारण को अपने मधुर, प्रेरक एवं मर्मस्पर्शी उपदेशों से लाभान्वित किया।
- ४) लगभग एक लाख से अधिक बलाई जाति के व्यक्तियों को व्यसन मुक्त बनाकर मानवीय गुणों में सम्पन्न किया तथा उन्हें धर्मपाल संज्ञा प्रदान की।
- ५) तनावयुक्त जीवन से मुक्ति पाने एवं आत्म शान्ति के लिए समीक्षण ध्यान, तथा विश्व शान्ति के लिए समता दर्शन का प्रवर्तन किया।
- ६) लगभग ३५० भव्य आत्माओं को प्रवर्जित कर आगार से अणगार धर्म में प्रवेश दिया। आपके सानिध्य में अनेकानेक भव्य आत्माओं ने श्रावक धर्म स्वीकार किया।
- ७) आचार्य श्री का संस्कृत, प्राकृत तथा हिन्दी आदि भाषाओं पर पूर्ण अधिकार था।
- ८) आचार्य श्री की प्रसिद्ध कृतियों में समता दर्शन और व्यवहार, समीक्षण धारा, गहरी पर्त के हस्ताक्षर, क्रोध समीक्षण, मान समीक्षण, माया समीक्षण, लोभ समीक्षण, ऐसे जीए, जिण धम्मो आदि प्रमुख हैं।
- ९) कर्म प्रकृति, भगवती सूत्र, आचारांग सूत्र, अन्तगडदशांग सूत्र, कल्प सूत्र आदि शास्त्रों का अनुवाद कर आगम सम्मत हृदयस्पर्शी अभिनव विवेचना प्रस्तुत की।
- १०) आचार्य श्री नानेश का संलेखना संथारा पूर्वक महाप्रयाण वि. सं. २०५६ कार्तिक कृष्णा तृतीया (२७ अक्टूबर, १९९९ बुधवार) को उदयपुर (राज.) में हुआ।

चाहे जो मजबूरी हो - सामायिक स्वाध्याय जरूरी हो।

आचार्य श्री रामेश

- १) आचार्य श्री रामेश का जन्म थली प्रान्त के देशनोक ग्राम (राज.) में चैत्र शुक्ला चतुर्दशी वि. सं. २००९ में हुआ। आपकी माताजी धर्मनिष्ठ सुश्राविका श्रीमती गवराबाईजी थी। आप श्री के पिता धर्मनिष्ठ सुश्रावक श्रीमान नेमचन्दजी भूरा थे।
- २) अनाथी मुनि की तरह दृढ़ संकल्प के साथ माघ शुक्ला १२ सन् १९७४ देशनोक में समीक्षण ध्यान योगी, समता विभूति श्रद्धेय गुरुवर आचार्य श्री नानेश से प्रवज्या अंगीकार की।
- ३) चित्तौडगढ में आश्विन शुक्ला द्वितीया सन् १९९० को आचार्य श्री नानेश द्वारा "मुनिप्रवर" की उपाधि से विभूषित किया गया।
- ४) बीकानेर में फाल्गुन शुक्ला तृतीया सन् १९९२ को आचार्य श्री नानेश ने उत्कृष्ट मुनिचर्चा, स्व पर अनुशासन की विशिष्ट क्षमता, सेवा गुण सम्पन्नता बहुज्ञता, धीरादन्त चरित्रण आदि आचार्यत्व के विशिष्ट गुणों से सम्पन्न मुनिप्रवर श्री रामलाल जी म सा को हुक्म संघ के नवम् पट्टधर के रूप में "युवाचार्य" पद प्रदान किया।
- ५) अद्भूत व्यक्तित्व के धनी, कठोर संयम के पक्षधर, संयम के प्रति सजग, ज्ञानार्जन के प्रति विशिष्ट रुझान रखने वाले युवाचार्य श्री रामेश उदयपुर में कार्तिक कृष्णा तृतीया वि. सं. २०५६, २७ अक्टूबर १९९९ को "आचार्य पद" पर विराजित हुए। श्री संघ का कुशल नेतृत्व करते हुए अभी तक लगभग १५० आत्माओं को आपने प्रवर्जित किया है।
- ६) चित्तौडगढ जिले के बावरी समाज के लोगों को नियंत्रित करने में प्रशासन को जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था। ऐसे अराजग गतिविधियों में संलग्न बावरी समाज को प्रतिबोधित कर व्यसन मुक्त बनाकर "सीरीवाल समाज" की संज्ञा प्रदान की।
- ७) व्यसन मुक्ति आन्दोलन के अन्तर्गत अभी तक लगभग १,००,००० लोगों को व्यसन मुक्त बनाया है।
- ८) आप श्री को प्रत्युत्पन्न मति एवं गूढ़ आगम सम्मत ज्ञान हेतु सन् १९९० में "परमागम रहस्य ज्ञाता" की उपाधि से विभूषित किया गया।
- ९) आप श्री का हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश आदि भाषाओं तथा जैन आगम के साथ ही जैनेतर साहित्य एवं ज्योतिष विज्ञान पर भी विशेष अधिकार है।
- १०) लगभग २९ वर्षों से संयम की कठोर मर्यादाओं के साथ संयम पथ पर निरंतर अग्रसर।

अनुक्रम

क्र	विभाग	पृष्ठ संख्या
1.	प्रथम आयाम	
1.	सामायिक सूत्र अर्थ विधि सहित	01
2.	२४ तीर्थकर के नाम	20
3.	२० विरहमान के नाम	21
4.	११ गणधर एवं १६ सतीयों के नाम	22
2.	द्वितीय आयाम	
1.	समकित के ६७ बोल	23
2.	पच्चीस बोल का थोकड़ा	27
3.	तृतीय आयाम	
1	श्रावक - प्रतिक्रमण सूत्र अर्थ भावार्थ सहित	50
4.	चतुर्थ आयाम	
1	लघुदण्डक	108
2	गतागत का थोकड़ा	132
3	जीव घड़ा	138
4	आठ कर्म का थोकड़ा	150
5	गुणस्थान द्वार	158
6.	पुच्छिंसुणं अर्थ सहित	177
7	दशवैकालिक के चार अध्ययन अर्थ सहित	190

प्रथम आयाम

(१) सामायिक सूत्र अर्थ सहित

(1) नमस्कार महामंत्र

णमो अरिहंताणं ।

णमो सिद्धाणं ।

णमो आयरियाणं ।

णमो उवज्झायाणं ।

णमो लोए सव्वसाहूणं ।

एसो पंच णमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो ।

मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥1॥

(भगवती सूत्र मंगलाचरण) (कल्पसूत्र मंगलाचरण)

मूल शब्द	अर्थ
अरिहंताणं	- अरिहन्तो को
णमो	- नमस्कार हो
सिद्धाणं	- सिद्ध भगवान को
णमो	- नमस्कार हो
आयरियाणं	- आचार्य महाराज को
णमो	- नमस्कार हो
उवज्झायाणं	- उपाध्याय महाराज को
णमो	- नमस्कार हो
लोए	- लोक में (अढ़ाई बिप में वर्तमान)
सव्वसाहूणं	- सभी साधु महाराज को
णमो	- नमस्कार हो
पंचणमुक्कारो	- पंच नमस्कार (पात्र परमेष्ठियों को किया हुआ नमस्कार)
सव्वपावप्पणासणो	- सब पापों को नाश करने वाला है
च	- और
सव्वेसिं	- सब
मंगलाणं	- मंगलो में
पढम	- प्रथम (प्रधान)

मंगलं

-

मंगल

हवइ

-

है

भावार्थ - श्री अरिहन्त भगवान, श्री सिद्ध भगवान, श्री आचार्य महाराज, श्री उपाध्याय महाराज और अढाई व्दीप में वर्तमान सभी साधु मुनिराज - इन पाँच परमेश्वरियों को मेरा नमस्कार हो । उक्त पाँच परमेश्वरियों को नमस्कार सम्पूर्ण पापो में नाश करने वाला है और सब प्रकार के लौकिक और लोकोत्तर मंगलों में प्रधान मंगल है ।

(2) गुरु वन्दना - तिक्खुत्तो का पाठ

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं (करेमि) वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि मत्थएण - वन्दामि ।

(रायप्पसेणी सूत्र 8)

तिक्खुत्तो	-	तीन बार
आयाहिणं	-	दक्षिण तरफ से
पयाहिणं	-	प्रदक्षिणा
करेमि	-	करता हूँ
वंदामि	-	गुणग्राम (स्तुति) करता हूँ
णमंसामि	-	नमस्कार करता हूँ
सक्कारेमि	-	सत्कार करता हूँ
सम्माणेमि	-	सम्मान देता हूँ
कल्लाणं	-	कल्याण रूप
मंगलं	-	मंगल रूप
देवयं	-	धर्म देव रूप
चेइयं	-	ज्ञानवंत अथवा सुप्रशस्त मन के हेतु रूप
पज्जुवासामि	-	सेवा करता हूँ
मत्थएण	-	मस्तक नमाकर
वंदामि	-	वन्दना करता हूँ

भावार्थ - हे पूज्य ! दोनों हाथ जोड़कर दाहिनी ओर से तीन बार प्रदक्षिणा करता हूँ । आपका गुणग्राम (स्तुति) करता हूँ । पंचांग (दो हाथ, दो घुटने और एक मस्तक - ये पाँच अंग) नमाकर नमस्कार करता हूँ, आपका सत्कार करता हूँ, आपको सम्मान देता हूँ, आप कल्याण रूप हैं, मंगलरूप हैं, आप धर्मदेव स्वरूप हैं, ज्ञानवंत हैं अथवा मन को प्रशस्त बनाने वाले हैं, ऐसे आप गुरु महाराज की सेवा करता हूँ और मस्तक नमाकर आपको वन्दन करता हूँ ।

(3) इरियावहिय (इच्छाकारेणं का पाठ)

इच्छाकारेणं सदिसह भगवन् ! इरियावहिय, पडिक्कमामि, इच्छ इच्छामि
 पडिक्कमिउ इरियावहियाए विराहणाए, गमणागमणे, पाणक्कमणे,
 बीयक्कमणे हरियक्कमणे, ओसा उत्तिग पणग दग मट्टी मक्कडा संताणा
 संकमणे, जे मे जीवा विराहिया एगिदीया, बेइदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया,
 पंचिदिया, अभिहया, वत्तिया, लेसिया, सघाइया संघट्टिया, परियाविया,
 किलामिया, उद्धविया, टाणाओ टाण सकामिया, जीवियाओ ववरोविया तस्स
 मिच्छा मि दुक्कडं ।

(हरिभट्टीयावश्यक पृष्ठ 572)

भगवन्	-	हे भगवान हे गुरु महाराज
इच्छाकारेणं	-	इच्छापूर्वक
सदिसह	-	आज्ञा दीजिये (कि मै)
इरियावहियं	-	ईर्यापथिकी क्रिया का (चलने से लगने वाली क्रिया का)
पडिक्कमामि	-	प्रतिक्रमण करू
इच्छ	-	प्रमाण है
इरियावहियाए	-	मार्ग मे चलने से होने वाली
विराहणाए	-	विराधना से
पडिक्कमिउ	-	प्रतिक्रमण करने की
इच्छामि	-	इच्छा करता हूँ
गमणागमणे	-	जाने आने मे
पाणक्कमणे	-	किसी प्राणी को दबाया हो
बीयक्कमणे	-	बीज को दबाया हो
हरियक्कमणे	-	वनस्पती को दबाया हो
ओसा	-	ओस
उत्तिग	-	कीडी नगरा
पणग	-	पोंच रंग की काई (लीलन - फूलन)
दग	-	कच्चा पानी
मट्टी	-	संचित मिट्टी (और)
मक्कडासंताणा	-	मकड़ी के जालो को
संकमणे	-	कुचला हो
मे	-	मैने
एगिदीया	-	एक इन्द्रिय वाले
बेइदिया	-	दो इन्द्रिय वाले
तेइंदिया	-	तीन इन्द्रिय वाले
चउरिदिया	-	चार इन्द्रिय वाले

पंचिंदिया	-	पाँच इन्द्रिय वाले
जे	-	जो
जीवा	-	जीव हैं (उन्हें)
विराहिया	-	पीड़ित किया हो
अभिहया १	-	सन्मुख आते हुए को हना हो
वत्तिया २ २	-	धूल आदि से ढँका हो
लेसिया ३	-	मसला हो
संघाइया ४	-	इकट्ठा किया हो
संघट्टिया ५	-	छुआ हो
परियाविया ६	-	परिताप (कष्ट), पहुँचाया हो
किलामिया ७	-	किलामना उपजाई हो
उद्वविया ८	-	मृत तुल्य किया हो
टाणाओ ९	-	हैरान या भयभीत किया हो
टाणं	-	एक जगह
संकाभिया १	-	दूसरी जगह
जीवियाओ १०	-	रखा हो
ववरोविया	-	जीवन से
तस्स	-	रहित किया हो
दुक्कडं	-	उसका
मि	-	पाप
मिच्छा	-	मेरे लिए
	-	मिच्छा (निष्फल हो)

भावार्थ - शिष्य - हे गुरु महाराज! इच्छापूर्वक आज्ञा दीजिये कि मैं ईर्यापथिकी क्रिया का प्रतिक्रमण करूँ। गुरु की अनुमति पाने पर शिष्य कहता है कि आपकी आज्ञा प्रमाण है। मैं ईर्यापथिकी क्रिया का प्रतिक्रमण करना चाहता हूँ अर्थात् मार्ग में चलने से हुई विराधना से निवृत्त होना चाहता हूँ। मार्ग में आते जाते किसी प्राणी को दबाया हो, सचित बीज तथा हरी वनस्पति को कुचला हो, ओस, कीड़ी नगरा, पाँचो वर्ण की लीलन-फूलन सचित जल, सचित मिट्टी और मकड़ी के जालो को रौंदा(कुचला)हो। मैंने किन्हीं जीवों की हिंसा की हो जैसे एक इन्द्रिय वाले - पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति, दो इन्द्रिय वाले-शंख, सीप, गिंडोला आदि, तीन इन्द्रिय वाले- कुंथुआ, जूँ, लीख, कीड़ी, खटमल, चीचड़ आदि चार इन्द्रिय वाले - मक्खी, भवरा, बिच्छू, टिड्डी, पतंगिया आदि, पाँच इन्द्रियवाले - मनुष्य, तिर्यच जलचर, स्थलचर और खेचर आदि। सन्मुख आते हुए इन्हें मारा हो, इन्हें धूल आदि से ढँका हो, जमीन पर या आपस में रगड़ा हो, इकट्ठा करके इन्हें दुःख

पहुचाया हो तथा छूकर पीडा दी हो । इन्हे क्लेश पहुचाया हों, मृत तुल्य किया हो । हैरान भयभीत किया हो, एक जगह से दूसरी जगह रखा हो, इनका जीवन नष्ट किया हो इससे होने वाले पाप मेरे लिए निष्फल हो अर्थात् जानते- अजानते विराधना आदि से कषाय द्वारा मैंने पाप कर्म बँधा है, उसके लिए मैं हृदय से पश्चात्ताप करता हूँ, जिससे कि निर्मल परिणाम द्वारा पाप कर्म शिथिल हो जावे और मुझे उसका तीव्र फल भोगना न पड़े ।

(4) तस्स उत्तरी का पाठ

तस्स उत्तरीकरणेणं, पायच्छित्तकरणेण, विसोहिकरणेणं, विसल्लीकरणेणं, पावाणं, कम्माण, निघायणद्वाए ठामि काउस्सगं । अण्णत्थ ऊससिएणं, णिससिएण खासिएण, छीएणंजमाइएणं, उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं, भमलीए, पित्तमुच्छाए, सुहुमेहि अगसचालेहि, सुहुमेहिं खेलसंचालेहि, सुहुमेहिं दिड्डिसंचालेहि, एवमाइएहिं आगारेहिं अमग्गे अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सगो, जाव अरिहताणं भगवंताणं णमुक्कारेण न पारेमि ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि ।

(हरिभद्रीयावश्यक पृष्ठ 778)

तस्स	-	उस पाप युक्त आत्मा को
उत्तरीकरणेणं	-	श्रेष्ठ - उत्कृष्ट बनाने के निमित्त
पायच्छित्तकरणेणं	-	प्रायश्चित्त करने के लिए
विसोहिकरणेणं	-	विशेष शुद्ध करने के लिए
विसल्लीकरणेणं	-	शत्रुओं का त्याग कराने के लिए
पावाणं	-	पाप
कम्माणं	-	कर्मों का
निघायणद्वाए	-	नाश करने के लिए
काउस्सगं	-	कायोत्सर्ग, शरीर के व्यापारों का त्याग
ठामि	-	करता हूँ
ऊससिएणं	-	उच्छ्वास अर्थात् श्वास लेना
नीससिएणं	-	नि श्वास अर्थात् श्वास निकालना
खासिएणं	-	खासी आना
छीएणं	-	छीक आना
जमाइएणं	-	उबासी आना
उड्डुएणं	-	डकार आना

वायनिसग्रेणं	-	अधो वायु निकालना
भमलीए	-	चक्कर आना
पित्तमुच्छ्राए	-	पित्त विकार से मूर्च्छा आना
सुहुमेहिं	-	सूक्ष्म (थोडा-सा)
अंगसंचालेहिं	-	अंग का संचार (हिलना)
सुहुमेहिं	-	सूक्ष्म (थोडा - सा)
खेल संचालेहिं	-	कफ का संचार
सुहुमेहिं	-	सूक्ष्म (थोडा - सा)
दिद्विसंचालेहिं	-	दृष्टि का चलना
एवमाइएहिं	-	इत्यादि
आगारेहिं	-	आगारों के
अण्णत्थ	-	सिवाय दूसरे प्रकार से
मे	-	मेरा
काउस्सगो	-	कायोत्सर्ग
अभग्गो	-	अभग्न
अविराहिओ	-	अखंडित
हुज्ज	-	हो
जाव	-	जब तक
अरिहंताणं	-	अरिहत
भगवंताणं	-	भगवान को
णमुक्कारेणं	-	नमस्कार करके
न पारेमि	-	न पारूं
ताव	-	तब तक
ठाणेणं	-	काया से स्थिर रहकर
मोणेणं	-	वचन से मौन रहकर
झाणेणं	-	मन से शुभ ध्यान धर कर
अप्पाणं	-	अपने
कायं	-	शरीर को
वोसरामि	-	अलग करता हूँ

भावार्थ - ईर्यापथिकी क्रियासे लगा हुआ आत्मा का मैल मिच्छा मि दुक्कडसे कुछ अंशों में दूर हुआ है। उसे अधिक शुद्ध और निर्मल बनाकर पाप कर्मों का नाश करने के लिए कार्योत्सर्ग करता हूँ। आत्मा को संस्कारित और प्रशस्त बनाने के लिए पापे का प्रायश्चित्त आवश्यक है। प्रायश्चित्त के लिए आत्मा शुद्ध होना चाहिये एवं आत्म शुद्धि होने के लिए शक्त्यों (माया, निदान

और मिथ्यादर्शन) का दूर होना जरूरी है इसलिये मैं शल्य दूर करके आत्मा को शुद्ध करता हूँ। फिर प्रायश्चित द्वारा आत्मा को प्रशस्त बनाकर पाप कर्मों का नाश करने के लिए काउस्सग (कायोत्सर्ग) करता हूँ। शरीर के व्यापारों का त्याग काउस्सग है। चूँकि इस प्रकार का सर्वथा त्याग संभव नहीं है। इसलिए काउस्सग में जो आगार रखे जाते हैं वे आगार इस प्रकार हैं -

श्वास का लेना और निकालना, खासना, छीकना, जंभाई आना, डकार आना, अपान वायु का सूरना, चक्कर आना, पित्त प्रकोप से मूर्च्छा आ जाना, अगो का सूक्ष्म हलन चलन, कफ का सूक्ष्म संचार, दृष्टी का सूक्ष्म संचालन आदि इनके होते रहने पर भी काउस्सग नहीं टूटता, परन्तु इनके सिवाय अन्य स्वाधीन क्रियाओं का मेरे त्याग है। अपवाद स्वरूप इन क्रियाओं के सिवाय कोई भी क्रिया मुझसे न हो और इससे मेरा काउस्सग सर्वथा अभग्न और अखण्डित रहे यही मेरी अभिलाषा है। नमो - अरिहंताण - शब्द द्वारा अरिहंत भगवान के नमस्कार करके काउस्सग को पूर्ण न करू तब शरीर से निश्चल बनकर, वचन से मौन रहकर और मन से शुभ ध्यान धरकर सब अशुभ व्यापारों का त्याग करता हूँ।

(5) लोगस्स का पाठ

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्मतिथ्यरे जिणे ।
 अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसंपि केवली ॥1॥
 उसभमजियं च वदे, समवमभिण दणं च सुमई च ।
 पउमप्पहं सुपासं, जिण च चंदप्पहं वंदे ॥2॥
 सुविहि च पुप्फदतं, सीयलसिज्जंसवासुपुज्ज च ।
 विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥3॥
 कुंथुं अरं च मल्लि वंदे, मुणिसुव्वयं नमि जिणं च ।
 वंदामि रिड्डनेमि, पासं तह वद्धमाण च ॥4॥
 एवं मए अभित्थुआ, विहूयरयमला पहीणजरमरणा ।
 चउवीसंपि जिणवरा, तिथ्यरा मे पसीयतु ॥5॥
 कित्तिवदियमहिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा ।
 आरुग्गबोहिलाभ, समाहिवरमुत्तमं दितु ॥6॥
 चंदेसुनिम्मलयरा, आइच्चेसु अहिय पयासयरा ।
 सागरवर गंभीरा, सिद्धा सिद्धि मम दिसन्तु ॥7॥

(हरिभद्रीयावश्यक पृष्ठ 463-50)

लोगस्स	-	लोक मे
उज्जोयगरे	-	प्रकाश करने वाले
धम्मतिथ्यरे	-	धर्म रूपी तीर्थ को

जिणे
अरिहंते
चउवीसंपि
केवली
कित्तइस्सं
उसमं च
अजियं
वंदे
संभवंच
अभिणंदणं
सुमइंच
पउमप्पह
सुपासं
चंदप्पहं
जिणं
वंदे
सुविहि च
पुप्फदंतं

सीअल
सिज्जंस
वासुपुज्जं च
विमलं च
अणतं
जिणं
धम्म च
संति
वंदामि
कुंथु
अरंच
मल्लि
वंदे
मुणिसुव्वयं च
नमिजिण च

वाले
राग, द्वेष, को जीतनेवाले
कर्म रूप शत्रु का नाश करने वाले
चौबीसो
केवल ज्ञानी तीर्थकरों की
मैं स्तुती करूंगा
श्री ऋषभदेव स्वामी को और
श्री अजितनाथ स्वामी को
वंदना करता हूँ
श्री संभवनाथ स्वामीको और
श्री अभिनन्दन स्वामी को
श्री सुमतिनाथ स्वामी को और
श्री पद्मप्रभ स्वामी को
श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी को और
श्री चन्द्रप्रभ
जिनेश्वर को
वंदना करता हूँ
श्री सुविधिनाथ स्वामी को और
श्री पुष्पदंत (सुविधिनाथ का दूसरा
नाम) स्वामी को
श्री शीतलनाथ स्वामी को
श्री श्रेयांसनाथ स्वामीको
श्री वासुपूज्य स्वामी को और
विमलनाथ स्वामी को और
श्री अनन्तनाथ स्वामी को
जिन-रागद्वेष को जीतने वाले
श्री धर्मनाथ स्वामी को और
श्री शांतिनाथ स्वामी को
वंदना करता हूँ
श्री कुथुनाथ स्वामी को
श्री अरनाथ स्वामी को
श्री मल्लिनाथ स्वामी को
वंदना करता हूँ
श्री मुनिसुव्रत स्वामी को
श्री नमिनाथ जिनेश्वर को और

रिद्धिनेमि	-	श्री अरिष्टनेमि (श्री नेमिनाथ)
पासं	-	स्वामी को श्री पार्श्वनाथ स्वामी को (पार्श्वनाथ)
तह	-	तथा
वद्धमाणं च	-	श्री वर्द्धमान (महावीर) स्वामीको
वंदामि	-	मैं वंदना करता हूँ
एव	-	इस प्रकार
म ए	-	मेरे द्वारा
अभित्युआ	-	स्तुति किये हुए
विहूयरमला	-	पाप रज के मल से रहित
पहीणजरमरणा	-	बुढ़ापे तथा मरण से मुक्त
तित्थयरा	-	तीर्थ की स्थापना करने वाले
चउवीसंपि	-	चौबीसो
जिणवरा	-	जिनेश्वर देव
मे	-	मुझ पर
पसीयंतु	-	प्रसन्न हो
कित्थिय	-	वाणी से कीर्तन किये हुए
वदिय	-	काया से वंदना किये हुए
महिया	-	मन से पूजन किये हुए
जे	-	जो
लोगस्स	-	लोक में
उत्तमा	-	उत्तम
सिद्धा	-	सिद्ध भगवान है
ए	-	वे
आरुग्गबोहिलाभं	-	आरोग्य अर्थात् मोक्ष के लिये परभव में सम्यक्त्व का लाभ और
समाहिवरमुत्तम	-	सर्वोत्कृष्ट भाव समाधि को
दितु	-	देवे
चदेसु	-	चन्द्रमाओ से भी
निम्मलयरा	-	विशेष निर्मल
आइच्चेसु	-	सूर्यो से भी
अहिय	-	अधिक
पयासयरा	-	प्रकाश करने वाले

सागरवरगंभीरा	-	महासमुद्र के समान गंभीर
सिद्धा	-	सिद्ध भगवान
मम	-	मुझको
सिद्धि	-	सिद्धि
दिसंतु	-	देवे

भावार्थ - (तीर्थकरों की स्तुति) स्वर्ग, नरक और मृत्यु इन तीनों लोकों में धर्म का उद्योत करने वाले, धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले राग - द्वेष आदि अन्तरंग शत्रुओं पर विजय पाने वाले चौबीस केवलज्ञानी तीर्थकरों की मैं स्तुति करूंगा। सर्वश्री ऋषभदेव स्वामी, अजितनाथजी, सभवनाथजी, अभिनन्दनजी, सुमतिनाथ, पद्मप्रभजी, सुपार्श्वनाथजी, चन्द्रप्रभजी, सुविधिनाथजी, शीतलनाथजी, श्रेयांसनाथजी, वासुपूज्यजी, विमलनाथजी, अनन्तनाथजी, धर्मनाथजी, शांतिनाथजी, कुंथुनाथजी, अरनाथजी, मल्लिनाथजी, मुनिसुव्रतजी नमिनाथजी, अरिष्टनेमिजी, (नेमिनाथजी), पार्श्वनाथजी और महावीर स्वामी इन चौबीस जिनेश्वरों की मैं स्तुति करता हूँ और उन्हें नमस्कार करता हूँ। उपरोक्त प्रकार से मैंने जिनकी स्तुति की है जो कर्म मल से रहित हैं, जो जरा और मरण से मुक्त हैं और जो तीर्थ के प्रवर्तक हैं वे चौबीसों जिनेश्वरदेव मुझ पर प्रसन्न हों। जिनको वाणी से कीर्तन, काया से वन्दन और मन से भावपूजन किया गया है, जो सम्पूर्ण लोक में उत्तम हैं, और जो सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त हुए हैं, वे भगवान मुझको मोक्ष प्राप्ति करावे तथा सर्वोत्कृष्ट भाव समाधि प्रदान करे। जो चन्द्रमाओं से भी निर्मल हैं, सूर्यों से भी विशेष प्रकाशमान हैं, और स्वयम्भूरमण नामक महासमुद्र के समान गंभीर हैं ऐसे सिद्ध भगवान मुझको सिद्धि (मोक्ष) देवे। यद्यपि राग - द्वेष रहित होने से भगवान न किसी पर प्रसन्न होते हैं, न ही कुछ देते ही हैं, पर उनका ध्यान करने से चित्त शुद्धि द्वारा अभिलाषित फल की प्राप्ति होती है। जिस तरह चितामणि रत्न जड़ होने पर भी, उससे वांछित फल की प्राप्ति होती है।

(6) ध्यान विशुद्धि का पाठ

ध्यान में आर्तध्यान, रौद्रध्यान ध्याया हो, धर्मध्यान शुक्ल ध्यान न ध्याया हो, ध्यान में मन, वचन, काया चलित हुए हो तो तस्स मिच्छमि दुक्कडं।

(7) करेमि भंते का पाठ

करेमि भंते ! सामाइयं, सावज्ज जोगं पच्चक्खामि जावनियम पज्जुवासामि, दुविहं तिविहेण न करेमि, न कारवेमि मणसा वयसा कायसा

तस्स भंते ! पडिक्कमामि निदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि।

(हरिमद्रीयावश्यक पृष्ठ 454)

भंते	-	हे भगवान !
सामाइयं	-	सामायिक को
करेमि	-	मैं ग्रहण करता हूँ
सावज्जं	-	सावद्य (पाप रहित)
जोगं	-	व्यापार
पच्चक्खामि	-	प्रत्याख्यान (त्याग) करता हूँ
जाव	-	जब तक ,
नियमं	-	इस नियम का
पज्जुवासामि	-	मैं सेवन करता रहूँ तब तक
दुविहं	-	दो करण से
तिविहेणं	-	तीन प्रकार के योग से अर्थात्
मणसा	-	मन से
वयसा	-	वचन से
कायसा	-	काया से
न करेमि	-	सावद्य योग को न करुंगा
न कारवेमि	-	न दूसरो को कराऊगा
भते	-	हे भगवान!
तस्स	-	उससे (पहले के पाप से)
पडिक्कमामि	-	मैं निवृत्त होता हूँ ।
निंदामि	-	उस पाप की आत्मसाक्षी से निंदा करता हूँ
गरिहामि	-	गुरु साक्षी से गर्हा निन्दा करता हूँ
अप्पाणं	-	अपनी आत्मा को उस पाप व्यापार से
वोसिरामि	-	हटाता हूँ, अलग करता हूँ

भावार्थ - मैं सामायिक व्रत को ग्रहण करता हूँ । (राग द्वेष से हटकर या ज्ञान, दर्शन, चरित्र में लगना ही सामायिक है । मैं पाप जनक व्यापारों को त्याग करता हूँ। जब तक मैं इस नियम का पालन करता हूँ तब तक मैं और काया इन तीनों योगों द्वारा पाप व्यापार न स्वयं करुंगा और न

कराऊंगा। हे स्वामिन्! पूर्वकृत पाप से मैं निवृत्त होता हूँ। हृदय से मैं उसे बुरा समझता हूँ और गुरु के सामने उसकी मैं निन्दा करता हूँ। इस प्रकार मैं अपनी आत्मा को पाप क्रिया से छुड़ाता हूँ।

(8) णमोत्थुणं का पाठ

णमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं आइगराणं तित्थयराणं सयंसंबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिस - वर पुंडरिआणं पुरिसवर - गंध - हत्थीणं, लोगुत्तमाणं लोगणाहाणं लोगहिआणं लोगपईवाणं लोगपज्जो अगराणं, अभयदयाणं चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं सरणदयाणं, जीवदयाणं बोहिदयाणं धम्मदयाणं, धम्मदेसयाणं, धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवर - चाउरन्त चक्कवट्ठीणं दीवो ताणं सरणगई पईड्डा अप्पडिहयवरनाणं दंसणधराणं विअट्ठुत्तमाणं जिणाणं जावयाणं, तिण्णाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं, मुत्ताणं, मोअगाणं, सब्बण्णूणं सब्बदरिसीणं, सिव मयल मरुअ मणत मक्खय मब्बाबाह मपुणरावित्ति सिद्धिगइनामधेयं ठाण संपत्ताणं णमो जिणाणं जिअभयाणं।

(कल्प सूत्र शक्रस्तव)

(औपपातिक सूत्र 12)

अरिहंताणं भगवंताणं	-	अरिहंत भगवान को
णमोत्थुणं	-	नमस्कार हो
आइगराणं	-	धर्म की आदि (प्रारंभ) करने वाले
तित्थयराणं	-	धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले
सयंसंबुद्धाणं	-	अपने आप ही बोध पाये हुए
पुरिसुत्तमाणं	-	पुरुषों में श्रेष्ठ
पुरिससीहाणं	-	पुरुषों में सिंह के समान
पुरिस-वर पुंडरिआणं	-	पुरुषों में श्रेष्ठ कमल के समान
पुरिसवर-गंध- हत्थीणं	-	पुरुषों में प्रधान गंधहस्ती के समान
लोगुत्तमाणं	-	लोक में उत्तम
लोगणाहाणं	-	लोक के नाथ
लोगहिआणं	-	लोक का हित करने वाले,
लोगपईवाणं	-	लोक के लिए दीपक के समान
लोगपज्जोअगराणं	-	लोक में उद्योत कराने वाले
अभयदयाणं	-	अभय देने वाले
चक्खुदयाणं	-	ज्ञान रूपी नेत्र देनेवाले
मग्गदयाणं	-	धर्म मार्ग का दाता
जीव दयाणं	-	संयम का ज्ञानरूपी जीवन देने वाले

सरणदयाण	-	शरण देने वाले
बोहिदयाण	-	बोध अर्थात् सम्यक्त्व देने वाले
धम्मदयाण	-	धर्म का दाता
धम्मदेसयाणं	-	धर्म के उपदेशक
धम्मनायगाण	-	धर्म के नायक
धम्मसारहीणं	-	धर्म के सारथी
धम्मवरचाउरन्त-चक्कवट्ठीण-		चार गति का अन्त करनेवाले धर्मरूप चक्र को धारण करने वाले अतएव प्रधान धर्म चक्रवर्ती रूप
दीवो	-	ससार समुद्र में द्वीप के समान
ताणं	-	रक्षक रूप
सरण	-	शरणभूत
गई	-	गति रूप
पईड्डा	-	ससार-कूप में गिरते हुए प्राणियों के लिये आधार रूप
अप्पडिहयवर	-	अप्रतिहत (बाधा सहित) तथा श्रेष्ठ
नाणदंसणधराण	-	पूर्ण ज्ञान दर्शनको धारणा करनेवाले
विअट्टच्छउमाण	-	छद्म अर्थात् घाती कर्म रहित
जिणाणं	-	स्वयं राग द्वेष को जितने वाले
जावयाणं	-	औरो को जिताने वाले
तिण्णाणं	-	स्वयं संसार से तिरे हुए तथा
तारयाणं	-	दूसरों को तारने वाले
बुद्धाणं	-	स्वयं बोध पाये हुए तथा
बोहयाण	-	दूसरो को बोध प्राप्त कराने वाले
मुत्ताणं	-	स्वयं धर्म बधन से छुटे हुए
मोअगाणं	-	दूसरो को छुड़ाने वाले
सव्वण्णुण	-	सर्वज्ञ (सब कुछ जाननेवाले)
सव्वदरिसीणं	-	सर्वदर्शी (सब कुछ देखने वाले)
सिवं	-	निरुपद्रव, कल्याण स्वरूप
मयलं	-	स्थिर
मरुअ	-	रोग रहित
मणन्त	-	अनन्त

मक्खय	-	क्षय रहित
मब्बाबाह	-	बाधा (पीड़ा) रहित
मपुणरावित्ति	-	पुनरागमन रहित ऐसे
सिद्धिगइ नामधेयं	-	सिद्धि गति नामक
ठाणं	-	स्थान को
संपत्ताणं	-	प्राप्त हुए
जिअभयाणं	-	भय को जीतने वाले
जिणाणं	-	जिनेश्वर सिद्ध भगवान को
णमो	-	नमस्कार हो

भावार्थ - अरिहन्त भगवान को मेरा नमस्कार हो, जो धर्म की आदि करने वाले है, साधु साध्वी, श्रावक-श्राविका रुपी चार तीर्थों की स्थापना करने वाले है, दूसरों के उपदेश के बिना ही बोध को प्राप्त कर चुके है, सब पुरुषो मे उत्तम है, पुरुषों में सिंह के समान निर्भय है, पुरुषो में कमल के समान अलिप्त हैं, पुरुषो में प्रधान गन्धहस्ति के समान है, लोक में उत्तम है, लोक के नाथ है लोक के हितकारक है, लोक मे प्रदीप के समान प्रकाश करने वाले है, लोक मे अज्ञान रुप अन्धकार का नाश करने वाले है, दुःखियों को अभयदान देने वाले है, अज्ञान से अन्धे लोगों को ज्ञान रुपी नेत्र देने वाले है, मार्ग भ्रष्ट को मार्ग दिखाने वाले है, संयम या ज्ञान रुपी जीवन देने वाले है, शरणागत को शरण देने वाले है, सम्यक्त्व प्रदान करने वाले है, जिज्ञासुओं को धर्म का उपदेश करने वाले हैं, धर्म के नायक हैं धर्म के सारथी (संचालक) है, चार गति का अन्त करने वाले, धर्म रुपी चक्र को धारण करने वाले अतएव प्रधान धर्म -चक्रवर्ती रुप है, संसार रुप समुद्र में द्वीप के समान रक्षक रुप शरण रुप, गतिरुप एवं आधारभूत है, सर्व पदार्थों के स्वरुप को प्रकाशित करने वाले श्रेष्ठ ज्ञान दर्शन को अर्थात् केवल ज्ञान दर्शन को धारण करने वाले है, चार घाती कर्म रुप आवरण से मुक्त है, स्वयं राग-द्वेष को जीतने वाले और दूसरो को जिताने वाले है, स्वयं संसार से पार पहुंच चुके और दूसरों को भी पार पहुंचाने वाले हैं, स्वयं ज्ञान को पाए हुए है और दूसरों को भी ज्ञान प्राप्त कराने वाले हैं, स्वयं मुक्त है और दूसरों को भी मुक्ति प्राप्त कराने वाले हैं, सर्वज्ञ है, सर्वदर्शी हैं तथा कल्याणकारी, उपद्रव रहित, अचल (स्थिर) रोग रहित, अनन्त, अक्षय, बाधा पीडा रहित और पुनरागमन (जन्ममरण) रहित ऐसे मोक्ष स्थान को प्राप्त हैं, अथवा प्राप्त होने वाले है । ऐसे सब प्रकार के भयों को जीतने वाले जिनेश्वरों को नमस्कार हो ।

9) एयस्स नवसस्स पाठ

एयस्स नवमस्स सामाइयवयस्स पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं-मणदुप्पणिहाणे वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइ अकरणया, सामाइयस्स अणवड्डियस्स करणया, तस्स मिच्छामि दुक्कड।

(हरिमद्रदियावश्यक पृष्ठ 454)

एयस्स	-	इस
नवमस्स	-	नवे
समाइयवयस्स	-	सामायिक व्रत के
पंच	-	पाँच
अइयारा	-	अतिचार
जाणियव्वा	-	जानने योग्य है, किन्तु
न समायरियव्वा	-	आचरण करने योग्य नहीं है
तजहा	-	वे इस तरह है
ते	-	उनकी
आलोउं	-	आलोचना करता हूँ
मणदुप्पणिहाणे	-	मन में बुरे विचार उत्पन्न करना
वयदुप्पणिहाणे	-	कठोर या पाप जनक वचन बोलना
कायदुप्पणिहाणे	-	बिना देखे पृथ्वी पर बैठना उठना आदि
सामाइयस्स	-	सामायिक का समय होने से पहले ही
अणवड्डियस्सकरणया	-	पार लेना या अनवस्थित रूप से सामायिक करना।
तस्स	-	उससे होने वाला
मि	-	मेरा
दुक्कड	-	पाप
मिच्छा	-	मिथ्या (निष्फल) हो

भावार्थ - श्रावक के बारह व्रतों में से नवों व्रत सामायिक व्रत हैं। उसके पाँच अतिचार हैं जानने योग्य है, परन्तु आचरण करने योग्य नहीं है। उन अतिचारों की आलोचना करता हूँ, जैसे कि 1 सामायिक के समय मन में बुरेविचार किये हो। 2 कठोर या पाप जनक वचन बोले हो। 3 अत्यन्त पूर्वक शरीर से चलना, फिरना, हाथ, पाँव को फैलाना सकोचना आदि

क्रियाएं की हो । 4 सामायिक करनेका काल याद न रखा हो । 5 अल्पकाल तक या अनवरस्थित रूप जैसे-तैसे सामायिक की हो ।

इन पौंचों अतिचारो से होने वाला मेरा पाप निष्फल हो ।

सामाइयं सम्मं काएणं, ण फासियं, ण पालियं ण तीरियं, ण किट्टियं, ण सोहियं, ण आराहियं, आणाए अणुपालियं ण भवइ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सामाइयं	-	सामायिक का
सम्मं	-	सम्यक्
काएणं	-	काया से
न फासियं	-	स्पर्श न किया हो
न पालियं	-	पालन न किया हो
न सोहियं	-	अतिचारो से रहित उसे शुद्ध न किया हो
न तीरियं	-	पूर्ण न किया हो
न किट्टियं	-	कीर्तन न किया हो
न आराहियं	-	आराधना न किया हो
आणाए	-	आज्ञानुसार
अणु पालियं न भवइ	-	पालन न किया हो
तस्स	-	उससे होने वाला
मि	-	मेरा
दुक्कडं	-	पाप
मिच्छा	-	मिथ्या हो

भावार्थ - सामायिक का सम्यक् प्रकार काया से स्पर्श न किया हो, उसका पालन न किया हो, अतिचार टाल कर उसकी शुद्धि न की हो, उसकी आराधना न की हो, उसे पूर्ण न किया हो, कीर्तन न किया हो, आराधना न की हो एवं आज्ञानुसार उसका पालन न किया हो, उससे होने वाला मेरा पाप निष्फल हो ।

सामायिक में दस मन के, दस वचन, बारह काया के इन कुल बत्तीस दोषों में से कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

सामायिक में "स्त्री कथा, भत्त (भोजन) कथा, देश कथा, राज कथा इन चार कथाओं में से कोई कथा की हो तो तस्स मिच्छा नि दुक्कडं ।

सामायिक में आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुन संज्ञा, परिग्रह संज्ञा, इन

चार संज्ञाओं में से किसी भी संज्ञा का सेवन किया हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

सामायिक में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार, जानते-अजानते
स्त्रियो को पुरुष कथा बोलना ।

मन, वचन, काया से कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

सामायिक व्रत विधि पूर्वक लिया, विधि से पूर्ण किया, विधि में कोई अविधि हुई तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

सामायिक का पाठ बोलने में काना, मात्रा अनुस्वार, पद, अक्षर, ह्रस्व, दीर्घ, न्यूनाधिक विपरीत पढ़ने में आया हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान की साक्षी से तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

सामायिक लेने की विधि

- 1 निस्सही निस्सही - सामायिक स्थान (धर्म स्थान) में प्रवेश करते ही निस्सही निस्सही शब्द का उच्चारण अर्थात् मैं पाप कार्यों का निषेध करता हूँ ।
- 2 प्रतिलेखन - स्थान पूँज कर, आसन, मुखवस्त्रिका वस्त्र आदि धार्मिक उपकरणों का प्रतिलेखन ।
- 3 वस्त्र परिवर्तन - भाईयो के लिए चोलपट्टा या धोती एव चादर (चोलपट्टे की लम्बाई पैर के टखने तक रहे ।)
- 4 वन्दन - तिक्रुतो के पाठ से तीन बार विधि सहित वन्दना । सन्त सतियाजी म.सा विराजमान हों तो उनके सम्मुख और न हों तो उत्तर - पूर्व दिशा में मुख करके वन्दना करें ।
- 5 नमस्कार महामन्त्र, इच्छाकारेण, तस्स उत्तरी, का पाठ, (तस्स उत्तरी का पाठ बोलते समय ठाणेणं, मोणेण झाणेण अप्पाणं वोसरामि बोलना) एक लोगस्स का ध्यान करना ।
- 6 ध्यान - शरीर की चंचलता रहित होकर एकं लोगस्स का ध्यान । नमो अरिहन्ताण बोल कर ध्यान खोले ।
- 7 नमस्कार मंत्र, ध्यान विशुद्धि का पाठ एवं एक लोगस्स का पाठ प्रकट बोलना ।
- 8 प्रत्याख्यान - करेमि भन्ते के पाठ से सामायिक व्रत के प्रत्याख्यान । साधु- साध्वी या बड़े श्रावक - श्राविका जो सामायिक में है उनसे ग्रहण

करें। न हो तो स्वयं लेवे। यहाँ ध्यान रखने योग्य है कि यदि साधु-साध्वी श्रावक - श्राविका विशेष ज्ञानार्जन प्रवचन आदि में संलग्न हो तो उन्हें अन्तराय न देते हुए स्वयं प्रत्याख्यान ले लेवें। करेमि भन्ते के पाठ में जहाँ जावनियम शब्द आवे उसके स्थान पर जितनी सामायिक लेना हो उतना कहे।

9. **णमोत्थुणं** - बायों घुटना खड़ा करके दो बार णमोत्थुणं का पाठ। पहले णमोत्थुण में ठाण सम्पत्ताणं एवं दूसरे णमोत्थुणं में ठाण सम्पाविउकामाणं कहना।

एक सामायिक का समय 48 मिनट का होता है।

सामायिक पारने की विधि

1. नमस्कार महामन्त्र
2. इच्छाकारेणं, तस्सउत्तरी का पाठ (तस्सउत्तरी में ठाणेण मोणेणं झाणेण दो लोगस्स का ध्यान अप्पाणं वोसरामि कहना।)
3. ध्यान - दो लोगस्स का ध्यान। णमो अरिहन्ताणं कहकर ध्यान पारना।
4. नमस्कार महामन्त्र ध्यान की विशुद्धि का पाठ लोगस्स का पाठ।
5. दो बार णमोत्थुणं (पूर्व विधि अनुसार)
6. एयस्स नवमस्स का पाठ बोलकर तीन बार नमस्कार मंत्र बोलकर सामायिक पारना।

सामायिक के बत्तीस दोष

मन के दस दोष

दोहा

अविवेग जसोकित्ती, लाभत्थी गव्व भय नियाणत्थी।

संसय रोस अविणउ, अबहुमाण ए दोसा भणियव्वा ॥

1. अविवेक - विवेक बिना सामायिक करे तो अविवेक दोष।
2. यशकीर्ति - यश-कीर्ति के लिये सामायिक करे तो यशकीर्ति दोष।
3. लामार्थ - धनादि के लाभ की इच्छा से सामायिक करे तो लाभ दोष।
4. गर्व - गर्व (अहकार) सहित सामायिक करे तो गर्व दोष।
5. भय - राज्यादि के अपराध के भय से सामायिक करे तो भय दोष।

6. निदान - सामायिक में नियाणा (निदान) करे तो निदान दोष ।
 7. संशय - फल में सन्देह रख कर सामायिक करे तो संशय दोष ।
 8. रोष - सामायिक में क्रोध, मान, माया, लोभ करे तो रोष दोष ।
 9. अविनय - विनयपूर्वक सामायिक न करे तथा सामायिक में देव, गुरु, धर्म की अविनय-आशातना करे तो अविनय दोष ।
 10. अबहुमान - बहुमान भक्ति भावपूर्वक सामायिक न कर के बेगारी के समान सामायिक करे तो अबहुमान दोष ।
- (श्री जैन सिद्धांत बोल सग्रह भाग तीसरा पृष्ठ 447 बोल न 764)

वचन के दोष

कुवयणसहसाकारे, सछंद सखेव कलहं च ।

विगहा वि हासोऽसुद्धं, गिरवेक्खो मुणमुणा दोसा दस ।

1. कुवचन - सामायिक में कुवचन (कुत्सित वचन) बोले तो "कुवचन" दोष ।
2. सहसाकार - सामायिक में बिना विचारे बोले तो "सहसाकार" दोष ।
3. स्वच्छन्द - सामायिक में राग उत्पन्न करने वाले ससार समन्धी गीत रत्यालादि गाने गावे तो "स्वच्छन्द" दोष ।
4. संक्षेप - सामायिक में पाठ और वाक्य कम कर के बोले तो "संक्षेप" दोष ।
5. कलह - सामायिक में क्लेशकारी वचन बोले तो "कलह" दोष ।
6. विकथा - सामायिक में स्त्रीकथा, भोजनकथा, देशकथा, राजकथा इन चार कथाओं में से कोई कथा करे तो "विकथा" दोष ।
7. हास्य - सामायिक में हँसी-मजाक करे तो "हास्य" दोष ।
8. अशुद्ध - सामायिक में पाठों का उच्चारण भली प्रकार से नहीं करे अथवा सामायिक में अत्रती को आओ पधारो कह कर सत्कार-सम्मान देवे या उसे आने-जाने का कहे तो "अशुद्ध" दोष ।
9. निरपेक्ष - सामायिक में उपयोग बिना बोले तो "निरपेक्ष" दोष ।
10. मुणमुण - सामायिक में स्पष्ट उच्चारण न कर के गुण-गुण बोले (गुणगुनावे) तो "मुण-मुण" दोष ।

(श्री जैन सिद्धांत बोल सग्रह भाग तीसरा पृष्ठ 448 बोल 765)

काया के 12 दोष

कुआसण चलासण चलदिट्ठी,

सावज्जकिरिया लंबणा-कुंचण पसारणं ।

**आलस्य मोडण मल विमासणं,
निद्रा वेयावच्चति बारस कायदोसा ॥१॥**

1. कुआसन - सामायिक में अयोग्य आसन से बैठे तो "कुआसन" दोष।
ठांसणी मार के बैठना, पाँव पर पाँव रख कर बैठना, पाँव पसार कर बैठना, अभिमान-सूचक से बैठना आदि सभी कुआसन (अयोग्य आसन) हैं।
2. चलासन - सामायिक में स्थिर आसन न रखे, आसन बदलता रहे तो "चलासन" दोष।
3. चलदृष्टि - सामायिक में दृष्टि को स्थिर न रखे तो चलदृष्टि दोष।
4. सावद्यक्रिया - सामायिक में शरीर से सावद्य-क्रिया करे, घर की रखवाली करे, इशारा करे तो सावद्य-क्रिया दोष।
5. आलम्बन - सामायिक में बिना कारण भीत आदि का सहार लेवे तो आलम्बन दोष।
6. आकुंचन प्रसारण - सामायिक में बिना प्रयोजन हाथ-पाँव सकोचे पसारे तो आकुंचन प्रसारण दोष।
7. आलस्य - सामायिक में अंग मोड़े तो आलस्य दोष।
8. मोटन-सामायिक में हाथ पाँव का कडका निकाले तो मोडण दोष।
9. मल - सामायिक में मैल उतारे तो मल दोष।
10. विमासण - गाल (कपोल) आदि पर हाथ लगाकर शोकासन से बैठे तो विमासण दोष अथवा सामायिक में बिना पूँजे खाज करे या बिना पूँजे चले तो विमासण दोष।
11. निद्रा - सामायिक में नीद लेवे तो निद्रा दोष।
12. वैयावृत्य - सामायिक में अग्रती की सेवा करे, अग्रती से सेवा करावे तथा बिना कारण व्रती से सेवा करावे तो वैयावृत्य दोष।
(श्री जैन सिद्धांत बोल संग्रह भाग चौथा पृष्ठ 273 बोल नं 189)

(२) 24 तीर्थकर

इस अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थकर हो चुके हैं। तीर्थ का अर्थ संघ है। श्रावक और श्राविका को संघ कहते हैं। जो तीर्थकर होते हैं, वे इस चतुर्विध संघ की स्थापना करते हैं। वे सर्वदर्शी होते हैं उनके चरणों में स्वर्ग के इन्द्र भी नमस्कार करते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं।

2	श्री अजितनाथजी	14	श्री अनन्तनाथजी
3	श्री सम्भवनाथजी	15	श्री धर्मनाथजी
4	श्री अभिनन्दन जी	16	श्री शान्तिनाथजी
5	श्री सुमतिनाथजी	17	श्री कुन्थुनाथजी
6	श्री पदम प्रभजी	18	श्री अरनाथजी
7	श्री सुपार्श्वनाथजी	19	श्री मल्लीनाथजी
8	श्री चन्द्रप्रभजी	20	श्री मुनिसुव्रतजी
9	श्री सुविधिनाथजी	21	श्री नेमिनाथजी
10	श्री शीतलनाथजी	22	श्री अरिष्टनेमिजी
11	श्री श्रेयांसनाथजी	23	श्री पार्श्वनाथजी
12	श्री वासुपुज्यजी	24	श्री महावीर स्वामीजी

भगवान् ऋषभदेवजी का दूसरा नाम आदिनाथजी है। इन्हें आदिदेव भी कहते हैं। चौबीसवे तीर्थकर भगवान् श्री महावीर स्वामी जी के कई नाम हैं। उन्हें वीर महावीर, अतिवीर सन्मति और वर्धमान भी कहते हैं।

(३) बीस विरहमान तीर्थकर

1	श्री सीमंधर स्वामीजी	11	श्री वज्रधर स्वामीजी
2	श्री युगमंधर स्वामीजी	12	श्री चन्द्रानन स्वामीजी
3	श्री बाहु स्वामीजी	13	श्री चन्द्रबाहु स्वामीजी
4	श्री सुबाहु स्वामीजी	14	श्री भुजग स्वामीजी
5	श्री सुजात स्वामीजी	15	श्री ईश्वर स्वामीजी
6	श्री स्वयप्रभ स्वामीजी	16	श्री नेमिप्रभ स्वामीजी
7	श्री ऋषभानन स्वामीजी	17	श्री वीरसेन स्वामीजी
8	श्री अनन्तावीर्य स्वामीजी	18	श्री महाभद्र स्वामीजी
9	श्री सूरप्रभ स्वामीजी	19	श्री देवयश स्वामीजी
10	श्री विशालधर स्वामीजी	20	श्री अजितवीर्य स्वामीजी

ये बीस तीर्थकर अभी महाविदेह क्षेत्र में विचर रहे हैं इसलिए इनको विरहमान कहते हैं।

(४) भगवान् महावीर के ग्यारह गणधर

1	श्री इन्द्रभूतिजी	6	श्री मण्डितपुत्रजी
2	श्री अग्निभूतिजी	7	श्री मोर्यपुत्रजी

- | | |
|-------------------------|---------------------|
| 3. श्री वायूभूतिजी | 8. श्री अंकपितजी |
| 4. श्री व्यक्तस्वामीजी | 9. श्री अचलभ्राताजी |
| 5. श्री सुधर्मास्वामीजी | 10. श्री मेतार्यजी |
| 11. श्री प्रभासजी | |

(५) सोलह सती

जो कष्ट आने पर भी अपने शील-धर्म को नहीं छोड़ती है अपने पति देव के सिवाय दूसरे पुरुषों को पिता तथा भाई के समान समझती है। ऐसी सतियां कई हो गई हैं।

परन्तु जिन सोलह सतियों को हम याद करते हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं -

- | | |
|----------------------|-----------------------|
| 1. श्री ब्राह्मीजी | 9. श्री मृगावती जी |
| 2. श्री सुन्दरी जी | 10. श्री पुष्पचूला जी |
| 3. श्री कौशल्या जी | 11. श्री प्रभावती जी |
| 4. श्री सीताजी | 12. श्री सुभद्रा जी |
| 5. श्री राजमती जी | 13. श्री दमयन्ती जी |
| 6. श्री कुन्ती जी | 14. श्री सुलसा जी |
| 7. श्री द्रौपदी जी | 15. श्री शिवादेवी जी |
| 8. श्री चन्दनबाला जी | 16. श्री पद्मावती जी |

इन सोलह सतियों में ब्राम्ही सुन्दरी, चन्दनबालाजी और राजमति बाल-ब्रम्हाचारिणी थी और बाकी सब विवाहित थी। इन सब सतियों का जीवन पढ़ने से मालूम होगा, कि इन्होंने कितना कष्ट सहकर भी अपने धर्म की रक्षा की इसलिए ये जग की पूजनीय बन गईं। सुबह उठकर जो इनका नाम लेते हैं, उनका मन पवित्र होता है और उनका चरित्र - बल बढ़ता है।

द्वितीय आयाम

१. समकित के ६७ बोल

पहले बोले श्रद्धान 4, दूसरे बोले लिंग 3, तीसरे बोले विनय के 10 प्रकार, चौथे बोले शुद्धि 3, पाँचवे बोले लक्षण 5, छठे बोल दूषण 5, सातवें बोले भूषण 5, आठवें बोले प्रभावना 8, नौवें बोले आगार 6, दसवें बोले यतना 6, ग्यारहवें बोले स्थान 6, बारहवें बोले भावना 6। ये सभी मिला कर 67 बोल हुए। अब इनकी व्याख्या दी जाती है -

पहले बोले - श्रद्धान चार

- 1 परमार्थ का परिचय करे अर्थात् नव तत्व का ज्ञान प्राप्त करे।
- 2 परमार्थ के जानने वालों की सेवा करे।
- 3 जिसने सम्यक्त्व का वमन कर दिया (छोड़ दिया) हो, उसकी सगति नहीं करें।
- 4 कुतीर्थियों की सगति से दूर रहे।

दूसरे बोले - लिंग तीन

- 1 जैसे तरुण कामी पुरुष राग - रागिनी में अनुराग रखता है, उसी प्रकार वीतराग की वाणी में अनुरक्त रहें।
- 2 जैसे तीन दिन का भूखा मनुष्य मिष्ठान्न का भोजन रुचि सहित करता है, उसी प्रकार वीतराग की वाणी आदर सहित सुने।
- 3 जैसे अनपढ़ विद्याभिलाषी को पढ़ने की चाह रहती है और पढ़ने का सुयोग मिलते ही हर्षित होता है, उसी प्रकार वीतराग की वाणी सुनकर हर्षित होवे।

तीसरे बोले - विनय के 10 प्रकार

- 1 अरिहन्त भगवान् की विनय भक्ति करे।
- 2 सिद्ध भगवान की विनय - भक्ति करे।
- 3 आचार्य महाराज की विनय - भक्ति करे।
- 4 उपाध्यायजी महाराज की विनय भक्ति करे।
- 5 स्थविर महाराज की विनय भक्ति करे।
- 6 कुल साधु समुदाय की विनय - भक्ति करें।
- 7 गण (गच्छ) की विनय - भक्ति करे।
- 8 चतुर्विध सघ (साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका) की विनय भक्ति करे।

9. स्वधर्मी की विनय भक्ती करें ।
10. क्रिया वान की विनय - भक्ति करें ।

चौथे बोले - शुद्धि तीन

1. मन शुद्धि - मन से श्री वीतराग देव का ध्यान करें, परन्तु किसी अन्य देव को मन में नहीं लावे ।
2. वचन-शुद्धि- वचनो से श्री वीतराग देव का गुणगान करे, किन्तु किसी अन्य देव की प्रशंसा नहीं करे ।
3. काया-शुद्धि - काया से श्री वीतराग देव को वन्दन नमस्कार करें, परन्तु किसी अन्य देव को नहीं करें ।

पाँचवे बोले - लक्षण पाँच

1. शम(प्रशम) - अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ का उदय नहीं होना ।
सम - शत्रु - मित्र पर समभाव रखना ।
2. संवेग- वैराग्य भाव, मोक्ष की अभिलाषा होना ।
3. निर्वेद- आरम्भ - परिग्रह से निवृत्त होना, संसार से उदासीन होना ।
4. अनुकम्पा - दूसरे जीवों को दुःखी देख कर दया आना ।
5. आस्था - जिन वचन पर दृढ विश्वास रखना ।

छठे बोले - दूषण पाँच

1. शंका - जिन भगवान के वचनों में संदेह रखना ।
2. कांक्षा - अन्य मतियों का आडम्बर देख कर उनकी चाहना करना ।
3. विचिकित्सा - करणी के फल में सन्देह रखना अथवा साधु-साध्वी के मलिन वस्त्र देख कर घृणा करना ।
4. पर पाखण्डी प्रशंसा - अन्य मत वालों की प्रशंसा करना ।
5. पर पाखण्डी संस्तव - अन्य तीर्थियों के साथ परिचय रखना और उनकी संगति करना ।

सातवें बोले - सम्यक्त्व के मूषण पाँच

1. जिन शासन में निपुण होवे ।
2. जिन शासन की प्रभावना करे और उसके गुणो को दीपावे - प्रकट करे ।
3. जिन शासन को मानने वाले साधु, साध्वी, श्रावक-श्राविका रुप धर्म-तीर्थ की सेवा भक्ति करे ।
4. अन्य जीवो को धर्म मे स्थिर करे और जिन मार्ग मे चतुर हो ।

5. जिन-प्रवचन एवं गुणवानों का आदर-सत्कार एवं महिमा करे ।

आठवें बोले - प्रभावना आठ

- 1 जिस काल में जितने सूत्र उपलब्ध हो, उतने पढ़ें और अन्य जीवों को प्रतिबोध देकर उनकी प्रभावना करें ।
2. धर्म कथा सुनाने में चतुर हों ।
3. प्रत्यक्ष, प्रमाण हेतु दृष्टांत पूर्वक अन्य मतियों से वाद करके धर्म को दीपावे - प्रभावना करें ।
4. निमित्तज्ञान से भूत, भविष्य और वर्तमान काल जाने ।
5. कठिन तपस्या कर के धर्म की प्रभावना करें ।
6. अनेक विद्याओं का जानकार होवे ।
7. प्रसिद्ध व्रत (ब्रह्मचर्य आदि चार खन्ध) लेवे ।
8. शास्त्र के अनुसार कविता रच कर धर्म की प्रभावना करें ।

नौवें बोले - आग्रह छह

1. राजा के दबाव से अन्य तीर्थों को वन्दना करनी पड़े, तो सम्यक्त्व में दोष लगता है, परन्तु भग नहीं होता ।
2. कुटुम्ब, जाति, पंच आदि के दबाव से अन्य तीर्थों को वन्दनादि करनी पड़े, तो सम्यक्त्व में दोष लगता है, परन्तु भग नहीं होता ।
3. बलवान् के डर से अन्य तीर्थों को वन्दनादि करनी पड़े, तो सम्यक्त्व में दोष लगता है, लेकिन सम्यक्त्व भग नहीं होता ।
4. देव के डर से अन्य तीर्थों को वन्दनादि करनी पड़े, तो सम्यक्त्व में दोष लगता है, लेकिन सम्यक्त्व का भग नहीं होता ।
5. माता, पिता, गुरु आदि के आग्रह से अन्य तीर्थों को वन्दनादि करनी पड़े तो सम्यक्त्व में दोष लगता है, परन्तु भग नहीं होता ।
6. दुर्भिक्ष-काल में आजीविका होना कठिन हो जाय और न चाहते हुए भी अन्य तीर्थों को वन्दनादि करनी पड़े तो सम्यक्त्व में दोष लगता है, परन्तु भग नहीं होता ।

दसवें बोले - यतना छह

- 1 आलाप-मिथ्यात्वी से बिना कारण नहीं बोले और सम्यग् दृष्टि बिना बोलाये भी ज्ञान-चर्चा करें ।
- 2 संलाप - मिथ्यात्वी से विशेष भाषण नहीं करें और सम्यग्

बार-बार अवश्य ज्ञान चर्चा करे ।

3. दान-मिथ्यात्वी को गुरु - बुद्धि से दान नहीं देवे, अनुकम्पा दान देने की तीर्थकर भगवान की मनाई नहीं है ।
4. मान - मिथ्यात्वी का अनावश्यक आदर-सम्मान नहीं करें और सम्यक्त्वं का बहुत आदर-सम्मान करें ।
5. वन्दना - मिथ्यात्वी को वन्दना नहीं करे ।
6. गुणग्राम - मिथ्यात्वी की प्रशंसा नहीं करें और सम्यक्त्वी के गुणों की प्रशंसा करे ।

ग्याहरवें बोले - स्थान छह

1. धर्म रुपी वृक्ष की सम्यक्त्व रुपी जड़ है ।
2. धर्म रुपी नगर की सम्यक्त्व रुपी फाटक है ।
3. धर्म रुपी महल की सम्यक्त्व रुपी नींव है ।
4. धर्म रुपी आभूषणों की सम्यक्त्व रुपी पेटी है ।
5. धर्म रुपी वस्तुओं की सम्यक्त्व रुपी दुकान है ।
6. धर्मरुपी भोजन का सम्यक्त्व रुपी थाल है ।

बारहवें बोले - भावना छह

1. जीव है और जीव का लक्षण चेतना है ।
2. जीव द्रव्य नित्य-शाश्वत है ।
3. जीव आठ कर्मों का कर्ता है ।
4. जीव आठ कर्मों का भोक्ता है ।
5. भव्य जीव कर्मों को क्षय कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं ।
6. सम्यग्ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यक् चारित्र और सम्यक् तप ये मोक्ष के उपाय हैं ।

२. पच्चीस बोल का थोकड़ा

पहले बोले गति ४

नरकगति, तिर्यचगति, मनुष्यगति और देव गति

प्रश्नोत्तर

प्रश्न - गति किसे कहते हैं ?

उत्तर - ससारी जीव मर कर जहाँ जाते हैं उसे गति कहते हैं।

प्रश्न - नरक गति किसे कहते हैं ?

उत्तर - नरकगति नाम कर्म के उदय से प्राप्त जीवों की गति को नरक गति कहते हैं। जो जीव अत्यन्त पाप कर्म करते हैं, वे मरकर नरक में जाते हैं, जहाँ उन्हें घोर कष्टों का सामना करना पड़ता है, उसे ही नरकगति कहते हैं।

प्रश्न - तिर्यच गति किसे कहते हैं ?

उत्तर - तिर्यच गति नाम कर्म के उदय से प्राप्त जीवों की गति तिर्यच गति है। जो जीव झूठ बोलते हैं, छल-कपट करते हैं, व्यापार में धोखा देते हैं, वे मरकर प्रायः पशु पक्षी आदि की योनि में ही जाते हैं। उसे तिर्यच गति कहते हैं।

प्रश्न - मनुष्य गति कहते हैं ?

उत्तर - मनुष्य गति नाम कर्म के उदय से प्राप्त जीवों की गति को मनुष्य गति कहते हैं। जो जीव स्वभाव से भद्र, विनयवान् और दयालु होते हैं, वे मरकर प्रायः मनुष्य होते हैं, उसे ही मनुष्य गति कहते हैं।

प्रश्न - देवगति किसे कहते हैं ?

उत्तर - देवगति नामकर्म के उदय से प्राप्त जीवों की गति को देव गति कहते हैं। जो सराग सयमादि पालते हैं वह प्रायः देव होते हैं।

दूसरे बोले जाति ५

एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय

प्रश्न - जाति किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिसमें जीव का जन्म हो अर्थात् समान इन्द्रिय वाले जीवों के समूह को जाति कहते हैं।

1 जिसके सिर्फ स्पर्श इन्द्रिय ही हो, उसे एकेन्द्रिय जाति कहते हैं, जैसे मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति के जीव।

- 2 जिन जीवों के स्पर्श और जिह्वा ये दो इन्द्रियाँ हो उसे द्विन्द्रिय जाती कहते हैं, जैसे सीप, शंख आदि।
- 3 जिन जीवों के स्पर्श जिह्वा और नासिका ये तीन इन्द्रियाँ हो, उन्हें त्रिन्द्रिय कहते हैं, जैसे- जूँ, लीक, चींटी आदि।
- 4 जिन जीवों के स्पर्श, जिह्वा, नासिका और नेत्र चार इन्द्रियाँ हो उन्हें चौरिन्द्रिय कहते हैं। जैसे मक्खी, मच्छर, भवरा आदि।
5. जिन जीवों के स्पर्श, जिह्वा, नासिका, नेत्र और श्रोत्र ये पाँच इन्द्रियाँ हो, उन्हें पंचेन्द्रिय जाति कहते हैं, जैसे मनुष्य, पशु-पक्षी, नारकीय तथा देवता आदि।

तीसरे बोले काया ६

पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय।

प्रश्न - काय किसे कहते हैं ?

उत्तर - काय का अर्थ समूह है, पुद्गलों का समूह होने से पृथ्वी आदि शरीर को भी काया कहते हैं।

पृथ्वीकाय - पृथ्वी ही जिन जीवों का शरीर है, जैसे - मिट्टी, हिमालय, हडताल, पत्थर, नमक, धातु, हीरा, पन्ना आदि

अपकाय - पानी ही जिन जीवों का शरीर है, जैसे-बरसात, ओस, धुआँ, कुआँ, बावड़ी, समुद्र आदि का पानी।

तेजस्काय - अग्नि ही जिन जीवों का शरीर है, जैसे-झाल की अग्नि, बिजली की अग्नि, उत्कापात आदि

वायुकाय - हवा ही जिन जीवों का शरीर है, जैसे उक्कलिया वायु, मंदालिया वायु, धनवायु, तनवायु पूर्वादि की वायु आदि।

वनस्पति - वनस्पति ही जिन जीवों का शरीर है, जैसे - वृक्ष, लता, फल, फूल, शाक, भाजी गेहूँ, धान आदि। 1 वादर वनस्पति के दो भेद - प्रत्येक और साधारण एक शरीर में एक जीव हो उसे प्रत्येक कहते हैं। जैसे आम, अमुर, मुग, मोठ, बड़, पीपल, गेहूँ, धान। जिन जीवों के आहार, आयु, श्वासोच्छ्वास और काय ये साधारण (समान अथवा एक) हो उसको साधारण वनस्पति कहते हैं। जैसे जमीचंद, काई, उगता हुआ अंकुरादि।

त्रसकाय - त्रसनामकर्म के उदय से, जो जीव सर्प, गरमी आदि से बचने के लिये चल-फिर सकते हैं, उनको त्रस काय कहते हैं। जैसे वेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय।

चौथे बोले इन्द्रियाँ ५

श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय

प्रश्न - इन्द्रियाँ किसे कहते हैं ?

उत्तर - इन्द्र का अर्थ आत्मा जिसके माध्यम से छद्मस्थ आत्मा शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श का ज्ञान कराती है, उसे इन्द्रिय कहते हैं।

पाँचवें बोले पर्याप्ति ६

आहार पर्याप्ति शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोश्वास पर्याप्ति, भाषा पर्याप्ति और मनः पर्याप्ति

प्रश्न - पर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर - आहारादि के पुद्गलो को ग्रहण करने तथा उन्हें आहार शरीरादि रूप में परिणमाने की आत्म शक्ति विशेष को पर्याप्ति कहते हैं।

छठे बोले प्राण १०

1. श्रोत्रेन्द्रिय बलप्राण 2. चक्षुरिन्द्रिय बलप्राण 3. घ्राणेन्द्रिय बलप्राण 4. रसनेन्द्रिय बलप्राण 5. स्पर्शनेन्द्रिय बलप्राण 6. मनोबलप्राण 7. वचन बलप्राण 8. काय बलप्राण 9. श्वासोश्वास बलप्राण 10. आयुष्य बलप्राण

प्रश्न - प्राण किसे कहते हैं ?

उत्तर - जीवित रहने एवं इन्द्रियादि की प्रवृत्ति करने के कारण भूत जीवकी शक्ति विशेष को प्राण कहते हैं। जिसके आधार से जीव टिका रहे उसे भी प्राण कहते हैं।

सातवें बोले शरीर ५

औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तेजस् और कर्मण

प्रश्न - शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो समय-समय पर जीर्ण-शीर्ण होकर क्षीण होता जाता है, उसे शरीर कहते हैं।

प्रश्न - औदारिक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर - औदारिक शरीर नाम कर्म के उदय से प्राप्त शरीर तथा उदार-अर्थात् स्थूल पुद्गलो से बने हुए शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं।

प्रश्न - वैक्रिय शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर - वैक्रिय शरीर नामकर्म के उदय से प्राप्त शरीर को अर्थात् जिस

शरीर से विविध क्रियाएँ (छोटे-बड़े, एक अनेक आदि नाना प्र-
के रूप बनाने की शक्ति) होती है, तथा वैक्रिय पुद्गलों से बन
शरीर उसे वैक्रिय शरीर कहते हैं।

प्रश्न - आहारक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर - आहारक शरीर नाम कर्म के उदय से प्राप्त, आहारक पुद्गलों से
बना हुआ शरीर आहारक कहलाता है।

प्रश्न - आहारक शरीर कौन, कब और कैसा बनाते हैं ?

उत्तर - आहारक लब्धि से युक्त छठे गुणस्थान वर्ती 14 पूर्व धारी मुनिराज
प्राणी दया, तीर्थकरों की ऋद्धि का दर्शन, सूक्ष्म पदार्थों को समझने
एवं संशय निवारण इन चार कारणों से मूल शरीर से अति विशुद्ध
स्फटिक के समान निर्मल आहारक पुद्गलों का पुरुषाकार पुतल
निकालते हैं। इसकी अवगाहना जघन्य देशोन एक हाथ, उत्कृष्ट
परिपूर्ण एक हाथ की होती है।

प्रश्न - तैजस शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर - तैजस शरीर नामकर्म के उदय से तैजस पुद्गलों से बना शरीर
तैजस शरीर कहलाता है। यह उष्मारूप और आहार को पचाकर
उसे रसादि में परिणत करने में सहायक है व तेजोलब्धि का हेतु है।

प्रश्न - कार्मण शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर - कार्मण शरीर नामकर्म के उदय से प्राप्त क्रमों को धारण करनेवाली
पेटि को कार्मण शरीर कहते हैं। तैजस् व कार्मण ये दो शरीर सभी
संसार जीवों में होते हैं।

आठवें बोले योग १५

1. सत्य मनोयोग 2. असत्य मनोयोग 3. मिश्र मनोयोग 4. व्यवहार
मनोयोग 5. सत्यभाषा 6. असत्य भाषा 7. मिश्र भाषा, 8. व्यवहार भाषा 9.
औदारिक काययोग 10. औदारिक मिश्र काययोग 11. वैक्रिय काययोग,
12. वैक्रिय मिश्र काययोग 13 आहारक 14. आहारक मिश्र काययोग 15.
कार्मण काययोग।

प्रश्न - योग किसे कहते हैं ?

उत्तर - मन, वचन, काया की प्रवृत्ति को योग कहते हैं।

नौवें बोले उपयोग १२

पाँच ज्ञान- आभिनियोधिक (मतिज्ञान), श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः
पर्यायज्ञान और केवलज्ञान। तीन अज्ञान-मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभगज्ञान

। चारदर्शन-चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन और केवलदर्शन ।

प्रश्न - उपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर - ज्ञान दर्शन में होती हुई आत्म प्रवृत्तिको उपयोग कहते हैं ।

दसवें बोले ८ कर्म

**ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य नाम,
गौत्र और अन्तराय**

प्रश्न - कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग के निमित्त से जिन कर्मण वर्गणा रूप पुद्गलो का आत्मा के साथ बध होता है, उसे कर्म कहते हैं । इसके 8 भेद हैं ।

- 1 **ज्ञानावरणीय कर्म** - जो कर्म आत्मा के ज्ञान गुण को ढाँकता है ।
- 2 **दर्शनावरणीय कर्म** - जो आत्मा की देखने की शक्ति को ढाँकता है ।
- 3 **वेदनीय कर्म** - जिस कर्म के फल से सुख-दुःख भोगा जाता है ।
- 4 **मोहनीय कर्म** - जिस कर्म से आत्मा धर्म से विमुख हो, पाप में प्रवृत्त हो, क्रोध, मान, माया और लोभ में समय व्यतीत करे, जिससे आत्मा मोहित (सत्, असत्, के ज्ञान से शून्य) हो जाए ।
- 5 **आयु कर्म** - जिस कर्म के उदय से जीव चार गतियों में रुका रहे ।
- 6 **नामकर्म** - जिस कर्म से आत्मा गति आदि नाना पर्यायों का धारण करे या अनुभव करे (शरीर आदि बने या जो जीवके अमूर्तत्व गुण को प्रगट न होने दे ।
- 7 **गौत्रकर्म** - जिस कर्म से जीव ऊँच-नीच कुलो में उत्पन्न हो ।
- 8 **अन्तराय कर्म** - जिस कर्म से दान, लाभ, भोग, उपयोग, और वीर्य में विघ्न उपस्थित हो जाते हैं ।

ग्यारहवें बोले गुणस्थान १४

1. मिथ्यात्व गुणस्थान 2. सास्वादन गुणस्थान 3. सम्यग मिथ्या (मिश्र) गुणस्थान 4. अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थान 5. देशविरति श्रावक गुणस्थान 6. प्रमादी साधु गुणस्थान 7. अप्रमादी साधु गुणस्थान 8. नियद्वि बादर गुणस्थान 9. अनियद्वि बादर गुणस्थान 10. सूक्ष्म संपराय गुणस्थान 11. उपज्ञांत मोहनीय गुणस्थान 12. क्षीण मोहनीय गुणस्थान 13. सयोगी केवली गुणस्थान 14. अयोगी केवली गुणस्थान ।

प्रश्न - जीवों की क्रमशः उन्नत अवस्थाओं को जैन शास्त्र में क्या कहते हैं

उत्तर - गुणस्थान । (जीव स्थान)

प्रश्न - गुणस्थान की परिभाषा क्या है ?

उत्तर - मोह कर्म के क्षय, उपशम और क्षयोपशम से तथा योग (मन, वक्त्र और काय की प्रवृत्ति) के निमित्त से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग् चारित्र्य रूप आत्मा के गुणों में जो तरतम भाव आता है, उसको गुणस्थान कहते हैं। आत्मा के क्रमिक विकास को भी गुणस्थान कहते हैं।

बारहवें बोले पाँच इन्द्रियों के तेईस विषय और २४० विकार

श्रोतेन्द्रिय के तीन विषय और बारह विकार - जीव शब्द, अजीव शब्द और मिश्र शब्द।

ये तीन शुभ और ३ अशुभ, इन ६ पर राग और ६ पर द्वेष इस प्रकार १२ विकार

चक्षुरिन्द्रिय के पाँच विषय और साठ विकार - काला, नीला, लाल, पीला और सफेद।

ये पाँच सचित्त, ५ अचित्त, ५ मिश्र, ये १५ शुभ १५ अशुभ। इन ३० पर राग और ३० पर द्वेष। इस प्रकार ६० विकार।

घ्राणेन्द्रिय के दो विषय और बारह विकार - सुरभिगंध, दुरभिगंध।

ये २ सचित्त, २ अचित्त, २ मिश्र इन ६ पर राग और ६ पर द्वेष, इस प्रकार १२ विकार।

रसनेन्द्रिय के पाँच विषय और साठ विकार - तीखा, कड़वा, कषायला, खट्टा और मीठा।

ये ५ सचित्त, ५ अचित्त, ५ मिश्र ये १५ शुभ और १५ अशुभ ३० पर राग और ३० पर द्वेष। इस प्रकार ६० विकार।

स्पर्शनेन्द्रिय के आठ विषय और ९६ विकार - कर्कश, कोमल, गुरु लघु, शील, उष्ण, शीत, रुक्ष और स्निग्ध।

ये ८ सचित्त, ८ अचित्त, ८ मिश्र ये २४ शुभ और २४ अशुभ। ४८ पर राग, ४८ पर द्वेष, इस प्रकार ९६ विकार।

टिप्पणी : दिवसों के स्वरूप को इस प्रकार समझा जा सकता है। यथा श्रोतेन्द्रिय के तीन विषय जीव शब्द अजीव शब्द एवं मिश्र शब्द तीन शुभ एवं तीन अशुभ रागों के शब्द शुभ तीन शब्द अशुभ, अजीव शब्द शुभ अजीव शब्द अशुभ मिश्र शब्द शुभ अशुभ।

यह ६ पर राग एवं ६ पर द्वेष अर्थात्

पहला विकार	-	जीव शब्द शुभ पर राग
दूसरा विकार	-	जीव शब्द शुभ पर द्वेष
तीसरा विकार	-	जीव शब्द अशुभ पर राग
चौथा विकार	-	जीव शब्द अशुभ पर द्वेष
पाँचवा विकार	-	अजीव शब्द शुभ पर राग
छठवा विकार	-	अजीव शब्द शुभ पर द्वेष
सातवाँ विकार	-	अजीव शब्द अशुभ पर राग
आठवाँ विकार	-	अजीव शब्द अशुभ पर द्वेष
नौवा विकार	-	मिश्र शब्द शुभ पर राग
दसवाँ विकार	-	मिश्र शब्द शुभ पर द्वेष
ग्यारहवाँ विकार	-	मिश्र शब्द अशुभ पर राग
बारहवाँ विकार	-	मिश्र शब्द अशुभ पर द्वेष

यह बात ध्यान देने योग्य है कि राग एवं द्वेष ही विकार हैं एवं इनके गुण ही विकार की सजा बनती है ।

यथा - चक्षुइन्द्रिय में काले वर्ण के बारह विकार इस प्रकार समझे जा स

- 1 काला सचित शुभ पर राग
- 2 काला सचित शुभ पर द्वेष
- 3 काला सचित अशुभ पर राग
- 4 काला सचित अशुभ पर द्वेष
- 5 काला अचित शुभ पर राग
- 6 काला अचित शुभ पर द्वेष
- 7 काला अचित अशुभ पर राग
- 8 काला अचित अशुभ पर द्वेष
- 9 काला मिश्र शुभ पर राग
- 10 काला मिश्र शुभ पर द्वेष
- 11 काला मिश्र अशुभ पर राग
- 12 काला मिश्र अशुभ पर द्वेष

काले के समान ही नीले, लाल, पिले एवं सफेद रंग के लिए सभ्रम लेना व इसी तरह से शेष इन्द्रियों के विकारों के सम्बन्ध में जान लेना चाहिए ।

प्रश्न - विषय किसे कहते हैं ?

उत्तर - इन्द्रियों के द्वारा जीव जिन शब्द, रूप आदि को ग्रहण करता है, उसे विषय कहते हैं ।

प्रश्न - विकार किसे कहते हैं ?

उत्तर - विषयो पर होनेवाली राग-द्वेष परिणति को विकार कहते हैं ।

तेरहवें बोल मिथ्यात्व के १० भेद

1. जीव को अजीव श्रद्धे तो मिथ्यात्व 2. अजीव को जीव श्रद्धे तो मिथ्यात्व 3. धर्म को अधर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्व 4. अधर्म को धर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्व 5. साधु को असाधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व 6. असाधु को साधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व 7. संसार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व 8. मोक्ष के मार्ग को संसार का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व 9. आठ कर्मों से मुक्त को अमुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व 10. आठ कर्मों से अमुक्त को मुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व।

प्रश्न - मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर - मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से जीव, अजीव आदि जो तत्त्व जैत हैं, वैसा नही मानना न्यूनाधिक मानना तथा विपरीत मानना मिथ्यात्व है।

चौदहवें बोले छोटी नवतत्त्व के ११५ भेद

नव तत्त्वों के नाम - 1. जीव तत्त्व 2. अजीव तत्त्व 3. पुण्य तत्त्व 4. पाप तत्त्व 5. आश्रव तत्त्व 6. संवर तत्त्व 7. निर्जरा तत्त्व 8. बंध तत्त्व 9. मोक्षतत्त्व।

नव तत्त्वों के भेद - जीव के 14, अजीव के 14, पुण्य 9, पाप के 18, आश्रव के 20, संवर के 20, निर्जरा के 12, बंध के 4, मोक्ष के 4, कुल मिलाकर 115 भेद हुए।

प्रश्न - तत्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर - वस्तु के (जीव, अजीव आदि के) वास्तविक स्वरूप को तत्त्व कहते हैं।

जीव के १४ भेद

सूक्ष्म एकेन्द्रिय के दो भेद

बाह्य एकेन्द्रिय के दो भेद

द्वीन्द्रिय के दो भेद

त्रीन्द्रिय के दो भेद

चतुरिन्द्रिय के दो भेद

असत्री पंचेन्द्रिय के दो भेद

सत्री पंचेन्द्रिय के दो भेद

अपर्याप्त और पर्याप्त

अपर्याप्त और पर्याप्त

अपर्याप्त और पर्याप्त

अपर्याप्त और पर्याप्त

अपर्याप्त और पर्याप्त

अपर्याप्त और पर्याप्त

अपर्याप्त और पर्याप्त

प्रश्न - जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो द्रव्य प्राण और मन प्राण को धारण करता है अर्थात् चेतन

लक्षण से युक्त है उसे जीव कहते हैं ।

प्रश्न - सूक्ष्म जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर - सूक्ष्म नाम कर्म के उदय से जो सूक्ष्म पृथ्वी, पानी आदि शरीरधारी जीव है, उनको ही सूक्ष्म जीव कहते हैं । वे जीव सारे लोक में व्याप्त हैं । उनकी आयु पूर्ण होने पर ही उनकी मृत्यु होती है । उनको कोई किसी भी शस्त्र से नहीं मार सकता । आग उन्हें जला नहीं सकती और न ही पानी उन्हें गला सकता है । असंख्यात सूक्ष्म पृथ्वी कायिक आदि जीवों के शरीर इकट्ठे हो जाने पर भी छद्मस्थ को दिखाई नहीं देते हैं । केवलज्ञानी ही इन्हें देख सकते हैं । सूक्ष्म नामकर्म का उदय एकन्द्रिय में ही होता है ।

प्रश्न - बादर एकेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर - बादर नाम कर्म के उदय से जो स्थूल शरीरधारी जीव है, उनको बादर एकेन्द्रिय कहते हैं । वे सारे लोक में व्याप्त नहीं हैं । वे आख से या यंत्र की सहायता से देखे जा सकते हैं । उन पर शस्त्र का प्रभाव पड़ता है । वे दूसरों के लिये भी अनुकूल प्रतिकूल होते हैं । पृथ्वी, पानी, वनस्पतिकाय आदि पांचों स्थावरों में वे होते हैं । सचित्त मिट्टी, पानी, लीलोतरी आदि के रूप में जिनका शरीर हम प्रतिदिन देखते हैं, वे बादर एकेन्द्रिय जीव हैं । एकेन्द्रिय जीव सूक्ष्म और बादर दोनों ही होते हैं । किन्तु बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय सभी जीव बादर ही होते हैं ।

प्रश्न - पर्याप्त और अपर्याप्त किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस जीव की जितनी पर्याप्तियाँ कही गई हैं, उन सभी पर्याप्तियों को पूर्ण कर लेने पर वह जीव पर्याप्त कहलाता है । एकेन्द्रिय जीव को आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास ये चार पर्याप्तियाँ होती हैं । जब जीव इनको पूरा कर लेता है, तब वह पर्याप्त कहलाता है । जब तक वह आहार, शरीर और इन्द्रिय इन तीनों को पूर्ण कर श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति को पूरा नहीं किया होता है, तब तक वह अपर्याप्त कहलाता है । ऐसे ही द्वीन्द्रियादि जीवों को भी जानना ।

प्रश्न - संज्ञी और असंज्ञी किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो मनवाले हैं, उनको संज्ञी कहते हैं और जिनके मन नहीं हैं, उनको असंज्ञी कहते हैं । मन पंचेन्द्रियों के ही होता है इसलिए जिन पंचेन्द्रिय जीवों के मन हैं, वे संज्ञी कहलाते हैं । जैसे-गर्भज मनुष्य और तिर्यच, औपपातिक देव या नारकीय जीव, जिन जीवों के मन नहीं हैं, वे असंज्ञी कहलाते हैं, जैसे एकइन्द्रिय, बेइन्द्रिय,

तेइन्द्रिय, चोइन्द्रिय समूर्च्छिम मनुष्यादि के जीव एवं विना गन्ध उत्पन्न तिर्यच पंचेन्द्रिय जीव ।

अजीव के १४ भेद

अरूपी अजीव के दस भेद

(1) धर्मास्तिकाय के तीन भेद - स्कंध, देश और प्रदेश

1) धर्मास्तिकाय का स्कंध 2) धर्मास्तिकाय का देश 3) धर्मास्तिकाय का प्रदेश

(2) अधर्मास्तिकाय के तीन भेद - स्कंध, देश और प्रदेश

4) अधर्मास्तिकाय का स्कंध 5) अधर्मास्तिकाय का देश 6) अधर्मास्तिकाय का प्रदेश

(3) आकाशस्तिकाय के तीन भेद - स्कंध, देश और प्रदेश

7) आकाशस्तिकाय का स्कंध 8) आकाशस्तिकाय का देश 9) आकाशस्तिकाय का प्रदेश

और दसवां काल । ये दस भेद अरूपी अजीव के होते हैं । रूपी पुद्गल के चार भेद हैं -

1) स्कंध 2) स्कंध का देश 3) स्कंध के प्रदेश 4) परमाणु पुद्गल ये कुल 14 भेद अजीव के होते हैं ।

प्रश्न - अस्तिकाय किसे कहते हैं ?

उत्तर - अस्तिकाय अर्थात् प्रदेश काय अर्थात् समूह यानि प्रदेशों के समूह को अस्तिकाय कहते हैं ।

प्रश्न - धर्मास्तिकाय किसे कहते हैं ?

उत्तर - जीव और पुद्गल जिस द्रव्य की सहायता से हलन-चलन करते हैं, उस द्रव्य का नाम धर्मास्तिकाय है, जैसे मछली के हलन-चलन में पानी सहायक होता है । यह द्रव्य चलने की प्रेरणा नहीं देता है, परन्तु चलायमान पदार्थ का सहायक होता है ।

प्रश्न - अधर्मास्तिकाय किसे कहते हैं ?

उत्तर - जीव और पुद्गलों की स्थिति में सहायक द्रव्य का नाम अधर्मास्तिकाय है, जैसे थके हुए पथिक को ठहरने में छाया उपकारक होती है । यह द्रव्य स्थिर होते हुए पदार्थ का सहायक होता जाता है ।

प्रश्न - आकाशस्तिकाय किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो सब द्रव्यों को जगमगा देता है उसे आकाशास्तिकाय कहते हैं । जैसे सूर्य, शङ्कर दो और गान्धी नामक को जगमगा देता है । हमने

दो भेद होते हैं - लोकाकाश और अलोकाकाश । लोकाकाश में सभी द्रव्य रहे हुए हैं जबकि अलोकाकाश में आकाश के सिवाय और कोई द्रव्य नहीं है क्योंकि हलन-चलन में सहायता करने वाला धर्मास्तिकाय द्रव्य लोकाकाश तक ही सीमित है ।

प्रश्न - आकाशास्तिकाय के कितने भेद हैं ?

उत्तर - आकाश तो अनादि अनत अखंड एक द्रव्य है, लेकिन लोकाकाश (जहाँ सभी द्रव्य रहते हैं) और अलोकाकाश (सिर्फ आकाश) की अपेक्षा इसके दो भेद हैं ।

प्रश्न - काल द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो द्रव्यो के परिणमने में सहायक हो अर्थात् नये-पुराने, छोटे-बड़े आदि की पहचान जिस द्रव्य से होती है, उसे काल द्रव्य कहते हैं। समय, आवलिका मुहूर्त, प्रहर, दिन-रात, मास, वर्ष आदि व्यवहार इसी द्रव्य के आधार से किये जाते हैं ।

प्रश्न - काल द्रव्य को आस्तिकाय क्यों नहीं कहा जाता है ?

उत्तर - काल अप्रदेशी होने अर्थात् प्रदेशों का समूह रूप न होने से काल द्रव्य को अस्तिकाय नहीं कहा गया है ।

प्रश्न - पुद्गलास्तिकाय किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिसमें वर्ण, गंध, रस, स्पर्श हो जो सडन-गलन स्वभाव वाला हो उसे पुद्गल कहते हैं तथा पुद्गलों के समूह को पुद्गलास्तिकाय कहते हैं । संसार में हम जिन पदार्थों को देखते हैं, वे सब पुद्गल हैं । सडना - गलना बिखरना और एकत्रित होना, ये सब क्रियाएँ पुद्गलों में होती हैं । जब तक जीव के साथ इसका सम्बन्ध बना रहा है, तब तक इनके साथ सचित्त का व्यवहार किया है । जीव के सम्बन्ध छूटते ही ये अपने असली स्वरूप में अचित्त रह जाते हैं, जैसे निर्जीव शरीर । यह द्रव्य संसारी जीवों की प्रवृत्तियों में विशेष सहायक होता है ।

प्रश्न - प्रदेश किसे कहते हैं ?

उत्तर - प्रदेश वह सूक्ष्म भाग कहलाता है, जिसके दूसरे भाग की कल्पना भी न की जा सकती हो और स्कन्ध के साथ अवयव रूप से मिला हुआ हो ।

अनेक प्रदेश मिल के देश कहलाते हैं और अनेक देशों का समूह स्कन्ध कहलाता है । देश भी स्कन्ध से मिले हुए ही होते हैं, स्वतंत्र नहीं रहते ।

प्रश्न - परमाणु किसे कहते हैं ?

उत्तर - पुद्गल के अति सूक्ष्म भाग को, जिसका फिर हिस्सा न किया जा सके, परमाणु कहते हैं। परमाणु और प्रदेश में यही अन्तर है कि प्रदेश अपने देश और स्कंध से मिले हुए होते हैं जबकि परमाणु उससे पृथक् होता है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के प्रदेश पृथक् नहीं हो सकते हैं। अतः इन द्रव्यों में परमाणु नहीं कहा गया है। रूपी अजीव द्रव्य में ही परमाणु होते हैं। इनको हम आँख से या किसी यंत्र के सहारे से भी नहीं देख सकते हैं।

पुण्य के ९ भेद

1. अन्न पुण्य - अन्न देने से पुण्य होता है। 2. पान पुण्य - पानी देने से पुण्य होता है। 3. लयन पुण्य - जगह देने से पुण्य होता है। 4. शयन पुण्य - शय्या, पाट, पाटला आदि देने से पुण्य होता है। 5. वस्त्र पुण्य - वस्त्र देने से पुण्य होता है। 6. मन पुण्य - शुभ मन रखने से पुण्य होता है। 7. वचन पुण्य - शुभ वचन बोलने से पुण्य होता है। 8. काय पुण्य - शरीर द्वारा सेवा तथा विनय करने से पुण्य होता है। 9. नमस्कार पुण्य - गुणवान को नमस्कार करने से पुण्य होता है।

प्रश्न - पुण्य किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो आत्मा को पवित्र करे और जिससे प्राणियों को सुख की प्राप्ति हो, उसे पुण्य कहते हैं।

पाप के १८ भेद

1. प्राणातिपात - जीवों की हिंसा करना। 2. मृषावाद - झूठ बोलना। 3. अदत्तादान - चोरी करना। 4. मैथुन - कुशील सेवन करना। 5. परिग्रह - धन - सग्रह की लालसा करना। 6. क्रोध - रोष करना। 7. मान - अहंकार करना। 8. माया - छल - कपट करना। 9. लोभ - लालच, तृष्णा बढ़ाना। 10. राग - स्नेह, प्रीति करना। 11. द्वेष - वेर। 12. कलह - क्लेश करना। 13. अम्याख्यान - झूठा कलंक चढ़ाना। 14. पैशुन्य - चुगली करना। 15. पर-परिवाद - दुसरो की निंदा करना। 16. रति - अरति - मनोज्ञ वस्तुओं पर प्रसन्न होना और अमनोज्ञ वस्तुओं पर नाराज होना। 17. माया-मृषावाद - छल - कपट के साथ झूठ बोलना। 18. मिथ्यादर्शन शल्य - कुदेव, कुगुरु और कुधर्म पर श्रद्धा रखना।

प्रश्न - पाप किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो आत्मा को मलिन करे, जो अशुभ योगो से बधे और दुःख पूर्वक भोगा जाय उसे पाप कहते हैं ।

आस्त्रव के २० भेद

1. मिथ्यात्व - असत्य विचार करे तो आस्त्रव । 2. अव्रत - प्रत्याख्यान नहीं करे तो आस्त्रव । 3. प्रमाद - पाच प्रमाद का सेवन करे, सो आस्त्रव । 4. कषाध - क्रोध, मान, माया और लोभ का सेवन करे सो आस्त्रव । 5. अशुभ योग प्रवर्तवि सो आस्त्रव । 6. प्राणातिपात - जीव हिंसा करे सो आस्त्रव । 7. मृषावाद - झूठ बोले सो आस्त्रव । 8. अदत्तादान - चोरी करे सो आस्त्रव । 9. मैथुन - कुशील सेवे सो आस्त्रव । 10. परिग्रह - धन सग्रह करे सो आस्त्रव । 11. श्रोत्रेन्द्रिय - वश में नहीं रखे सो आस्त्रव । 12. चक्षुरेन्द्रिय - वश में नहीं रखे सो आस्त्रव । 13. घ्राणेन्द्रिय - वश में नहीं रखे सो आस्त्रव । 14. रसनेन्द्रिय - वश में नहीं रखे सो आस्त्रव । 15. स्पर्शनेन्द्रिय - वश में नहीं रखे सो आस्त्रव । 16. मन - वश में नहीं रखे सो आस्त्रव । 17. वचन - वश में नहीं रखे सो आस्त्रव । 18. काया - वश में नहीं रखे सो आस्त्रव । 19. भङ्ग - उपकरण अयतना से लेवे और रखे सो आस्त्रव । 20. सुई - कुशाग्र मात्र कोई भी वस्तु असावधानी से लेवे और रखे सो आस्त्रव ।

प्रश्न - आस्त्रव तत्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस क्रिया द्वारा आत्मा में शुभ, अशुभ कर्म आते हैं उसे आस्त्रव कहते हैं । जीव रूपी तालाब में कर्म रूपी पानी आस्त्रव रूपी नालो द्वारा आता है ।

संवर के २० भेद

1. समकित संवर । 2. व्रत पच्यक्खाण करे, सो संवर । 3. प्रमाद नहीं करे, सो संवर । 4. कषाय नहीं करे, सो संवर । 5. शुभ योग प्रवर्तवि तो संवर । 6. प्राणातिपात विरमण जीव हिंसा न करे, सो संवर । 7. मृषावाद - विरमण झूठ नहीं बोले, सो संवर । 8. अदत्तादान विरमण चोरी नहीं करे, सो संवर । 9. मैथुन विरमण कुशील नहीं सेवे, सो संवर । 10. परिग्रह - विरमण मूर्च्छा सग्रह नहीं रखे, सो संवर । 11. श्रोत्रेन्द्रिय - वश में करे, सो संवर । 12. चक्षुर्न्द्रिय - वश में करे, सो संवर । 13. घ्राणेन्द्रिय - वश में करे, सो संवर । 14. रसनेन्द्रिय - वश में रखे सो संवर । 15. स्पर्शनेन्द्रिय - वश में रखे सो संवर । 16. मन - वश में रखे सो संवर । 17. वचन - वश में रखे

सो सवर । 18. काया - वश में रखे सो संवर । 19. भंड - उपकरण यतना से लेवे और रखे, सो संवर । 20. सुई - कुशाग्र मात्र यतना से लेवे और यतन से रखे सो, सवर ।

प्रश्न - संवर किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस क्रिया द्वारा आत्मा में शुभ-अशुभकर्मों का आना रुकता है, उसे सवर कहते हैं । जीव रुपी तालाब में आस्त्रव रुपी नालो द्वारा आता हुआ कर्म रुपी पानी सम्यक्त्व, व्रत, प्रत्याख्यानदि द्वारा रुकता है ।

निर्जरा के १२ भेद

1. अनशन (उपवास आदि) 2. ऊनोदरी (कम खाना), 3 भिक्षा चर्या (साधुवृत्ति के अनुसार भिक्षा मांगना) 4 रस-परित्याग (घृतादि का त्याग), 5 कायक्लेश (आसनादि लगाना) 6. प्रतिसंलीनता (इन्द्रियो को वश में करना) 7. प्रायश्चित्त (दण्ड लेना) 8 विनय (विनय करना) 9. वैयावृत्य (सेवा करना) 10 स्वाध्याय (पढ़ाना-पढ़ना) 11 ध्यान (योगाभ्यास करना) 12 कायोत्सर्ग (काया को ध्यान में स्थिर रखना)

प्रश्न - निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर - आत्मा पर लगे हुए कर्मों का आंशिक रूप से अलग होना निर्जरा है। उपवास करना, भूख से कम खाना, स्वादिष्ट पदार्थों का त्याग करना, दूसरों की सेवा करना, ज्ञान की उपासना करना आदि 12 प्रकार के तप से आत्मा निर्मल बन कर सिद्धी को प्राप्त कर लेती है। निर्जरा के दो भेद - सकाम और अकाम । सकाम निर्जरा ही मुक्ति को प्राप्त करने में सहायक बनती है ।

बंध के ४ भेद

1. प्रकृति बंध 2. स्थिति बंध 3. अनुभाग बंध 4. प्रदेश बंध

प्रश्न - बंध तत्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर - कषाय व योग के कारण आत्मा के साथ कर्म पुद्गलों के मिलने को बंध कहते हैं। जैसे दूध और पानी, लोहपिण्ड और अग्नि एकमेक हो जाते हैं, वैसे ही आत्मप्रदेश के साथ कर्मों के मिलने को बंध कहते हैं । आठ कर्मों के स्वभाव को प्रकृति बंध कहते हैं । आठ कर्मों के काल परिमाण को स्थिति बंध कहते हैं । आठ कर्मों के तीव्र

मदादि रस को अनुभाग बध कहते हैं। कर्म पुद्गलो के दल का आत्मा के साथ बध होना प्रदेश बध कहलाता है।

प्रकृति बध और प्रदेश बध का कारण योग है तथा स्थिति बध और अनुभाग बध का कारण कषाय।

मोक्ष के ४ भेद

1. सम्यक् दर्शन 2. सम्यक् ज्ञान 3. सम्यक् चारित्र और

4. सम्यक् तप।

सम्यक् दर्शन - जिनेश्वर भगवान के वचनो पर शुद्ध श्रद्धा रखना।

सम्यक् ज्ञान - श्रद्धापूर्वक सच्चे ज्ञान को सम्यक् ज्ञान कहते हैं।

सम्यक् चारित्र - दर्शन और ज्ञान पूर्वक सत् आचरण करना।

सम्यक् तप - आत्मशुद्धि के लिए विशिष्ट अनुष्ठान करना।

प्रश्न - मोक्ष किसे कहते हैं ?

उत्तर - जब आत्मा सर्वथा कर्म रहित होकर जन्म-मरण के बधन से मुक्त हो जाती है तो उसे मोक्ष कहा जाता है। मोक्ष दशा में न शरीर रहता है और न शरीर में काम आनेवाले ससारी भोग ही रहते हैं। उस समय यही जीव आत्मा परमात्मा बन जाता है। निर्जरा में कर्मों का नाश अधूरा रहता है, जबकि मोक्ष में कर्मों का पूर्णतया नाश हो जाता है। यही इन दोनों में भेद है।

पन्द्रहवें बोले आत्मा ८

1. द्रव्य आत्मा 2. कषाय आत्मा 3. योग आत्मा 4. उपयोग आत्मा

5. ज्ञान आत्मा 6. दर्शन आत्मा 7. चारित्र आत्मा 8. वीर्य आत्मा

1 द्रव्य आत्मा - त्रिकालवर्ती, असंख्य प्रदेशी, द्रव्य रूप आत्मा।

2 कषाय आत्मा - क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कषाय युक्त आत्मा।

3 योग आत्मा - मन, वचन और काया रूप योग युक्त आत्मा।

4 उपयोग आत्मा - पांच ज्ञान, तीन अज्ञान और चार दर्शन रूप उपयोग विशिष्ट आत्मा।

5 ज्ञान आत्मा - मतिज्ञानादि (साकारोपयोग) रूप ज्ञान युक्त आत्मा।

6 दर्शन आत्मा - चक्षुदर्शनादि (निराकारोपयोग) रूप दर्शन युक्त आत्मा।

7 चारित्र आत्मा - सामायिक चारित्र आदि रूप चारित्र विशिष्ट आत्मा।

8 वीर्य आत्मा - उत्थान रूप वीर्य युक्त आत्मा।

सोलहवें बोले दण्डक २४

सात नारकी का एक दंडक । सात नेरयिक पृथ्वियों में रहते हैं उन पृथ्वियों के नाम धम्मा, वंशा, शीला, अंजणा, रिद्धा, मघा और माघवई ।

इनके गोत्र-रत्ना-प्रभा, शर्करा-प्रभा, बालुका-प्रभा, पंक-प्रभा, धूम-प्रभा, तमः-प्रभा और तमस्तमः-प्रभा ।

दस भवनपतियों के दस दंडक उनके नाम - 1. असुरकुमार 2. नागकुमार 3. सुवर्णकुमार 4. विद्युतकुमार 5. अग्निकुमार 6. द्वीपकुमार 7. उदधिकुमार 8. दिशाकुमार 9. पवनकुमार 10. स्तनितकुमार ।

पांच स्थावरों के पांच दण्डक । पांच स्थावरों के नाम पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय ।

तीन विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक, तीन विकलेन्द्रियों के नाम - द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय ।

तिर्यच पंचन्द्रिय का एक दण्डक, मनुष्य का एक दण्डक वाणव्यन्तर देवता का एक दण्डक, ज्योतिषी देवता का एक दण्डक, वैमानिक देवता का एक दण्डक ।

ये सब चौबीस दण्डक हुए । $(1+10+5+3+1+1+1+1+1=24)$ ।

प्रश्न - दण्डक किसे कहते हैं ?

उत्तर - अपने किये गये कर्मों का जहाँ दण्ड भोगा जाता है, वे स्थान दण्डक कहे जाते हैं ।

प्रश्न - विकलेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिनकी पाँचो इन्द्रियों पूरी न मिली हो । जैसे बेइन्द्रिय, तेईन्द्रिय, चउइन्द्रिय आदि कहीं-कहीं एकेन्द्रिय को भी विकलेन्द्रिय माना गया है ।

प्रश्न - तिर्यच पंचेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर - तिर्यच गति वाले ऐसे जीव, जिन्हें पाँचो इन्द्रियों पूरी मिली हो जैसे मछली, पशु, पक्षी, सर्प, नेवला आदि ।

सत्रहवें बोले लेश्या ६

1. कृष्ण लेश्या 2. नील लेश्या 3. कापोत लेश्या 4. तेजो लेश्या 5. पद्म लेश्या, 6. शुक्ल लेश्या ।

प्रश्न - लेश्या किसे कहते हैं ?

उत्तर - आत्मा के शुभाशुभ परिणामों को लेश्या कहते हैं ।

छह लेश्या का दृष्टान्त

यदि जामुन के वृक्ष पर फल लगे हुए हों और उनको खाने की इच्छा हो तो कृष्ण लेश्या वाला वृक्ष की जड़ काटकर फल खाना चाहेगा । नील लेश्या वाला बड़ी-बड़ी शाखाएँ काटकर फल खाना चाहेगा । कापोत लेश्या वाला छोटी 2 शाखाएँ काटकर फल खाना चाहेगा । तेजो लेश्या वाला फलों के गुच्छे तोड़कर फल खाना चाहेगा । पद्म लेश्या वाला सिर्फ पके हुए फलों को तोड़कर खाना चाहेगा । शुक्ल लेश्या वाला धरती पर पड़े हुए फल खाकर ही सतोष कर लेगा ।

इन छह लेश्याओं में पहले की तीन अशुभ और अधर्म लेश्याएँ हैं । इन लेश्याओं में अशुभ गति का बंध पड़ता है । शेष तीन लेश्यायें शुभ व धर्म-लेश्यायें हैं । इन लेश्याओं में शुभ गति का बंध पड़ता है ।

अठारहवें बोले दृष्टि ३

1. सम्यक् दृष्टि 2. मिथ्या दृष्टि 3. मिश्र दृष्टि ।

प्रश्न - दृष्टि किसे कहते हैं ?

उत्तर - यद्यपि दृष्टि शब्द का अर्थ नेत्र ज्योति या देखने की शक्ति होता है, परन्तु प्रस्तुत प्रकरण में दृष्टि का अर्थ मान्यता या सिद्धांत है । देव, गुरु धर्म एवं जीवादि तत्त्व विषयक श्रद्धाविशेष को दृष्टि कहते हैं ।

सम्यक् दृष्टि - वीतराग देव की वाणी पर श्रद्धा रखने वाला ।

मिथ्या दृष्टि - वीतराग वाणी को देशत या सर्वत मिथ्या मानता है ।

मिश्र दृष्टि - वीतराग वाणी के प्रति न रुचि हो न अरुचि हो ।

उन्नीसवें बोले ध्यान ४

1. आर्तध्यान 2. रौद्र ध्यान 3. धर्म ध्यान और 4. शुक्ल ध्यान

प्रश्न - ध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर - एक वस्तु या विषय परमन को स्थिर करना ध्यान है । पहले के दोनों ध्यान अशुभ हैं और शेष दोनों शुभ हैं ।

बीसवें बोले षट्द्रव्यों के ३० भेद

षट्द्रव्य के नाम : 1. धर्मास्तिकाय 2. अधर्मास्तिकाय 3. आकाशास्तिकाय
4. काल द्रव्य 5. जीवास्तिकाय 6. पुद्गलास्तिकाय ।

1. धर्मास्तिकाय के 5 भेद

धर्मास्तिकाय को पाँच बोलों से जाना जाता है - 1 द्रव्य से एकद्रव्य 2 क्षेत्र से सम्पूर्ण लोक प्रमाण 3. काल से - आदि अंत रहित 4. भाव से - वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रहित, अर्थात् अरूपी अजीव शाश्वत लोकव्यापी और असंख्यात प्रदेशी है । 5. गुण से - चलन गुण । पानी में मछली का दृष्टांत । जैसे पानी के आधार से मछली चलती है वैसे ही जीव और पुद्गल दोनों धर्मास्तिकाय के आधार से चलते हैं ।

2. अधर्मास्तिकाय के 5 भेद

अधर्मास्तिकाय को 5 बोलों से जाना जाता है । 1. द्रव्य से - एक द्रव्य । 2. क्षेत्र से - सम्पूर्ण लोक प्रमाण । 3. काल से - आदि अंत रहित । 4. भाव से - वर्ण नहीं, गंध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं, अरूपी अजीव शाश्वत लोकव्यापी और असंख्यात प्रदेशी हैं । 5. गुण से - स्थिर गुण थके हुए पथिक को छाया का दृष्टांत । जैसे थके हुए पथिक को छाया का आधार है, उसी तरह ठहरे हुए जीव और पुद्गल को अधर्मास्तिकाय का आधार है ।

3. आकाशास्तिकाय के 5 भेद

आकाशास्तिकाय को 5 बोलों से जाना जाता है । 1 द्रव्य से - एक द्रव्य । 2. क्षेत्र से - लोकालोक प्रमाण । 3 काल से - आदि अन्त रहित । 4. भाव से - वर्ण, गंध रस और स्पर्श रहित । अरूपी, अजीव शाश्वत सर्वव्यापी और अनन्त प्रदेशी है । 5. गुण से - स्थान देने का गुण । भीत में खुँटी का दृष्टांत । जैसे खुँटी को भीत स्थान देने में सहायक है । वैसे ही धर्मास्तिकायादि पाँच द्रव्यों को आकाशास्तिकाय स्थान देने में सहायक है ।

4. काल के 5 भेद

काल द्रव्य को पाँच बोलों से जाना जाता है । 1 द्रव्य से - अनन्त द्रव्य । 2. क्षेत्र से - अर्द्ध द्वीप प्रमाण । 3. काल से - आदि अंत रहित । 4. भाव से - वर्ण, गंध और स्पर्श रहित । अरूपी शाश्वत और अप्रदेशी है । 5 गुण से - वर्तन गुण । नये को पुराने और पुराने को नष्ट करे । कपड़े को कैची का दृष्टांत । प्रदेश रहित होने से काल अस्तिकाय नहीं है ।

5. जीवास्तिकाय के 5 गुण

जीवास्तिकाय को 5 बोलों से जाना जाता है । 1 **द्रव्य से** - अनन्त जीव द्रव्य । 2 **क्षेत्र से** - सम्पूर्ण लोक प्रमाण । 3 **काल से** - आदि अत रहित । 4 **भाव से** - वर्ण, गंध और स्पर्श रहित । अरुपी शाश्वत, लोकव्यापी और अनन्त प्रदेशी है । एक आत्मा आश्रित शरीर व्यापी एवं असख्यात प्रदेशी है । 5 **गुण से** - उपयोग गुण । चन्द्रमा का दृष्टात । जैसे कितने ही बादलों के द्वारा ढक जाने पर भी चन्द्रमा का कुछ कुछ प्रकाश रहता है । उसी प्रकार कितने भी क्रमों का आवरण आजाने पर भी जीव में उपयोग का कुछ न कुछ अश अनावृत्त रहता है ।

6. पुद्गलास्तिकाय के 5 भेद

पुद्गलास्तिकाय को 5 बोलों से जाना जाता है । 1 **द्रव्य से** - अनन्त द्रव्य । 2 **क्षेत्र से** - सम्पूर्ण लोक प्रमाण । 3 **काल से** - आदि अत रहित । 4 **भाव से** - रूपी अर्थात् वर्ण, गंध, रस और स्पर्श युक्त । अजीव शाश्वत और सख्यात-असख्यात एवं अनन्त प्रदेशी है । 5 **गुण से** - सडन गलन गुण । बादल का दृष्टात । बादल की तरह पुद्गल भी मिलते और बिखरते हैं ।

प्रश्न - द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर - भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों काल में रहेन वाल गुण और पर्यायों का जो आधार होता है , उसे द्रव्य कहते हैं ।

प्रश्न - लोक किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिसमें धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य हों उसे लोक कहते हैं ।

प्रश्न - अलोक किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिसमें आकाश के सिवाय अन्य द्रव्य का अस्तित्व न हो उसे अलोक कहते हैं ।

प्रश्न - गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो द्रव्य के आश्रित हो, द्रव्य के सब अशो में हर समय हो उसे गुण कहते हैं ।

इक्कीसवें बोले राशि २

1. जीव राशि 2. अजीव राशि

प्रश्न - राशि किसे कहते हैं ?

उत्तर - समूह, वर्ग या ढेर को राशि कहते हैं । जीव राशि के 563 भेद और अजीव राशि के 560 भेद होते हैं ।

* जीव के भेद पेज न 84 पर देखे ।

बाइसवें बोले श्रावक के १२ व्रत

1. पहिले स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत मे श्रावक त्रस जीवो की हिंसा करे नहीं, करावे नही, मन, वचन और काया से । त्रस जीवो को मारने का त्याग करे, स्थावर की मर्यादा करे।
2. दूसरे स्थूल मृषावद विरमण मे श्रावक - मोटा (स्थूल) झूठ बोले नही, बोलावे नही, मन वचन और काया से ।
3. तीसरे स्थूल अतादान विरमण व्रत मे श्रावक मोटी चोरी करे नहीं, करावे नही, मन, वचन और काया से ।
4. चौथे स्थूल परदार-विवर्जन एवं स्वदार-संतोष रुप मेथुन विरमण व्रत मे श्रावक पर-स्त्री का सेवन का त्याग करे और अपनी स्त्री मे मर्यादा करे ।
5. पांचवाँ स्थूल परिग्रह परिमाण विरमण व्रत मे श्रावक परिग्रह की मर्यादा करे ।
6. छठे, दिशा परिमाण व्रत मे श्रावक छहो पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊँची-नीची दिशाओ की मर्यादा करे ।
7. सातवें उपभोग, परिभोग, परिमाण, व्रत में श्रावक 26 बोल की मर्यादा करे, 15 कर्मादान का त्याग करे ।
8. आठवे - श्रावकजी अनर्थदण्ड का त्याग करे ।
9. नौवें सामायिक व्रत मे श्रावक प्रतिदिन शुद्ध सामायिक करे ।
10. दसवें देशावकाशिक व्रत मे श्रावक देशावकाशिक पौषध करे । दया करे, संवर करे, चौदह नियम चितारे ।
11. ग्यारहवें पौषधोपवास व्रत मे श्रावक प्रतिपूर्ण पौषध करे ।
12. बारहवें अतिथि संविभाग व्रत मे श्रावक प्रतिदिन चौदह प्रकार की वस्तुओ में से जो निर्दोष हो, देवे ।

तेइसवें बोले साधुजी के पांच महाव्रत

1. अहिंसा महाव्रत - पहले महाव्रत मे साधुजी महाराज सर्वथा प्रकारसे जीव हिंसा करे नही । करावे नही और करते हुए को भला जाने नही मन-वचन और काया से (तीन करण, तीन योग से) ।
2. सत्य महाव्रत - दूसरे महाव्रत मे साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार से झूठ बोले नही, बोलावे नही, बोलते हुए को भला जाने नही, मन, वचन और काया से (तीन करण, तीन योग से) ।
3. अचौर्य महाव्रत - तीसरे महाव्रत मे साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार

से चोरी करें नहीं, करावें को नहीं, करते हुए को भला जाने नहीं, मन, वचन और काया से (तीन करण, तीन योग से) ।

4. ब्रह्मचर्य महाव्रत - चौथे महाव्रत में साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार से मैथुन सेवे नहीं, सेवावे नहीं, सेवते हुए की भला जाने नहीं, मन, वचन और काया से (तीन करण, तीन योग से) ।

5 अपरिग्रह महाव्रत - पाचवे महाव्रत में साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार से परिग्रह रखे नहीं, रखावे नहीं, रखते हुए को भला जाने नहीं, मन, वचन और काया से (तीन करण, तीन योग से) ।

प्रश्न - व्रत और महाव्रत में क्या अन्तर है ।

उत्तर - गृहस्थ जीवन की मर्यादा में रहकर अपनी शक्ति के अनुसार अहिंसादि बारह अणुव्रतों का पालन व्रत कहलाता है । घर-बार को भी छोड़कर सर्वथा निर्दोष रूप से अहिंसादि व्रतों को पूर्ण पालन करना महाव्रत कहलाता है । श्रावक अणुव्रती कहलाता है और पंच महाव्रतधारी साधु या साध्वी महाव्रतधारी होते हैं । संक्षेप में कहा जाय तो दोषों की पूर्ण निवृत्ति को महाव्रत कहते हैं और आशिक निवृत्ति को अणुव्रत या देश विरति कहते हैं ।

चौबीसवें बोले मांगा ४९ का जाणपणा

नौ अंक 11, 12, 13, 21, 22, 23, 31, 32, 33 इसमें प्रथम एक करण और दूसरा अंक योग रूप है ।

11 आंक एक ग्यारह का भंग उपजे नौ । एक करण एक योग कहना ।

1 करुगा नहीं मन से 2 करुगा नहीं वचन से, 3 करुगा नहीं काया से, 4 कराऊगा नहीं मन से । 5 कराऊगा नहीं वचन से 6 कराऊगा नहीं काया से, 7 अनुमोदना दूगा नहीं मन से, 8 अनुमोदना दूगा, नहीं वचन से, 9 अनुमोदना दूगा नहीं काया से ।

12 आंक एक बारह से भंग उपजे नौ । एक करण दो योग कहना ।

1 करुगा नहीं - मन से, वचन से ।

2 करुगा नहीं - मन से, काया से ।

3 करुगा नहीं - वचन से, काया से ।

4 कराऊगा नहीं - मन से वचन से ।

- 5 कराऊंगा नहीं - मन से, काया से ।
- 6 कराऊंगा नहीं - वचन से, काया से ।
- 7 अनुमोदूंगा नहीं - मन से वचन से ।
- 8 अनुमोदूंगा नहीं - मन से, काया से ।
- 9 अनुमोदूंगा नहीं - वचन से, काया से ।

13. आंक एक तेरह का भंग उपजे तीन । एक करण तीन योग से कहना ।

- 1 करुंगा नहीं - मन से, वचन से काया से ।
- 2 कराऊंगा नहीं - मन से, वचन से काया से ।
- 3 अनुमोदूंगा नहीं - मन से, वचन से काया से ।

21 आंक एक इक्कीस का भंग उपजे नौ । दो करण एक योग से कहना ।

- 1 करुंगा नहीं, कराऊंगा नहीं - मन से ।
- 2 करुंगा नहीं, कराऊंगा नहीं - वचन से ।
- 3 करुंगा नहीं, कराऊंगा नहीं - काया से ।
- 4 करुंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं - मन से ।
- 5 करुंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं - वचन से ।
- 6 करुंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं - काया से ।
- 7 कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं - मन से ।
- 8 कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं - वचन से ।
- 9 कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं - काया से ।

22. आंक एक बाईस का भंग उपजे नौ । दो करण, दो योग से कहना ।

1. करुंगा नहीं, कराऊंगा नहीं - मन से, वचन से ।
- 2 करुंगा नहीं, कराऊंगा नहीं - वचन से, काया से ।
3. करुंगा नहीं, कराऊंगा नहीं - काया से, मन से ।
4. करुंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं - मन से, वचन से ।
5. करुंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं - वचन से, काया से ।
6. करुंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं - काया से, मन से ।
- 7 कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं - मन से, वचन से ।
8. कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं - वचन से, काया से ।
- 9 कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं - मन से, काया से ।

23. आंक एक तेईस का भंग उपजे तीन । दो करण तीन योग

से कहना ।

- 1 करुगा नही, कराऊगा नही, मन से, वचन से, काया से ।
- 2 करुगा नही, अनुमोदूंगा नही, मन से, वचन से, काया से ।
- 3 कराऊंगा नही, अनुमोदूंगा नही, मन से, वचन से, काया से ।

31 आक एक इकतीस का भंग उपजे तीन । तीन करण योग से कहना ।

- 1 करुगा नही, कराऊगा नही, अनुमोदूंगा नही मन से ।
- 2 करुगा नही, कराऊगा नही, अनुमोदूंगा नही वचन से ।
- 3 करुगा नही, कराऊगा नही, अनुमोदूंगा नही काया से ।

32. आंक एक बत्तीस का भग उपजे तीन । तीन करण दो योग से कहना ।

- 1 करुगा नही, कराऊगा नही, अनुमोदूंगा नही, मन से, वचन से।
- 2 करुगा नही, कराऊगा नही, अनुमोदूंगा नही, वचन से, काया से।
- 3 करुगा नही, कराऊगा नही, अनुमोदूंगा नही, मन से, काया से।

33. आंक तैसीस का भंग उपजे एक । तीन करण तीन योग से कहना ।

- 1 करुगा नही, कराऊगा नही, अनुमोदूंगा नही मन से, वचन से काया से ।

प्रश्न : भंग किसे कहते है ?

उत्तर श्रावक के प्रत्याख्यान करने के विकल्प को भग कहते है ।

पच्चीसवें बोले चारित्र ५

1. सामायिक चारित्र 2. छेदोपस्थानीय चारित्र 3. परिहार विशुद्ध चारित्र, 4. सूक्ष्म सम्पराय चारित्र 5. यथाख्यात चारित्र ।

प्रश्न - चारित्र किसे कहते है ?

उत्तर - जिसके पालन से कर्मों का आना रुके और आत्मा शुद्ध बने, उसे चारित्र कहते है ।

तृतीय आयाम

श्रावक - प्रतिक्रमण सूत्र

(अर्थ भावार्थ सहित)

स्थानक मे म. सा. विराजमान हों तो उन्हें तिक्युतो के पाठ से 3 बार वन्दना करें। यदि म. सा. विराजमान न हो तो उत्तर या पूर्व दिशा है ओर मुंह करके अपने गुरुदेव की आज्ञा लेकर चउवीसत्थव करे। चउवीसत्थव में नवकार मंत्र, इच्छाकारेणं, तस्सउत्तरी का पाठ कह कर काउस्सग करे। काउस्सग दो लोगस्स मन में कहें तथा णमो अरिहताणं कह कर काउस्स परे। फिर नवकार मंत्र और ध्यान का पाठ कहें और लोगस्स प्रगट बोले। वाय घुटना खडा करके दो णमोत्थुणं बोलें। दूसरे णमोत्थुण में सपताणं के स्थान पर संपाविउकामाणं कहें। फिर खडे होकर प्रतिक्रमण की आज्ञा है ऐसा बोलकर तीन बार तिक्युतो के पाठ से वंदना करके खडे होकर इच्छामि ण भते का पाठ बोले।

॥ इच्छामि णं भंते का पाठ ॥

इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भुणुण्णाए समाणे देवसियं पडिक्कमणं ठाएमि, देवसियणाणदंसणचरित्ताचरित्ततव अइयारचिंतणत्थं करेमि काउस्सगा

मूल शब्द	अर्थ
इच्छामि	- मैं इच्छा करता हू
णं	- (यह अव्यय है, वाक्य अलकार में आता है)
भंते	- हे पूज्य ! हे भगवन !
तुब्भेहिं	- आपकी
अब्भुणुण्णाए समाणे	- आज्ञा होने पर
देवसियं पडिक्कमणं	- दिन सम्बन्धी प्रतिक्रमण को
ठाएमि	- करता हूँ
देवसिय	- दिवस सम्बन्धी
नाण दंसण	- ज्ञान, दर्शन (श्रद्धान)
चरित्ताचरित्त	- देशव्रत (श्रावक धर्म)
तव	- तप (इनके)

अइयार	-	अतिचारो (दोषो) का
चितणत्थं	-	चिन्तन करने के लिये
करेमि	-	करता हूँ
काउस्सग	-	कायोत्सर्ग को

भावार्थ - हे भगवन् ! मैं आपकी आज्ञा होने पर दिन में लगे हुए दोषों से निवृत्त होना चाहता हूँ । दिन में जो ज्ञान, दर्शन, देशव्रत तथा तप में अतिचार लगे हो, उनका स्मरण करने के लिए कायोत्सर्ग करता हूँ ।

॥ इच्छामि ठामि का पाठ ॥

इच्छामि ठाइउं काउस्सगं जो मे देवसियो अइयारो कओ, काइओ, वाइओ, माणसिओ, उस्सुतो, उम्मगो, अकप्पो, अकरणिज्जो, दुज्झाओ, दुव्विचित्तिओ, अणायारो, अणिच्छिअव्वो, असावगपाउगो नाणे तह दंसणे चरित्ताचरित्ते, सुए, समाइए, तिण्हं गुत्तीण, चउण्हं कसायाणं, पचण्हमणुव्वयाणं, तिण्हं गुणव्वयाणं चउण्ह सिक्खावयाणं, बारसविहस्स सावगधम्मस्स, जं खंडियं जं विराहियं तस्स मिच्छा मिं दुक्कडं ।

कायोत्सर्ग के पहले इच्छामि ठाइउ काउस्सग और कायोत्सर्ग में इच्छामि आलोउ तथा अन्य स्थानों पर इच्छामि षड्विक्कमिउ बोलना चाहिये ।

इच्छामि ठाइउं	-	मैं करने की इच्छा करता हूँ
काउस्सगं	-	एक स्थान में स्थिर रहने रूप कायोत्सर्ग को
जो मे	-	जो मैंने
देवसिओ	-	दिन सम्बन्धी
अइयारो कओ	-	अतिचार (दोष) किया हो
काइओ	-	काया सम्बन्धी
वाइओ	-	वचन सम्बन्धी
माणसिओ	-	मन सम्बन्धी
उस्सुतो-सूत्र	-	विपरीत कथन किया हो
उम्मगो	-	उन्मार्ग (जैन-मार्ग से अर्थात् आत्मकल्याण के मार्ग से विपरीत) का कथन किया हो
अकप्पो	-	अकल्पनीय (नहीं कल्पने योग्य)
अकरणिज्जो	-	नहीं करने योग्य कार्य किया हो
दुज्झाओ	-	दुष्ट ध्यान किया हो
दुव्विचित्तिओ	-	दुष्ट चिन्तन किया हो

अणायारो	-	अनाचार का सेवन किया हो - निन्दन का सर्वथा भग किया हो
अणिच्छिअव्वो	-	इच्छा नहीं करने योग्य पदार्थ की इच्छा की हो
असावग पाउग्गो	-	श्रावकवृत्ति से विरुद्ध काम किया हो
नाणे	-	ज्ञान में
तह	-	तथा
दंसणे	-	दर्शन में
चरित्ताचरित्ते	-	देशव्रत (श्रावकव्रत में)
सुए सूत्र	-	सिद्धान्त में
समाइए	-	समताभाव रूप सामायिक में
तिण्ह गुत्तीणं	-	तीन गुप्ति (मन, वचन, काया वश में रखना) की
चउण्हं कसायाणं	-	चार कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) की
पंचण्हमणुव्वयाणं	-	पांच अणुव्रत (स्थूल हिंसा का त्याग, स्थूल, मृषावाद - असत्य का त्याग, स्थूल अदत्तादान - चोरी का त्याग, स्वदार - सन्तोष परदार विवर्जन रूप मैथुन सेवन का त्याग, परिग्रह का परिमाण) की
तिण्हं गुणव्वयाणं	-	तीन गुणव्रत (दिग्व्रत, उपभोग परिभोग परिमाण व्रत, अनर्थदण्ड त्याग व्रत) की
चउण्हं सिक्खावयाणं	-	चार शिक्षाव्रत (सामायिक, देशावकाशिकव्रत, पौषधोपवास व्रत, अतिथीसविभाग व्रत) की
वारसविहस्स	-	इस प्रकार बारह प्रकार के
सावगधम्मस्स	-	श्रावक - धर्म की
ज खंडियं	-	जो देश से खंडना की हो
ज विराहियं	-	जो सर्वथा विराधना की हो
तस्स मिच्छा मि दुक्कड -	-	मेरे वे सब पाप निष्फल हो।

भावार्थ - मे स्थिर चित्त होकर कायोत्सर्ग करने की इच्छा करता हूँ। मेने मन-वचन काया से जो कोई अति-चार किया हो, सूत्र-विरुद्ध भाषण किया हो, जैन-मार्ग से प्रतिकूल आचरण किया हो, अकल्पनीय काम किया हो, नहीं

करने योग्य काम किया हो, आर्तध्यान और रौद्रध्यान किया हो, नियमों का सर्वथा भंग किया हो, अयोग्य वस्तु की इच्छा की हो, श्रावक धर्म से विपरीत काम किया हो, मेरी आत्मा में दुष्ट विचार उत्पन्न हुए हो, आत्मा ज्ञान, दर्शन, देशव्रत, सूत्र तथा सामायिक विषयक अतिचार सेवन किया हो, मन, वचन, काया को वश में न रखा हो, क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायों का दमन न किया हो। पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत, इस प्रकार श्रावक के बारह व्रतों का एक देश खडन तथा सर्वदेश विराधना की हो तो इससे उत्पन्न हुए मेरे सब पाप निष्फल हो।

॥ ज्ञान के अतिचारों का पाठ ॥

आगमे तिविहे पण्णत्ते, तज्जहा-सुत्तागमे अत्थागमे तदुभयागमे, इस तरह तीन प्रकार आगमरूप ज्ञान के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ ज वाइद्ध, वच्चामेलिय, हीणक्खरं, अच्चक्खर, पयहीणं, विणयहीण, जोगहीण, घोसहीणं, सुडुदिण्ण दुडुपडिच्छिय, अकाले कओ सज्झाओ, काले न कओ सज्झाओ, असज्झाए सज्झाए, सज्झाए न सज्झाइय, भणतां गुणता विचारतां ज्ञान और ज्ञानवत पुरुषों की अविनय आशातना की हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कड।

आगमे	-	आगम
तिविहे	-	तीन प्रकार का
पण्णत्ते	-	कहा गया है
तं जहा	-	जैसा कि
सुत्तागमे	-	सूत्रागम-मूलपाठ का रूप आगम
अत्तागमे	-	अर्थरूप आगम
तदुभयागमे	-	शब्द और अर्थ इन दोनों रूप आगम
ज	-	जो
वाइद्ध	-	सूत्र के अक्षर उलट पलट पढ़े हो
वच्चामेलिय	-	# एक ही शास्त्र में अलग-अलग स्थानों आये हुए समान अर्थ वाले पाठों को स्थान पर लाकर पढ़ा हो अथवा अस्थान में विराम लिया हो या अपनी बुद्धि से शास्त्र के समान सूत्र बना कर आचाराग आदि

में डाल कर पढ़े हो ।

अनुयोगद्वार सूत्र, सूत्र 13 मलधारी श्री हेमचन्द्रसूरीकृत टीका के अनुसार अर्थ है ।

हीणक्खर	-	हीन अक्षर युक्त पढ़ा हो
अच्चक्खरं	-	अधिक अक्षर युक्त पढ़ा हो
पयहीणं	-	पदहीन पढ़ा हो
विणयहीणं	-	विनय - रहित पढ़ा हो
जोगहिणं	-	योग हीन (मन, वचन, काया इन तीनों में को एकाग्रता से रहित) पढ़ा हो
घोसहीणं	-	* उदात्त आदि स्वर रहित पढ़ा हो

* स्वर के तीन भेद हैं उदात्त, अनुदात्त, स्वरित । उच्चैरुपलभ्यमान उदात्त नीचैरनुदात्त, समवृत्त्या स्वरित ।

अर्थात् - ऊँचे स्थान से बोले जाने वाला उदात्त और नीचे स्थान से बोले जाने वाला अनुदात्त तथा समान स्थान से बोले जाने वाला स्वरित स्वर कहलाता है ।

जो स्वर जिस स्थान से बोला जाना चाहिये, उसको उस स्थान से न बोलना घोषहीन अतिचार है । अथवा जिस शब्द का जैसा उच्चारण है उसको उस उच्चारण रहित बोलना भी घोषणा हीन अतिचार है ।

# सुबुद्धिणं	-	शिष्य में शास्त्र ग्रहण करने की जितनी शक्ति हो, उससे अधिक पढ़ाया हो तथा स्वयं पढ़ा हो
दुडुपडिच्छिय	-	आगम को बुरे भाव से ग्रहण किया हो
अकाले कओ	-	जिन सूत्रों का जो काल शास्त्र में स्वाध्याय के लिये कहा है, उससे दूसरे काल में उन
सज्झाओ	-	सूत्रों का स्वाध्याय किया हो
काले न कओ सज्झाओ	-	काल में स्वाध्याय न किया हो
असज्झाए सज्झाइय	-	अस्वाध्याय काल में स्वाध्याय किया हो
सज्झाए न सज्झाइयं	-	स्वाध्याय काल में स्वाध्याय न किया हो
तस्स	-	उससे उत्पन्न हुआ

भावार्थ - मूल पाठ रूप, अर्थरूप और मूलपाठ - अर्थरूप इस तरह तीन प्रकार के आगम-ज्ञान के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो उसकी गंभीर आलोचना करता हूँ । यदि सूत्र के अक्षर उलट-पलट पढ़े हो, एक ही स्थान में अन्य स्थानों पर दिये गये गये एकार्थक सूत्रों को एक स्थान पर लाकर पढ़े हो अथवा अस्थान में विराम लिया हो या आचारादि सूत्रों में स्वमति-विवर्तन

उसके सदृश सूत्र बनाकर प्रक्षेप कर पढे हो, हीनाधिक अक्षर पढे हो, कही पढहीन पढा हो, उदात्तादि स्वर रहित पढा हो, शक्ति से अधिक पढाया हो तथा पढा हो, आगम को बुरे भाव से ग्रहण किया हो, अस्वाध्याय के समय स्वाध्याय किया हो, स्वाध्याय के समय स्वाध्याय न किया हो तथा पढते समय, मनन करते समय, विचारते समय, ज्ञान तथा ज्ञानवन्त पुरुषो की अविनय-आशातना की हो तो मेरा सब पाप निष्फल हो ।

हरिभद्रीयावश्यक - भाष्य पृष्ठ 731 पर सुष्ठु दत्त गुरुणा दुष्टु प्रतीच्छित कलुषितान्तरात्मना अर्थात् गुरु के द्वारा अच्छे भाव से दिये हुए ज्ञान को शिष्य ने कलुषित भाव से ग्रहण किया हो, ऐसा अर्थ है किन्तु यह अर्थ करने से ज्ञान के अतिचार चौदह के बजाय तेरह ही रह जायेगे ।

मलधारी श्री हेमचन्द्रसूरि द्वारा विरचित, आगमोदय समिति द्वारा विक्रम सम्वत् 1676 मे प्रकाशित हरिभद्रीयावश्यक टिप्पणी के पृष्ठ 107 मे शका समाधान करके नीचे लिखे अनुसार खुलासा किया है -

शका - ये चौदह पद तभी पूरे हो सकते है जब सुदुदुदिण्ण दुदुदुपडिच्छिय ये दो पद अलग-अलग अशातना (अतिचार) के रूप मे गिने जाये किन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि सुदुदुदिण्ण-सुष्ठु दत्त का अर्थ है ज्ञान को भली प्रकार देना किन्तु यह आशातना (अतिचार) नहीं है ।

समाधान - यह शका तभी हो सकती है, जब सुदुदु (सुष्ठु) शब्द का अर्थ शोभन या भली प्रकार किया जाय किन्तु यहा इसका अर्थ यह नहीं है । यहा इसका अर्थ अतिरेक-अधिक है अर्थात् थोडे ज्ञान के योग्य पात्र को उसकी योग्यता एव शक्ति से अधिक ज्ञान पढाया हो, ऐसा करना ज्ञान की आशातना (अतिचार) है ।

॥ दर्शन सम्यक्त्व का पाठ ॥

अरिहतो मह देवो, जावज्जीवाए सुसाहुणो गुरुणो । जिणपण्णत्तं तत्त, इअ सम्मत्त मए गहियं ॥1॥

परमत्थसथवो वा सुदिड्डपरमत्थसेवणा वावि । वावण्णकुदसणवज्जणा य सम्मत्तसद्दहणा ॥2॥

इअ सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउ-शका, कखा, वितिगच्छा, परपासडपससा, परपासंडसथवो, इस प्रकार श्री समकितरत्न पदार्थ के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ - 1. वीतराग के वचन मे शंका की हो, 2. परदर्शन की आकांक्षा की हो, 3. धर्म के फल मे सन्देह किया हो, 4. परपाखण्डी की प्रशंसा की हो, 5. परपाखण्डी का परिचय किया हो । मेरे सम्यक्त्व रूप रत्न पर मिथ्यात्वरूपी रज मैल लगा हो तो तस्समिच्छा मि दुक्कड ।

अरिहतो

-

अरिहत भगवान

मह	-	मेरे
देवो	-	देव हैं
जावज्जीवाए	-	जीवन पर्यन्त
सुसाहुणो	-	उत्तम (निर्ग्रन्थ) साधु
गुरुणो	-	गुरु है
जिणपण्णत्तं	-	जिनेन्द्र कथित
तत्तं	-	तत्त्व (धर्म) है
इअ	-	इस प्रकार
सम्मत्तं	-	सम्यक्त्व
मए	-	मैंने
गहियं	-	ग्रहण किया है
परमत्थसंथवो वा सुदिट्ठ	-	जीवादि नव पदार्थों का सम्यग्ज्ञान
परमत्थ सेवणा वावि	-	जिन्होंने भली प्रकार जीवादि तन्त्रों को जान लिया है, उनकी सेवा तथा गुणकीर्तन करने रूप तथा सम्यक्त्व से भ्रष्ट और मिथ्यादृष्टि जीवों की सगति त्याग करने रूप सम्यक्त्व की श्रद्धा मेरे हो
वावण्णकुदंसण	-	इस प्रकार
वज्जणा य	-	सम्यक्त्व के
सम्मत्तसद्दहणा	-	पाच
इअ	-	अतिचार
सम्मत्तस्स	-	प्रधान
पंच	-	जानना चाहिये, किन्तु
अइयारा	-	आचरण नहीं करना चाहिये
पेयाला	-	वे अतिचार निम्न प्रकार से हैं
जाणियव्वा	-	उनकी आलोचना करता हूँ
न समायरियव्वा	-	वीतराग के वचन में शंका की हो
तं जहा	-	जो मार्ग वीतराग कथित नहीं है
ते आलोउ	-	उसकी कांक्षा-चाहना की हो।
संका	-	धर्म के फल में सन्देह किया हो
कखा	-	पर पण्डुडी (अन्धनीर्धी) की श्रद्धा
वितिगच्छा	-	पर पण्डुडी का परिश्रम किया
परपासउपसंसा	-	
परपासउसथवो	-	

भावार्थ - जीवन पर्यन्त मेरे अरिहत तो देव है, निर्ग्रन्थ गुरु है तथा भोतराग कथित धर्म है, इस प्रकार मैंने सम्यक्त्व को ग्रहण किया है एवं ज्ञानको जीवादि पदार्थों का परिचय हो, भली प्रकार जीवादि तत्त्वों को तथा सद्भांति के रहस्य को जानने वाले साधुओं की सेवा प्राप्त हो, सम्यक्त्व से अष्ट तथा मिथ्यात्वी जीवों की सगति कदापि न हो, ऐसी सम्यक्त्व के विषय में मेरी श्रद्धा बनी रहे । जो मैंने वीतराग के वचन में शका की हो, जो धर्म भोत-राग से कथित नहीं है उसकी चाह की हो, धर्म के फल में सन्देह किया हो, या साधु-साध्वी आदि महात्माओं के वस्त्र, पात्र, शरीर आदि को मलिन देखकर घृणा की हो, परपाखण्डी की प्रभावना देखकर उसकी प्रशंसा की हो तथा पर पाखण्डी से परिचय किया हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूँ मेरा वह सब पाप निष्फल हो ।

॥ बारह व्रतों के अतिचार ॥

पहला स्थूल प्राणातिपात-विरमण व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोच - 1. रोषवश गाढा बधन बांधा हो, 2. गाढा घाव (डाला) घाला हो, 3. अवयव (चाम आदि) का छेद किया हो, 4. अधिक भार भरा हो, 5. भात पानी (भक्तपान) का विच्छेद किया हो, जो मैंने देवसियों अइयारों कन्नो तस्स मिच्छा मि दुक्कड अर्थात् जो मैंने दिवस सम्बन्धी अतिचार किया हो तो उससे उत्पन्न हुआ मेरा पाप निष्फल हो ।

प्रतिदिन शाम के प्रतिक्रमण में देवसियों, सुबह के प्रतिक्रमण में राईओं, पाक्षिक (पक्षी के) प्रतिक्रमण में पक्षियों, चौमासी प्रतिक्रमण में चउम्मासियों और सबत्सरी प्रतिक्रमण में सबच्छरियों बोलना चाहिये ।

दूजा स्थूल मृषावाद - विरमण व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोच - 1. सहसाकार से किसी के प्रति कूड़ा आल (झूठा दोष) दिया हो, 2. एकान्त में गुप्त बात-चीत करते हुए व्यक्तियों पर झूठा आरोप लगाया हो, 3. अपनी स्त्री के मर्म (गुप्त बात) प्रकाशित किये हों, 4. मृषा (झूठा) उपदेश दिया हो, 5. झूठा लेख लिखा हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

तीजा स्थूल अदत्तादान-विरमण-व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोच - 1. चोर की चुराई हुई वस्तु ली हो, 2. चोर को सहायता दी हो, 3. राज्यविरुद्ध काम किया हो, 4. कूड़ा तोल कूड़ा माप किया हो, 5. वस्तु में भेल-सम्मेल की हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

चौथा स्थूल * स्वदार संतोष परदार विवर्जनरूप मैथुन विरमण व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोचन ६ 1 इत्तरियपरिगहिया से गमन किया हो, 2 अपरिगहिया से गमन किया हो, 3 अनंगक्रीडा की हो, 4 परादे का विवाह कराया हो, 5 कामभोग की तीव्र अभिलाषा की हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

* स्त्री को स्वपतिसंतोष पर - पुरुष - विवर्जनरूप बोलना चाहिये ।

शका - परा - स्वस्त्रियो भित्रा दारा. परदारा, तेषां विवर्जन परदारविद्वत् अर्थात् अपनी विवाहिता स्त्री से भित्र सब स्त्रिया पर स्त्री है । उन सबका त्याग कर परस्त्री-त्याग कहलाता है । इस व्याख्या से वेश्या, विधवा, पासवान, कन्या आदि परस्त्री हैं । फिर उनके सेवन को यहा अनाचार न कहकर अतिचार क्यों कहा है ?

उत्तर - उपासकदशाङ्ग की टिका में लिखा है - अतिचारतोऽस्यातिक्रमादिभिः अर्थात् इत्तरियपरिगहियागमण और अपरिगहियागमण को यहा जो अतिचार कहा है स्त्री, अतिक्रमण आदि की अपेक्षा से है । तात्पर्य यह है कि अतिक्रम, व्यतिक्रम अतिचार से एकदेश खडित होता है और अनाचार से सर्वथा भग हो जाता है । परस्त्री सेवन व सक्त्य करना अतिक्रम है, उद्योग करना व्यतिक्रम है और आलाप, सलाप आदि करना अतिचार है । यहा अतिचार का प्रकरण हैं, अतः इत्तरियपरिगहियागमण का अतिचार का अर्थ यह है - थोड़े काल के लिये अपनी बनाने के लिये तथा अल्पवयवाली अर्थात् जिन्हें उम्र सभी भोग योग्य नहीं हुई है, ऐसी अपनी विवाहिता स्त्री से गमन करने के लिये आलाप, सलाप आदि करना तथा अपरिगहियागमन का अतिचार रूप व्यर्थ है - वेश्या आदि के साथ रमण करने के लिये तथा जिस कन्या के साथ सगाई तो हो चुकी है किन्तु अभी विवाह नहीं हुआ है, ऐसी कन्या के साथ गमने करने के लिये आलाप, सलाप आदि करना सुई-दोरा के न्याय से सेवन करने पर व्रत सर्वथा भग हो जाता है । इसलिये इन अतिचारों से बचने के लिये वेश्या, पासवान, विधवा आदि किसी भी परस्त्री के रूप एकान्त में या दुष्ट भाव से आलाप, सलाप नहीं करना चाहिये, न मार्ग में साथ चलना चाहिये ।

जहा-जहा स्त्री शब्द आया है, वहा-वहा स्त्रियो को पुरुष शब्द बोलना और समझना चाहिये क्योंकि पुरुष का त्याग करना स्त्री के लिये और स्त्री का त्याग करना पुरुष के लिये मैथुन विरमण व्रत कहलाता है ।

अपरिगहिया-अपरिगृहता के साथ गमन (मैथुन) किया हो, ऐसा पुरुष को बोलना चाहिये तथा स्त्री को इत्तरियपरिगहिय इत्तरपरिगृहित (थोड़े काल के लिये पतिरूप स्वीकार किया हुआ) और अपरिगहिय अपरिगृहित (पतिरूप स्वीकार नहीं किया हुआ) पुरुष से गमन किया हो, ऐसा बोलना चाहिये ।

पांचवा स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोचन - 1. खेतवत्थु का परिमाण अतिक्रमण (उत्लघन) किया हो, 2. हिरण्य सुवर्ण का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 3. धनधान्य का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 4. दोपद-चौपद का परिमाण अतिक्रमण किया हो,

कुविय धातु (कासी, पीतल, ताम्बा, लोहा आदि धातु का तथा इनसे बने हुए बर्तन आदि और शय्या, शासन, वस्त्र आदि घर सम्बन्धी वस्तुओं) का परिमाण अतिक्रमण किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

छटे दिशिब्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ - 1. ऊँची दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 2. नीची दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 3. तिरछी दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 4. क्षेत्र बढ़ाया हो, 5. क्षेत्र का परिमाण भूल जाने से पथ का सन्देह पड़ने पर आगे चला हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

सातवा उपभोग परिभोग-परिमाण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ 1. पच्चक्खाण उपरान्त सचित्त का आहार किया हो, 2. सचित्त पडिबद्ध का आहार किया हो, 3. अपक्व (अपक्व) का आहार किया हो, 4. दुपक्व (दुष्पक्व) का आहार किया हो, 5. # तुच्छौषधि का आहार किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

जिसमें खाने योग्य अंश तो थोड़ा हो और अधिक फेंकना पड़े, उसे तुच्छौषधि कहते हैं जैसे मूंग की कच्ची फली, सीताफल, गन्ना (गडेरि) आदि ।

पन्द्रह कर्मादान सम्बन्धी जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ -

1. इगालकम्मे, 2. वणकम्मे, 3. साडीकम्मे, 4. भाडीकम्मे, 5. फोडीकम्मे, 6. दन्त-वाणिज्जे, 7. लक्खवाणिज्जे, 8. रसवाणिज्जे, 9. केसवाणिज्जे, 10. विसवाणीज्जे, 11. जतपीलणकम्मे, 12. निल्लछणकम्मे, 13. दवग्गिदावणया, 14. सरदह-तलाय सोसणया, 15. असेईजणपोसणया
- इन में से कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

अधिक हिंसा वाले धन्धों से आजीविका चलाना कर्मादान है अथवा जिन धन्धों से उत्कट ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का बन्ध होता है उन्हें कर्मादान कहते हैं । ये श्रावक के जानने योग्य हैं किन्तु आचरण करने योग्य नहीं हैं ।

पन्द्रह कर्मादान

1. इगालकम्मे (अगारकर्म) - जंगल को खरीद कर व ठेके लेकर कोयले और बेचने का धन्धा करना अगार-कर्म है । इसमें छ काय का वध होता है ।
2. वणकम्मे (वनकर्म) - जंगल को खरीद कर वृक्षों को काटकर बेचना और इससे आजीविका करना वनकर्म है ।

3. साडीकम्मे(शाकटिक कर्म) - वाहन सहित गाडी, तागा, इक्का, बनाने और बेचने का धन्धा कर आजीविका करना शाकटिक कर्म है।
4. भाडी कम्मे (भाडी कर्म) - गाडी आदि से दूसरो का सामान नष्ट पर ले जाना तथा बैल, घोडे आदि को भाडे देना इस प्रकार भाडे देना आजीविका करना भाटी कर्म है।
5. फोडी कम्मे (स्फोटक कर्म) - हल, कुदाली, सुरंग आदि से मृत्ति खान आदि फोडना और निकले हुए पत्थर आदि को बेचकर आजीविका करना अथवा जमीन खोदने का ठेका लेकर जमीन खोदना और इस प्रकार आजीविका करना स्फोटक कर्म है। खेती करना स्फोटक कर्म नहीं है।
6. दंत वाणीज्जे (दंत वाणीज्य) - हाथी दांत, शंख, चर्म, चामर आदि खरीदने बेचने का धन्धा कर आजीविका करना दन्त वाणिज्य है। ये धन्धे करने वाले लोग हाथीदांत आदि निकालने वालो को पहले से इनके लिये अग्रिम मूल्य दे देते हैं और वे लोग हाथी आदि की हिता कर हाथी दात आदि लाकर देते हैं। इस प्रकार ये व्यापार महा हिंसाकारी है।
7. लक्खवाणिज्जे (लाक्षा वाणिज्य) - लाख का क्रय विक्रय कर आजीविका करना लाक्षा वाणिज्य है। इसमें त्रस जीवों की बड़ी हिंसा होती है।
8. रस वारिगज्जे (रस वाणिज्य) मदिरा आदि बनने और बेचने का कलाल आदि का धन्धा कर आजीविका करना रस वाणिज्य है। मदिरा बनाने में हिंसा तो होती ही है किन्तु इसके पीने से अन्य बहुत से दोष का होना सम्भव है।
9. केस वाणिज्जे (केश वाणिज्य) दासी को खरीद कर दूसरी जगह अधिक मूल्यों में बेचने का धन्धा करना केश वाणिज्य है।
10. विस वाणिज्जे (विष वाणिज्य) विष शंखिया आदि बेचने का धन्धा करना विष वाणिज्य है। इसमें बहुत जीवों की हिंसा होती है।
11. जंतपीलण कम्मे (यन्त्र पीडन कर्म) तिल ईख आदि पीलने के कर्म कोल्हू, चरखिये आदि से तिल आदि पीलने का धन्धा करना यन्त्र पीडन कर्म है। उस समय में प्रायः यही यंत्र प्रसिद्ध थे। आज के युग के मशीन पोषक जितने भी यन्त्र हैं, उनको भी उपलक्षण से यन्त्र पीडन वर्ग में शामिल किया जा सकता है।
12. नित्तिच्छण कम्मे (निर्लाच्छन) - दंत घोडे आदि को नष्ट करने का

का धन्धा करना निर्लाछन कर्म है ।

13. दवग्नि दावणया (दावाग्नि दापनता) - क्षेत्रादि साफ करने के लिये जंगल में आग लगा देना दावाग्नि दापनता है । इसमें लाखों जीवों की हिंसा होती है ।

14. सरदह तलाय सोसणया (सरोहृद तडाग शोषणता)-गेहूँ आदि धान बोने के लिये सरोवर हृद और तालाब को सुखाना सरोहृद तडाग शोषणता है ।

15. असई जण पोसणया (असती जन पोषणता) आजीविका के लिए दुश्चरित्र स्त्रियों का पोषण करना असती जन पोषणता है ।

आठवें अनर्थदंड-विरमणव्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ-1 कामविकार पैदा करने वाली कथा की हो, 2 भंड - कुचेष्टा की हो, 3 मुखरी वचन बोला हो, 4 अधिकरण यानी हिंसाकारी उपकरणों का संग्रह किया हो, 5 उपभोग परिभोग अधिक बढ़ाया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

नवे सामायिक व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ-1-3 मन, वचन और काया के अशुभ योग प्रवर्ताने हो, 4 सामायिक की स्मृति न की हो, 5 समय पूर्ण हुए बिना सामायिक पारी हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

दशवे देशावकाशिक-व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ-1 नियमित सीमा के बाहर की वस्तु मगाई हो, 2 भिजवाई हो, 3 शब्द करके चेताना हो, 4 रूप दिखा करके अपने भाव प्रकट किये हो, 5 कङ्कर आदि फेंक कर दूसरे को बुलाया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

ग्यारहवा प्रतिपूर्ण-पोषध व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ-1 पौषध में शय्या-सथारा न देखा हो या अच्छी तरह से न देखा हो, 2 प्रमार्जन (पडिलेहणा) न किया हो या अच्छी तरह से न किया हो, 3 उच्चार-पासवण की भूमि को देखी न हो अथवा अच्छी तरह से न देखी हो 4 पूजा न हो या अच्छी तरह से मुझे न पूजा हो, 5. उपवासयुक्त पौषध का सम्यक् प्रकार से पालन न किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

बारहवे अतिथिसविभाग-व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा

आलोउं-1 अचित्त वस्तु सचित पर रखी हो 2 अचित्त वस्तु सचित से दारु हो, 3 साधुओं को भिक्षा देने के समय को टाल दिया हो, 4 दान नहीं देने की बुद्धि से अपनी वस्तु दूसरे कही हो, 5 ईर्ष्या भाव से दान दिया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

॥ संलेखना के पांच अतिचारों का पाठ ॥

अपच्छिम मारणंतिय संलेहणा भूसणा आराहणाए पंचअइयाए जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं इहलोगासंसप्पओगे, परलोगासंसप्पओगे, जीवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्पओगे, कामभोगासंसप्पओगे तस्स मिच्छा मि दुक्कडं । १

अपच्छिम	-	अन्तिम
मारणान्तिय	-	मरण समय सम्बन्धी
संलेहणा	-	संलेखना - कषाय और शरीर कृश(दुबला)करने के लिए जो तप विशेष होता है वह संलेखना है।
इहलोगासंसप्पओगे	-	इस लोक में राजा चक्रवर्ती आदि के सुख की कामना करना ।
परलोगासंसप्पओगे	-	परलोक में देवता इन्द्र आदि के सुख की कामना करना ।
जीवियासंसप्पओगे	-	महिमा प्रशंसा फैलने पर बहुत काल तक जीवित रहने का आकांक्षा करना ।
मरणासंसप्पओगे	-	कष्ट होने पर शीघ्र मरने की इच्छा करना ।
कामभोगासंसप्पओगे	-	कामभोग की अभिलाषा करना ।

भावार्थ - हे भगवन् ! मेरे मरण समय में होने वाली संलेखना के विषय में कोई दोष लगा हो, मैंने राजा चक्रवर्ती आदि के इस लोक सम्बन्धी सुख की आकांक्षा की हो, देव इन्द्र आदि के परलोक सम्बन्धी सुख की आकांक्षा की हो, देव इन्द्र आदि के परलोक सम्बन्धी सुख की आकांक्षा की हो, दुःख से व्याकुल होकर शीघ्र मरने की अभिलाषा की हो तथा कामभोग की अभिलाषा की हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूँ । मेरा वह सब पाप मिथ्या है ।

॥ अठारह पापस्थान का पाठ ॥

अठारह पापस्थान आलोउ-पहला प्राणातिपात, दूजा मृषावाद, तीजा अदत्तादान, चौथा मैथुन, पांचवां परिग्रह, छठा क्रोध, सातवां मान, आठवा माया, नवा लोभ, दसवा राग, ग्यारहवा द्वेष, बारहवा कलह, तेरहवां अम्याख्यान, चौदहवां पैशुन्य, पन्द्रहवा, परपरिवाद, सोलाहवा रति-अरति, सतरहवा माया मृषवाद, अठारहवा मिथ्यादर्शन शल्य, इन अठारह पाप स्थानों में से किसी का सेवन किया हो, सेवन कराया हो और सेवन करते हुए को भला जाना हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान की साक्षी से तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

प्राणातिपात	-	जीवाहिसा, प्राणियों का वध
मृषावाद	-	असत्य, झूठ
अदत्तादान	-	चोरी, (बिना दिये ग्रहण करना)
मैथुन	-	अब्रह्मचर्य, कुशील
परिग्रह	-	मूर्छा ममत्व, धनादिक द्रव्य
क्रोध	-	रोष, गुस्सा, कोप
मान	-	अहङ्कार, घमण्ड
माया	-	छल, कपट
लोभ	-	लालच, तृष्णा
राग	-	माया और लोभजन्य आत्मा का वैभाविक परिणाम (राग)
द्वेष	-	क्रोध और मानजन्य आत्मा का वैभाविक परिणाम (द्वेष)
कलह	-	क्लेश, भगडा
अम्याख्यान	-	झूठा आल देना, कलङ्क लगाना
पैशुन्य	-	दूसरे की चुगली करना, दोष प्रगट करना
परपरिवाद	-	दूसरे की निन्दा करना, दूसरे की बुराई करना
रति	-	बुरे कार्यों में चित्त का लगना
अरति	-	ध्यान समय आदि में चित्त का नही लगना
माया मोसो	-	कपट सहित झूठ बोलना

मिथ्यादर्शनशतक

-

अतत्त्व में तत्त्व और तत्त्व में अतत्त्व
की श्रद्धा होना, श्रद्धा का विपरीत
होना ।

॥ इच्छामि खमासमणो का पाठ ॥

इच्छामि खमासमणो वंदीउं जावणिज्जाए निसीहिआए अणुजाणह मे
मिउग्गहं निसीहि अहोकायं कायसंफासं खमणिज्जो मे किलामो अप्पकिलताण
बहुसुमेणं मे दिवसो वइक्कंतो जत्ता मे जवणिज्जं च मे खामेमिखमासमणो !
देवसिअं वइक्कमं आवस्सियाए पडिक्कमामि । खमासमणाणं देवसिआए
आसायणाए तित्तीसन्नयराए जं किंचि मिच्छाए मणदुक्कडाए वय दुक्कडाए
कायदुक्कडाए कोहाए माणाए मायाए लोहाए सब्बकालिआए सब्बमिच्छेवयाराए
सब्बधम्माइक्कमणाए आसायणाए जो मे देवसियो अइयारो कओ, तत्ता
खमासमणो ! पडिक्कमामि निंदामिगरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।

इच्छामि	-	मैं चाहता हूँ
खमासमणो	-	हे क्षमावान् श्रमण ।
वंदिउं	-	वन्दना करना
जावणिज्जाए	-	शक्ति के अनुसार
निसीहिआए	-	अपने शरीर को पाप क्रियासे हटाकर
अणुजाणह	-	आज्ञा दिजिए
मे	-	मुक्ते
मिउग्गहं	-	परिमित भूमि (अवग्रह) में प्रवेश करने की
निसीहि	-	पापक्रिया को रोक कर
अहो कायं	-	(आपके) चरणों को
काय संफास	-	मस्तक से स्पर्श करता हूँ, मेरे छूने से
खमणिज्जो	-	क्षमा के योग्य है
मे	-	आपको
किलामो	-	बाधा हुई हो
अप्प किलताणं	-	अल्प देह ग्लानि वाले
बहुसुमेणं	-	बहुत शुभ क्रियाओं से
मे	-	आपका
दिवसो	-	दिन
वइक्कंतो	-	लगतीन हुआ है ?

जत्ता	-	सयम यात्रा
मे	-	आपकी (निर्बाध है ?)
जवणिज्जं	-	मन तथा इन्द्रियो की पीडा से रहित है ?
च	-	और
मे	-	आपका शरीर
खामेमि	-	खमाता हू
खमासमणो	-	हे क्षमाश्रमरग !
देवसियं	-	दिवस सम्बन्धी
वड्क्कमं	-	अपराध को
आवस्सियाए	-	आवश्यक क्रिया करने में जो भी
		विपरीत अनुष्ठान हुआ हो, उससे
पडिक्कमाभि	-	निवृत्त होता हू
खमासमणाण	-	क्राप श्रमाश्रमण की
देवसिआए	-	दिवस सम्बन्धी
आसायणाए	-	आशातना द्वारा
तित्तीसत्रयराए	-	तेतीस में से किसी भी
जं किचि	-	जिस किसी
मिच्छाए	-	मिथ्याभाव से की हुई
मणदुक्कडाए	-	दुष्ट मन से की हुई
वयदुक्कडाए	-	दुवचन से की हुई
काय दुक्कडाए	-	शरीर की दुष्ट चेष्टा से की हुई
कोहाए	-	क्रोध से की हुई
माणाए	-	मान से की हुई
मायाए	-	माया से की हुई
लोहाए	-	लोभ से की हुई
सव्व कालियाए	-	सर्व काल से की हुई
सव्व मिच्छोवयाराए	-	सर्व मिथ्या आचरण से पूर्ण
सव्व धम्माड्क्कमणाए	-	पाच समिति, तीन गुप्ति रूप धर्मों
		का उल्लघन करने वाली
आसायणाए	-	आशातना से
जो	-	जो
मे	-	मैंने
देवसिओ	-	दिवस सम्बन्धी

अइयारो	-	अतिचारो का सेवन
कओ	-	किया हो
तस्स	-	उसका
खमासमणो	-	हे क्षमाश्रमणे ।
पडिक्कामामि	-	प्रतिक्रमण करता हूं
निंदामि	-	(उसकी) निंदा करता हूं
गरिहामि	-	गुरु साक्षी से विशेष निन्दा करता हूं
अप्पाणं	-	(आशातना करने वाली) अपनी आत्मा
वोसिरामि	-	त्याग करता हूं अर्थात् पाप व्यापारों से अलग करता हूं ।

भावार्थ - हे क्षमावान् श्रमण ! मैं अपने शरीर को पाप क्रिया से हटा कर शक्ति के अनुसार वन्दन करना चाहता हूं । इसलिये मुझको परिनिर्भूमि (अवग्रह) में प्रवेश करने की आज्ञा दिजिए । पापक्रिया को रोक दूर मैं आपके चरण को अपने मस्तक से स्पर्श करता हूं । मेरे छूने से आपको बुराई हुई हो तो उसे क्षमा कीजिये । आपने अल्पग्लान अवस्था में रहकर बहुत दुःख क्रियाओं से तो दिवस बिताया है ? आपकी संयम यात्रा तो निर्बाध है ? और आपका शरीर, मन तथा इन्द्रियो की पीड़ा से तो रहित है ? हे क्षमावान् श्रमण ? मैं आपको दिवस सम्बन्धी अपराध के लिये खमाता हूँ और आवश्यक क्रिया करने में जो विपरीत अनुष्ठान हुआ है उससे निवृत्त होता हूँ । मैं क्षमाश्रमण की दिन में हुई, तेतीस में से किसी भी आशातना द्वारा मैंने जो दिवस सम्बन्धी अतिचार सेवन किया हो, उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ तथा किसी मिथ्याभाव से की हुई दुष्ट मन, वचन और काया से की हुई, क्रोध, मान, माया लोभ से की हुई आशातना के द्वारा जो मैंने दिवस सम्बन्धी अतिचार सेवन किया हो, उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ तथा सर्वकाल सम्बन्धी सर्व मिथ्या आचारणों से परिपूर्ण और सब प्रकार से धर्म का उत्त्नघन करने वाली आशातना से जो मैंने दिवस सम्बन्धी अतिचार किया हो, हे क्षमावान् ! उससे मैं निवृत्त होता हूँ, उसकी मैं निंदा करता हूँ, विशेष निन्दा करता हूँ, गुरु के सामने निन्दा करता हूँ, और आत्मा के पाप सम्बन्धी व्यापारों से निवृत्त होता हूँ ।

॥ समुच्चय पाठ ॥

इस प्रकार 14 ज्ञान के, 5 दर्शन (सम्यकत्व) के, 60 याज्ञिक

के, 15 कर्मादान के, 5 संलेखना के-इन 99 अतिचारों में से किसी भी अतिचार का जानते अजानते मन, वचन, काया से सेवन किये हो, कराया हो, करते को भला जाना हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान् की साक्षी से तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

॥ तस्स सव्वस्स का पाठ ॥

तस्स सव्वस्स देवासियस्स अइयारस्स दुब्भासियदुच्चितियदुचिड्डियस्स आलोयन्तो पडिक्कमामि ।

तस्स	-	उस
सव्वस्स	-	सर्व
देवासियस्स	-	दिवस सम्बन्धी
अइयारस्स	-	अतिचार की
दुब्भासिय दुच्चितिय	-	दुर्वचन, दुष्ट विचार तथा काया द्वारा किये
दुचिड्डियस्स	-	गये दुष्ट व्यवहार को
आलोयन्तो	-	आलोचना करता हुआ
पडिक्कमामि	-	निवृत्त होता हूँ ।

भावार्थ - दुर्वचन बोल कर, मन में बुरे विचार उत्पन्न करके तथा काया द्वारा दुष्ट व्यवहार (प्रवृत्ति) करके दिन में जो मैंने अतिचार किये हो, उनकी आलोचना करता हुआ उन पापों से मैं निवृत्त होता हूँ ।

॥ चत्तारि मंगलं का पाठ ॥

चत्तारि मंगलं-अरिहंता मंगलं, सिद्धामंगलं, साहू मंगल, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं । चत्तारि लोगुत्तमा अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धालोगुत्तमा साहू लोगुत्तमा केवलीपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो । चत्तारिशरण पवज्जामि, अरिहंते शरणपवज्जामि, सिद्धेशरणं पवज्जामि, साहू शरण पवज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं शरणं पवज्जामि ।

अरिहंतों का शरणा, सिद्धों का शरणा, साधुओं का शरणा, केवलीपरुषित दया धर्म का शरणा ।

चार शरणा, दुःख हरणा और न शरणा कोय ।

जो भवि, प्राणी आदरे, अक्षय अमर पद होय ।

चत्तारी	-	चार
मंगल	-	मंगल है

अरिहंता मंगलं	-	अरिहंत मंगल है
सिद्धा मंगलं	-	सिद्ध मंगल है
साधू मंगलं	-	साधु मंगल हैं
केवलीपण्णत्तो धम्मो मंगलं -		केवली प्ररुपित धर्म मंगल है
चत्तारी लोगुत्तमा	-	चार पदार्थ लोक-उत्तम है
अरिहंता लोगुत्तमा	-	अरिहंत लोकोत्तम है
सिद्धा लोगुत्तमा	-	सिद्ध लोकोत्तम हैं
साधू लोगुत्तमा	-	साधु लोकोत्तम है
केवलिपण्णत्तो	-	केवली प्ररुपित धर्म लोकोत्तम है
धम्मो लोगुत्तमो		
चत्तारि शरणं	-	चार शरणों को
पवज्जामि	-	प्राप्त होता हू (ग्रहण करता हू)
अरिहंते शरणं	-	अरिहंत भगवान् की शरण
पवज्जामि	-	प्राप्त होता हूं
सिद्धे शरणं पवज्जामि -		साधुओं की शरण को प्राप्त होता हू
साधू शरणं पवज्जामि -		साधुओं की शरण को प्राप्त होता हू
केवलीपण्णत्तं धम्मं	-	केवली प्ररुपित धर्म की
शरणं पवज्जामि	-	शरण को प्राप्त होता हू

भावार्थ : इस लोक में अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररुपित धर्म के चार मंगल हैं तथा लोक में श्रेष्ठ हैं। मैं इन चारों की शरण लेता हू।

॥ दंसण सम्मत्ति का पाठ ॥

दंसणसम्मत्त-परमत्थसंथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वावि ।

वावण्णकुदंसणवज्जणा य् सम्मत सद्वहणा ॥

एव समणोवासएणं सम्मतस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न
समायरियव्वा, तंजहा ते आलोउं संका, कंखा, वित्तिगिच्छा, परपासंडपरास
परपासंडसंथवो, इन पांच अतिचारों में से जो कोई अतिचार लगा हो तो
तस्स मिच्छा मि दुक्कळं ।

॥ बारह व्रतों के अतिचार सहित पाठ ॥

पहला अणुव्रत-थूलाओं पाणाइवायाओं वेरमण त्रस जीव वेइदिय,
नेइदिय, चउरिदिय, पवेदिय जान के पहिद्यान के सकल्य करके उरुं
रुग्गाम्बन्धी शरीर के भीतर में पीजाकारी, सापराधी को छोड़ निरपराधी के

गाकुष्टी (हनने) की बुद्धि से हनने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए दुविह
तिविहेण-न करेमि न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, ऐसे पहले
थूल प्राणातिपात विरमण व्रत के पंच अइयारा पेयाला जाणियवा न समायरियवा
तजहा ते आलोउ - बधे वहे छविच्छेए, अइमारे भत्तपाणविच्छेए तस्स मिच्छा
मे दुक्कड ।

अणुव्रत	-	महाव्रत की अपेक्षा छोटा व्रत
थूलाओ	-	स्थूल-मोटा
पाणाइवायाओ	-	प्राणातिपात जीव हिंसा से
वेरमण	-	निवृत्त होना, अलग होना
पच्चक्खाण	-	त्याग
पेयाला	-	प्रधान
बधे	-	बाधना
वहे	-	निर्दयता से पीटना, गहरा घाव करना
छविच्छेए	-	शरीर की चमड़ी का छेदन करना
अइमारे	-	अधिक भार लादना
भत्तपाणविच्छेए	-	खाने - पीने में रुकावट डालना

भावार्थ - मैं स्वसम्बन्धी शरीर से पीडाकारी अपराधी जीवों को छोड़कर
द्विन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय त्रस जीवों की हिंसा सकल्प
करकेमन, वचन और काया से न करुंगा, न कराऊंगा । जो मैंने किसी जीव
को बन्धन से बाधा हो, चाबुक लाठी आदि से मारा हो, पीटा हो, किसी जीव
के चर्म का छेदन किया हो, अधिक भार लादा हो तथा अन्न पानी का विच्छेद
किया हो तो वे मेरे सब पाप निष्फल हो ।

दूजा अणुव्रत थूलाओ मुसावायाओ वेरमणं, कन्नालीए, गोवालिए,
भोमालीए, णासावहारो (थापणमोसो), कूडसक्खिजे (कूड़ी साख) इत्यादिक
मोटा झूठ बोलने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए दुविह तिविहेणं न करेमि, न
कारवेमि मणसा, वयसा, कायसा एव दूजा स्थूल मृषावाद वेरमणं व्रत के
पंच अइयारा जाणियवा न समायरियवा, तजहा ते आलोउं-सहसम्बक्खाणे,
रहस्सम्बक्खाणे, सदारमन्तभेए, (स्त्रियों को सदार के स्थान पर समतार
बोलना), मोसोवएसे, कूडलेहकरणे तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

मुसावायाओ - मृषावाद से

कन्नालीए	-	कन्या, वर आदि मनुष्य सम्बन्ध
गोवालीए	-	गाय, भैस आदि पशु सम्बन्ध
भोमालीए	-	भूमि सम्बन्धी झूठ
णासावहारो	-	धरोहर को दवाना अथवा धरोहर के विषय में
(थापणमोसो)	-	झूठ बोलना
कूडसक्खिज्जे	-	झूठी साक्षी देना
सहसब्भक्खाणे	-	बिना विचारे किसी पर झूठा आरोप लगाना
रहस्सभक्खाणे	-	एकांत में मंत्रणा (सलाह) करते हुए झूठा आरोप लगाना
सदारमंतभेए	-	अपनी स्त्री के गुप्त विचार प्रकट करना
मोसोवएसे	-	झूठा उपदेश देना
कूडलेहकरणे	-	झूठा लेख लिखना

भावार्थ - मैं जीवनपर्यन्त मन, वचन, काया से स्थूल झूठ नहीं बोलूंगा न बोलाऊंगा, कन्या-वर के सम्बन्ध में गाय, भैस आदि पशुओं के विषय में तथा भूमि के विषय में कभी असत्य नहीं बोलूंगा। किसी की रखी हुई धरोहर (सौंपी हुई रकम) को नहीं दवाऊंगा और न धरोहर को हीनाधिक बताऊंगा तथा किसी की झूठी गवाही नहीं दूंगा। यदि मैंने किसी पर झूठा आरोप लगाया हो, एकांत में मंत्रणा करते हुए व्यक्तियों पर झूठा आरोप लगाया हो, अपनी स्त्री के गुप्त विचार प्रकाशित किये हों, मिथ्या उपदेश दिया हो, झूठा लेख लिखा हो तो मेरे वे सब पाप निष्फल हों।

तीजा अणुव्रत थूलाओ अदिण्णदाणाओ वेरमणं, खात खन कर, गांठ खेल कर, ताले पर कुंची लगा कर, मार्ग में चलते को लूट कर, पड़ी हुई घणियाती मोटी वस्तु जान कर लेना इत्यादि मोटा अदत्तादान का पच्चक्खाण, सगे सम्बन्धी, व्यापार सम्बन्धी तथा पट्टी निर्भमी वस्तु के उपरान्त अदत्तादान का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए, दुविह तिविहेण - न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं तीजा स्थूल अदत्तादान वेरमण व्रत के पक्ष अङ्गारा जाणियव्वा न समाररियव्वा, तंजहा ते आल्लेह-तेनाहठे, तवकरप्पओगे, विरुद्धरज्जाइक्कमे, कूडतुल्लवृन्दमणे नयदिग्गवहरे, तरस निच्छा मि दुक्कठं।

अदिण्णादाणाओ	-	अदता से - स्वामी की बिना आज्ञा वस्तु को लेने से
निर्भमी	-	शका रहित
तेनाहडे	-	चोर की चुराई हुई वस्तु को लेना
तक्करप्पओगे	-	चोर को सहायता देना
विरुद्ध रज्जाइक्कमे	-	विरुद्ध राज्य का अतिक्रम (उल्लंघन) करना, लड़ाई के समय विरुद्ध राज्य में बिना आज्ञा आना जाना
कूडतुल्लकूडमाणे	-	झूठा तोल (बाट) रखना तथा झूठा गज आदि का माप रखना
तप्पडिरुवग ववहारे	-	अधिक मूल्य की वस्तु में कम मूल्य की वस्तु को मिलाना । उत्तम वस्तु को दिखलाकर निष्कृष्ट वस्तु - देना।

भावार्थ - मैं किसी के मकान में खात लगाकर अर्थात् भीत फोड़कर, ग़ाठ खोलकर, ताले पर कुची लगाकर अथवा ताला तोड़कर किसी की वस्तु नहीं लूंगा, मार्ग में चलते हुए को नहीं लूटूंगा, किसी की मार्ग में पड़ी हुई मोटी वस्तु को नहीं लूंगा इत्यादि रूप से सगे सम्बन्धी, व्यापार सम्बन्धी तथा पड़ी हुई शका रहित वस्तु के उपरान्त स्थूल चोरी को मन, वचन, काया से न करूंगा और न कराऊंगा । यदि मैंने चोरी की वस्तु ली हो, चोर को सहायता दी हो, या चोरी करने का उपाय बतलाया हो, लड़ाई के समय विरुद्ध राज्य में आया-गया होऊँ, झूठा तोल व माप रखा हो अथवा उत्तम वस्तु दिखाकर खराब वस्तु दी हो तो मैं इन कृकृत्यों (बुरे कामों) की आलोचना करता हूँ और चाहता हूँ कि मेरे वे सब पाप निष्फल हों ।

चौथा अणुव्रत थूलाओ मेहुणाओ वेरमण #सदारसतोसिए, अवसेसमेहुणविहि पच्चक्खामि जावज्जीवाए देव देवी सम्बन्धी दुविह तिविहेण-न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, तथा मनुष्य तिर्यच सम्बन्धी एगविह एगविहेण - न करेमि कायसा, एव चौथा स्थूल स्वदार सतोष, परदार विवर्जन रूप मैथुन वेरमण व्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तजहा ते आलोउ इत्तरियपरिग्गहियागमणे, अपरिग्गहियागमणे अनगक्रीडा, परविवाहकरणे, कामभोगतिव्वाभिलासे, तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

स्वदार सतोष ऐसा पुरुष को बोलना चाहिए और स्त्री को स्वपति सतोष ऐसा बोलना चाहिए । जिसको सर्वथा प्रकार से मैथुन सेवन का त्याग हो, उसका सदारसन्नेसिए

अवसेस मेहुं विहि के स्थान पर सव्वप्पगार मेहुणं बोलना चाहिए ।

सदारसंतोसिए -

अवसेस मेहुणविहिं -

पच्चक्खामि -

एगविहं एगविहेणं -

इत्तरिय परिग्गहिया गमणे-

अपनी विवाहिता स्त्री में सतते रहने

अन्य समस्त प्रकार के मैथुन सेवन

त्याग करता हू

एक करण, एक योग से

कुछ समय के लिए अपने अधीन की

इत्तरपरिगृहिता कहलाती है उसने

क्रीडा करने के लिए आलाप-सत्कार

करना अथवा अल्पवय वाली लड़की

जिसकी उम्र अभी भोग योग्य नहीं हुई है

ऐसी विवाहिता स्त्री से गमन करना

वेश्या, अनाथ, कन्या, विधवा, कुल

आदि अपरिगृहिता कहलाती है। इन्हें

क्रीडा करने के लिये आलाप-सत्कार

करना अथवा जिस कन्या के साथ

तो हो चुकी है किन्तु अभी विवाह नहीं

हुआ है, ऐसी कन्या के साथ गमन करना

अतिचार है क्योंकि वह अपनी होने

भी अपरिगृहिता है।

अपरिग्गहिय गमणे -

अनंगक्रीडा

काम सेवन के प्राकृतिक अंग के सिवा

अन्य अंगों से जो कि काम सेवन

अनंग है, क्रीडा करना अनंग क्रीडा है

स्वस्त्री के सिवाय अन्य स्त्रियों के साथ

मैथुन क्रिया वर्ज कर अनुराग से उत्पन्न

आलिगन आदि करने वाले का काम अनंग

होता है। इसलिये यह अतिचार माना

है।

परविवाह करणे

अपना और अपनी सन्तान के सिवा

दूसरों का विवाह बनाने के लिये

होना

कामनोगतिप्पामित्तासे -

काम सेवन की प्रकृतिक आवश्यकता

भावार्थ - मैथुन सेवन की प्रकृतिक आवश्यकता

रखकर शेष सब प्रकार के मैथुन-सेवन का त्याग करता हूँ अर्थात् देव-देवी सम्बन्धी मैथुन का सेवन मन, वचन, काया से करूँगा और न करवाऊँगा तथा मनुष्य और तिर्यच सम्बन्धी मैथुन सेवन काया से न करूँगा । यदि मैंने इत्वारिकापरिगृहीता अथवा अपरिगृहिता से गमन करने के लिये आलाप सलापादि किया हो, प्रकृति के विरुद्ध अंगो से काम-क्रिडा करने की चेष्टा की हो, दूसरे के विवाह कराने का उद्यम किया हो, कामभोग की तीव्र अभिलाषा की हो तो मैं इन दुष्कृत्यों की आलोचना करता हूँ कि मेरे वे सब पाप निष्फल हो ।

पांचवां अणुव्रत थूलाओ परिग्गहाओ वेरमणं खेत्तवत्थु का यथा परिमाण, हिरण्ण सुवण्ण का यथा परिमाण, धन-धान्य का यथा परिमाण, दुपय-चउप्पय का यथा परिमाण, कुविय धातु का यथा परिमाण किया है जो परिमाण किया है उसके उपरान्त अपना करके परिग्रह रखने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविहं तिविहेणं न करेमि, मणसा, वयसा, कायसा, एवं पाचवा स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तजहा ते आलोउं-खेत्तवत्थुप्पमाणाइक्कमे, हिरण्णसुवण्णप्पमाणाइक्कमे, धणघणप्पमाणाइक्कमे, दुपयचउप्पयप्पमाणाइक्कमे, कुवियप्पमाणाइक्कमे तरस मिच्छा मि दुक्कडं ।

खेत्तवत्थुप्पमाणाइक्कमे -

हिरण्णसुवण्ण-प्पमाणाइक्कमे

धण धणप्पमाणाइक्कमे -

दुपयचउप्पय प्पमाणाइक्कमे

कुवियप्पमाणाइक्कमे -

हाथी, घोड़ा, चौपाये आदि धन, धान्य तथा सोना, चाँदी के सिवाय उर पीतल, ताँबा, लोहा, आदि धातु तथा इनसे बने हुए बर्तन आदि और आसन, वस्त्र आदि घर सम्बन्धी वस्तुओं का मैंने जो परिमाण किया है इस उपरांत मैं सम्पूर्ण परिग्रह का मन, वचन, काया से जीवनपर्यंत त्याग कर दूँगा । यदि मैंने खेत, महल, मकान का परिमाण उत्तलंघन किया हो, सोना, चाँदी के परिमाण का उत्तलंघन किया हो, दास-दासी आदि द्विपद और हाथी, घोड़े आदि चतुष्पद की संख्या के परिमाण का उत्तलंघन किया हो, सोना, चाँदी के सिवाय दूसरे द्रव्यों (शय्या, आसन, बर्तन, वस्त्र आदि) की मर्यादा का उत्तलंघन किया हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूँ और चाहता हूँ कि मेरे वे सब उपकार निष्फल हो ।

छटा दिशिब्रत उड्ढदिसि का यथा परिमाण, अहोदिसि का यथा परिमाण, तिरियदिसि का यथा परिमाण एवं यथा परिमाण किया है, उसके उपरांत स्वेच्छा काया से आगे जाकर पाँच आश्रव सेवन का पच्यकखाण, जावज्जीवाए एगारि तिविहेणं न करेमि, मणसा, वयसा, कायसा, एवं छटे दिशिब्रत के पंच अहोदिसि जाणियव्वा न समायरियव्वा-तंजहा ते आलोउं -उड्ढदिसिप्पमाणाइक्कमे, अहोदिसिप्पमाणाइक्कमे, तिरियदिसिप्पमाणाइक्कमे, खित्तवुड्ढी, सइअन्तरद्धा तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

उड्ढदिसि	-	ऊर्ध्व(ऊँची) दिशा के परिमाण (मर्यादा)
प्पमाणाइक्कमे	-	का उत्तलघन करना
अहोदिसि	-	अधो (नीची) दिशा के परिमाण
प्पमाणाइक्कमे	-	का उत्तलघन करना
तिरियादिसि प्पमाणाइक्कमे -		तिरछी दिशा के परिमाण का उत्तलघन करना ।
खित्तवुड्ढी	-	क्षेत्र बढ़ाना
सइअन्तरद्धा	-	क्षेत्र परिमाण में सदेह होने पर चलना

ऊची, नीची, तिरछी दिशाओं के उल्लघन को यहा अतिचार कहा है । इसका तात्पर्य यह है कि - मर्यादा की हुई भूमि से बाहर जाने की इच्छा कर रहा है लेकिन बाहर गया नहीं है, तब तक अतिचार है, बाहर चले जाने पर अनाचार है ।

सातवां व्रत-उवभोगपरिभोगविहि पच्चक्खायमाणे 1. उल्लणियाविहि, 2. दंतणविहि, 3. फलविहि, 4. अब्भंगणविहि, 5. उवट्टणविहि, 6 मज्जणविहि, 7 वत्थविहि, 8 विलेवणविहि, 9 पुप्फविहि, 10 आभरणविहि, 11 धूवविहि, 12 पेज्जविहि, 13 मक्खणविहि, 14 ओदणविहि, 15 सूपविहि, 16 विगयविहि, 17 सागविहि, 18 माहुरविहि, 19 जीमणविहि, 20 पाणीयविहि, 21 मुखवासविहि, 22 वाहणविहि, 23 उवाणहविहि, 24 सयणविहि, 25 सचित्तविहि, 26 दव्वविहि, इन 26 बोलों का यथा परिमाण किया है, इसके उपरान्त उवभोगपरिभोग वस्तु को भोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविह तिविहेणं न करेमि, मणसा, वयसा, कायसा एव सातवां उवभोग परिभोग दुविहे पण्णते तजहा-भोयणाओ य, कम्मओ य, भोयणाओ समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा ते आलोउं, सचित्ताहारे, सचित्तपडिबद्धाहारे, अप्पउलिओसहिमक्खणया दुप्पउलिओसहिमक्खणया, तुच्छोसहिमक्खणया कम्मओ य णं समणोवासएण पण्णरस कम्मादाणाइ जाणियव्वाइं न समायरियव्वाइं तंजहाते आलोउं इंगालकम्मे, वणकम्मे, साडीकम्मे, भाडीकम्मे, फोडीकम्मे, दंतवाणिज्जे, लक्खवाणिज्जे, रसवाणिज्जे, केसवाणिज्जे, विसवाणिज्जे, जंतपीलणकम्मे, निल्लछणकम्मे, दवग्गिदावणया सरद्धहतलायसोसणया, असई जण पोसणया तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

- | | | |
|------------------|---|--|
| (1) उल्लणियाविहि | - | शरीर पोछने के अगोछे आदि वस्त्रों को काम में लाने की मर्यादा करना । |
| (2) दतणविहि | - | दातों को साफ करने के लिये दंतौन आदि पदार्थों की मर्यादा करना । |
| (3) फलविहि | - | आवला आदि फल से बाल धोने की मर्यादा करना । |
| (4) अब्भंगणविहि | - | शरीर पर मालिश करने के लिये तैलादि द्रव्यों की मर्यादा करना । |
| (5) उवट्टणविहि | - | शरीर पर उबटन (पीठी आदि) की |

(6) मज्जणविहि	-	मालिश करने की मर्यादा करना स्नान के लिये स्नान की सज्ज और जल का परिमाण करना ।
(7) वत्थविहि	-	वस्त्र की मर्यादा करना ।
(8) विलेवणविहि	-	चन्दनादि का लेपन करने की मर्यादा करना ।
(9) पुष्पविहि	-	फूलों की तथा फूलमाला की मर्यादा करना ।
(10) आमरणविहि	-	आभूषणों की मर्यादा करना ।
(11) धूपविहि	-	धूप के द्रव्यों की मर्यादा करना ।
(12) पेज्जविहि	-	पीने की वस्तुओं की मर्यादा करना ।
(13) भक्खणविहि	-	घेवर आदि पक्वान्न की मर्यादा करना ।
(14) ओदणविहि	-	रन्धे हुए चावल (भात), गेहूँ (दाल) आदि की मर्यादा करना ।
(15) सूपविहि	-	मूंग, चना आदि की दाल की मर्यादा करना ।
(16) विगयविहि	-	घी, तेल, दूध, दही आदि की मर्यादा करना ।
(17) सागविहि	-	वथुआ आदि शाक की मर्यादा करना ।
(18) माहुरविहि	-	मधुर फलों की मर्यादा करना ।
(19) जीमणविहि	-	बड़ा, पकौड़ी, पूरणपोली, रोटी आदि जीमने के द्रव्यों की मर्यादा करना ।
(20) पाणीयविहि	-	पीने के लिये पानी की मर्यादा करना ।
(21) मुखवासविहि	-	तौग, इलायची, सुपारी आदि मर्यादा सुगन्धित करने वाली वस्तुओं की मर्यादा करना । (उपासकदशमस्क 12-13)
(22) वारणविहि	-	तण्डी, घोड़े, रथ आदि की मर्यादा करना ।
(23) उदाणविहि	-	दमने के लिये, मर्यादा करना ।
(24) वसयणविहि	-	वस्त्रों की मर्यादा करना ।

करना।

(25) सचित्ताविहि	-	सचित्त वस्तुओं की मर्यादा करना ।
(26) दम्बविहि	-	खाने-पीने के काम आने वाले सचित्त या अचित्त पदार्थ जो ऊपर केनियमों से बचे हुए हैं, उनकी मर्यादा करना। (धर्म सग्रह अधिकार 2 श्लोक 34 टीका)
उवभोग	-	जो पदार्थ एक बार भोगने में आता है, जैसे अन्न-जल आदि
परिभोग	-	जो पदार्थ अनेक बार भोगने में आता है, जैसे वस्त्र, आभूषण इत्यादि

उवभोग परिभोग शब्दों का उपर्युक्त अर्थ भगवती शतक 7 उद्देश्य में 2 तथा हरिभद्रयावश्यक अध्ययन 6 सूत्र 7 में मिलता है। उपासकदशांग प्रथम अध्ययन सूत्र 7 में इनका अर्थ उपर्युक्त भी किया है और इस प्रकार भी किया है। बार-बार भोगे जाने वाले पदार्थ उपभोग और एक ही बार भोगे जाने वाले पदार्थ परिभोग कहलाते हैं।

दुविहे	-	दो प्रकार का
पण्णते	-	कहा गया है
तजहा	-	वह इस प्रकार
भोयणाओ	-	भोजन की अपेक्षा से
य	-	और
कम्मओ	-	कर्म की अपेक्षा से
समणोवासएणं	-	श्रावक के
पच अइयारा	-	पाच अतिचार
जाणियत्वा	-	जानने योग्य है
न समायरियत्वा	-	आचरण करने योग्य नहीं
सचित्ताहारे	-	#मर्यादा से अधिक सचित्त वस्तु का भोजन करना
सचित्तपडिबद्धाहारे	-	सचित्त वृक्षादि से सम्बद्ध (लगे हुए) गोद, पके फल आदि खाना
अप्पउलिओ	-	अग्नि से बिना पकी वस्तु का आहार करना ।
सहिमक्खणया	-	जिसमें जीव के प्रदेशों का सम्भव हो, ऐसी तत्काल पीसी हुई या मर्दन की हुई वस्तु का भोजन करना ।

अण्णत्थ) जावज्जीवाए दुविहं तिविहेण-न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं आटवा अणद्धादड विरमण व्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरिव्वा तजहा ते आलोउं-कंदप्पे कुक्कुइए, मोहरिए, सजुत्ताहिगरणे, उवभोगपरिभोगाइरित्ते, तस्स मिच्छा मि दुक्कड । /

अणद्धादंड	-	बिना प्रयोजन ऐसे काम करना, जिसमे जीवो की हिंसा होती है अथवा जीवो को पीडा होती है।
अवज्झाणा	-	आर्तध्यान और रौद्रध्यान के वश होकर इष्ट संयोग
यरिए	-	अनिष्ट वियोग की चिन्ता करना तथा किसी प्राणी को हानि पहुंचाने आदि का विचार करना ।
पमायायरिए	-	अनर्थ प्रमादपूर्वक आचरण करना अर्थात् मद्य # विषय, कषाय, निद्रा और विकथा में लगे रहना तथा प्रमाद से काम करना, जिससे जीवो की हिंसा होती है, जैसे बिना देखे चलना-फिरना, वस्तु को उठाना, रखना, पानी, तेल, घी, आदि के बर्तनों को उछाडा रखना इत्यादि ।
हिसप्पयाणे	-	(अनर्थ) जिनसे जीवो की घात होती है, ऐसी तलवार, बन्दूक, कुदाली, फावडा आदि वस्तुएं को देना ।

मज्ज विषय कसाया, निद्धा विगहा य पचमी भणिया । एए पच पमाया जीव पमाया जीव पाडेति ससारे ॥१॥

भावार्थ : मद्य, विषय, कषाय, निद्रा ओर विकथा ये पांच प्रमाद जीव को ससार में गिराते हैं ।

पावकम्मोवएसे	-	(अनर्थ) जिन कामो से जीव की हिंसा होती है, ऐसे मकान बनवाने, वृक्ष कटवाने आदि का उपदेश देना।
कन्दप्पे	-	काम उत्पन्न करने वाली कथाएं करना, भड-वचन बोलना ।
कुक्कुइए	-	दूसरो को हसाने के लिए भाडो की

		तरह हंसी-दिल्लगी करना का की नकल करना ।
मोहरिए	-	ढीठता से निरर्थक बोलना ।
संजुक्ताहिगरणे	-	पूरी तरह काम देने वाले उखल मूसल, शिला, लोहा, तलवार हिसाकारी हथि-यार या औजारों प्रयोजन से अधिक संग्रह करना ।
उपभोगपरि भोगाडरित्त -		उपभोग और परिभोग में आने वाले खानेपीने, पहनने आदि की वस्तुओं का अधिक संग्रह करना ।

भावार्थ - बिना प्रयोजन दोषजनक काम करने का नाम अनर्थदण्ड है । इसके चार भेद हैं - अपध्यान, प्रमाद-चर्या, हिसादान और पापोपदेश । इष्ट संयोग, अनिष्ट वियोग की चिन्ता करना तथा दूसरों को हानि पहुँचाने आदि का विचार करना अपध्यान है । असावधानी से काम करना, धर्मिक कार्यों को त्याग कर दूसरे कार्यों में लगे रहना प्रमादचर्या है । दूसरों को हानि उखल, मूसल, तलवार, बन्दूक आदि बिना प्रयोजन हिसा के उपकरणों के हिसादान है । मकान बनाने आदि पाप कार्यों का दूसरों को उपदेश देने पापोपदेश है । मैं इन चारों प्रकार के अनर्थदण्ड का त्याग करता हूँ । (जो आत्मरक्षा के लिये राजा की आज्ञा से, जाति के तथा परिवार के कुटुम्ब के मनुष्यों के लिए, यक्ष, भूत आदि देवों के वशीभूत होकर अनर्थदण्ड का सेवक करना पड़ा तो इनका आगार रखता हूँ ।) इन आगारों के सिवाय मैं जीवनभर अनर्थदण्ड का मन-वचन-काया से स्वयं सेवन नहीं करूँगा और न कराऊँगा यदि मैंने काम जागृत करने वाली कथाएँ की हों । भाड़ों की तरह दूसरों को हंसाने के लिए हंसी-दिल्लगी की हो या दूसरों की नकल की हो, निरर्थक बकवाद किया हो, तलवार, उखल, मूसल, आदि हिसाकारी हथियारों या औजारों का निःप्रयोजन संग्रह किया हो, मकान बनाने आदि पापपूर्ण कामों का उपदेश दिया हो, अपनी तथा कुटुम्बियों की आवश्यकताओं के सिवाय दूसरों के उपभोग और परिभोग का संग्रह किया हो तो मैं उसकी अपहोना करना दण्डित मानूँगा, जिसे मैंने सब पापों का त्याग कर दिया है ।

सद्गहणा प्ररुपणा तो है सामायिक का अवसर आये सामायिक करुं तब फरसना करके शुद्ध होऊं एवं नवमें सामायिक व्रत के पंच अड़ियारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणीहाणे कायदुप्पणीहाणे सामाइयस्स सइ अकरणया, सामाइयस्स अणवड्डियस्स करणया तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

सावज्जं	-	पाप युक्त
जोगं	-	मन, वचन, काया की प्रवृत्ति का
पच्चक्खामि	-	त्याग करता हूं
जावनियम	-	नियम पर्यन्त
पज्जुवासामि	-	उपासना करता हूँ, सेवन करता हूँ
सद्गहणा	-	श्रद्धा, रुचि
प्ररुपणा	-	विवेचना (प्रतिपादन करना)
मणदुप्पणिहाणे	-	मन में बुरे विचार उत्पन्न करना
वयदुप्पणिहाणे	-	कठोर या पापजनक वचन बोलना
कायदुप्पणीहाणे	-	बिना देखे पृथ्वी पर बैठना - उठना आदि

सामाइयस्स सइ अकरणया - सामायिक करने का काल - विस्मरण करना

सामाइयस्स अणवड्डियस्स करणया - सामायिक का समय होने से पहले ही लेना (समाप्त करना)

भावार्थ - मैंने मन, वचन, और काया की दुष्ट प्रवृत्ति को त्याग कर जितने काल का नियम किया है, उसके अनुसार मैं सामायिक का पालन करूंगा। मन में बुरे विचार उत्पन्न नहीं होने से, कठोर या पापजनक वचन नहीं बोलने से काया की हलने-चलने आदि क्रिया को रोकने से आत्मा में जो शांति उत्पन्न होती है, उसको सामायिक कहते हैं। इसलिए मैं नियमपूर्वक मन, वचन, काया से पापजनक क्रिया न करूंगा और न दूसरों से कराऊंगा। यदि मैंने सामायिक के समय मन में बुरे विचार किये हों, कठोर या पापजनक वचन बोले हों, अयतना-पूर्वक शरीर से चलना-फिरना, हाथ-पांव को फैलाना, संकोचना आदि क्रियाएँ की हों, सामायिक करने का काल याद न रखा हो तथा अल्प - काल तक या अनवस्थित रूप से जैसे-तैसे ही सामायिक की हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूँ और चाहता हूँ कि मेरे सम्पूर्ण पाप निष्फल हों।

दसवां देशावगाशिक व्रत-दिनप्रति प्रभात से प्रारम्भ करके पूर्वादिक

छहों दिशा में जितनी भूमिका की मर्यादा रखी हो, उसके उपरान्त आगे जाने का तथा दूसरों को भेजने का पच्चक्खाण जाव अहोरत्तं दुविहं तिविहेण - न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा । जितनी भूमिका की हद रखी है, उसमें जो द्रव्यादिक की मर्यादा की है, उसके उपरान्त उपभोग परिभोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण जाव अहोरत्तं एगविहं तिविहेण - न करेमि मणसा, वयसा, कायसा, एवं दशर्वे देसावकाशिक व्रत के पञ्च अङ्गारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं आणवणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सद्धानुवाए रुवाणुवाए, बहिया पुग्गलपक्खेवे, तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

जाव अहोरत्तं	-	एक दिन रात पर्यन्त
आणवण प्पओगे	-	मर्यादा किये हुए क्षेत्र से आगे की सचितादि वस्तु को मंगाना
पेसवण प्पओगे	-	परिमाण किये हुए क्षेत्र से आगे की वस्तु को मंगवाने के लिये या लेन-देन करने के लिए अपने नौकर आदि मनुष्य को भेजना
सद्धानुवाए	-	सीमा से बाहर के मनुष्य को अपने पास बुलाने के लिए अपना या पदार्थ का रूप दिखाना
रुवाणुवाए	-	सीमा से बाहर के मनुष्यों को खान करके या और किसी शब्द के द्वारा अपना ज्ञान कराना ।
बहियापुग्गल पक्खेवे	-	सीमा से बाहर के मनुष्यों को बुलाने के लिए कंकर आदि फेंकना

भावार्थ - छठे दिशव्रत में जो दिशाओं का परिमाण किया गया है, देसावकाशिक व्रत में उसका प्रतिदिन संकोच किया जाता है, उस संकोच किये गये दिशाओं के परिमाण से बाहर के क्षेत्र में जाने का तथा दूसरों को भेजने का त्याग करता हूँ । एक दिन और एक रात तक, परिमाण की गई पूर्वादि छह दिशाओं से आगे न स्वयं जाऊंगा और न दूसरों को भेजूंगा । जितने क्षेत्र की मर्यादा की है, उसमें द्रव्यादि का जितना परिमाण किया है, उस परिमाण के सिवाय उपभोग-परिभोग निमित्त से भोगने का त्याग करता हूँ । मन, वचन, काया से इनका सेवन नहीं करूंगा । यदि मैंने मर्यादा से बाहर की कोई वस्तु मगाई हो, मर्यादा से बाहर के क्षेत्र में किसी वस्तु को मंगाने के लिये या लेन-देन करने के लिये किसी को भेजा हो मर्यादा से बाहर के क्षेत्र में रहने वाले

गुण्य को शब्द करके अपना ज्ञान कराया हो, मर्यादा से बाहर के मनुष्य को ज्ञान के लिये अपना या पदार्थ का रूप दिखाया हो या ककर आदि फेककर अपना ज्ञान कराया हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूँ और चाहता हूँ कि वे सब पाप निष्फल हो ।

ग्यारहवां पडिपुण्ण पौषधव्रत-असणं पाण खाइमं साइम का पच्चक्खाण, अबम सेवन का पच्चक्खाण, अमुक मणि सुवर्ण का पच्चक्खाण, मालावन्नगविलेवण का पच्चक्खाण, सत्थमुसलादिक सावज्ज जोग सेवन का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्तं पज्जुवासामि दुविह तिविहेण न करेमि न करवेमि, मणसा, वयसा, कायसा ऐसी मेरी सद्वहणा परुपणा तो है पौषध का अवसर आये पौषध करु तब फरसना करके शुद्ध होऊँ एव ग्यारहवां प्रतिपूर्ण पौषध व्रत का पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तजहा ते आलोऊं - अप्पडिलेहिय, दुप्पडिलेहिय, सेज्जासंधारए, अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय सेज्जासंधारए, अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय उच्चारपासवणभूमि, अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय उच्चारपासवण भूमि, पोसहस्स, सम्म अण्णुपालणया, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

असण	-	दाल, रोटी, भात, आदि अन्न वस्तु तथा दूध आदि विगय
पाण	-	जल धोवन आदि पीने की वस्तु
खाइम	-	फल-मेवा औषधि आदि
साइम	-	लौंग सुपारी, इलायची, चूर्ण आदि भोजन के बाद खाने लायक स्वादिष्ट पदार्थ
अबम सेवन	-	मैथुन सेवन
अमुक मणिसुवर्ण	-	मणि, मोती तथा सोने-चादी के आभूषण आदि
माला	-	फूलमाला
वन्नग	-	सुगन्धित चूर्णादि
विलेवण	-	चन्दन आदि का लेप
सत्थ	-	तलवार आदि शस्त्र
मुसलादि	-	मूसल आदि औजार
सावज्जजोग	-	पाप सहित व्यापार

अप्पडिलेहिय	-	सोने के लिए कुश कम्बल आदि न जो संस्तारक
दुप्पडिलेहिय	-	आसन है उसको नहीं देखा हो या अच्छी तरह न
सेज्जासंथार	-	देखा हो
अप्पमज्जिय	-	सोने के लिए कुश, कम्बल आदि का जो संस्तारक
दुप्पमज्जिय	-	आसन है उसका प्रमार्जन (पडिलेहण) नहीं किया हो
सेज्जासंथारए	-	या अच्छी तरह न किया हो
अपडिलेहिय-	-	मल-मूत्र त्याग करने की भूमि को नहीं देखा हो या
दुप्पडिलेहिय	-	असावधानी से देखा हो
उच्चारपासवणभूमि अप्पमज्जियदुप्प		- मल-मूत्र त्याग करने की भूमि का प्रमार्जन नहीं किया
मज्जियउच्चार पासवण भूमि -		हो या अच्छी तरह नहीं किया हो
पोसहस्स	-	पोषध का
सम्मं	-	सम्यक् प्रकार
अणणुपालणया	-	पालन नहीं किया हो

भावार्थ - मैं प्रतिपूर्ण पौषध व्रत के विषय में एक दिन रात वै लिये अशन पान खाद्य और स्वाद्य इन चारों प्रकार के आहार का त्याग करता हूँ। अब्रम्हाचर्य सेवन का, अमुक मणि सुवर्ण आदि का, आभूषण पहिनने का, फूलमाला पहिनने का, सुगन्धित चूर्ण और चन्दनादि के लेप करने का, तलवार आदि शस्त्र और हल, मूसल आदि औजारों के जितने सावद्य व्यापार हैं उन सबका त्याग करता हूँ, यावत् एक-दिन रात पौषध व्रत का पालन करता हुआ मैं उक्त पाप क्रियाओं को मन, वचन, काया से नहीं करूँगा और न दूसरों से करवाऊँगा। ऐसी मेरी श्रद्धा और प्ररूपणा तो है किन्तु पौषध का समय आने पर जब उसका पालन करूँगा तब शुद्ध होऊँगा। यदि मैंने पौषध व्रत के समय शय्या के लिये जो कुश कम्बल आदि आसन है, उनका पडिलेहण और प्रमार्जन नहीं किया हो, अथवा अच्छी तरह पडिलेहण और प्रमार्जन न किया हो, ऐसे ही मल-मूत्र त्याग करने की भूमि का पडिलेहण और प्रमार्जन न किया हो अथवा अच्छी तरह न किया हो तथा सम्यक् प्रकार

पौषध का पालन नहीं किया हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूँ और चाहता हूँ कि मेरे वे सब पाप निष्फल हो ।

बारहवां अतिथिसंविभागव्रत-समणे णिग्गथे फासुयएसणिज्जेणं-असण पाण, खाइम, साइमं वत्थपडिग्गहकबलपायपुंच्छणेण, पडिहारियपीठफलगसेज्जा सथारएण, ओसहमेसज्जेणं पडिलाभेमाणे विहरामि ऐसी मेरी सद्वहणा प्ररुपणा है, साधु साध्वी का योग मिलने पर निर्दोष दान दू तब शूद्ध होऊँ । एवं बारहवे अतिथिसंविभाग व्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तजहा ते आलोउ-सच्चित्तनिकखेवणया, सच्चित्तपिहणया, कालाइक्कमे, परववएसे, मच्छरिआए तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

अतिथि	-	जिसके आने की कोई तिथि या समय नियत नहीं है
संविभागव्रत	-	ऐसे अतिथि साधु को अपने लिये तैयार किये हुए भोजनादि में से कुछ हिस्सा देना
समणे	-	श्रमण साधु
णिग्गथे	-	निर्ग्रन्थ पचमहाव्रतधारी
फासुयएसणिज्जेणं	-	प्रासुक (अचित्त) एषणीय (उदगमादि दोष रहित) वस्तु
असणंपाणखाइम	-	अशन पान खाद्य
साइमवत्थपडिग्गह	-	स्वाद्य, वस्त्र, पात्र
कम्बलपायपुंच्छणेणं	-	कम्बल पादु पौछन (पाव पौछने को रजोहरण आदि)
पडिहारिय	-	वापिस लौटा देने योग्य (जिस वस्तु को पीढ
पीठफलगसेज्जा	-	साधु कुछ काल तक रख कर बाद में वापिस लौटा देते हैं
सथारएणं	-	(ऐसे) चौकी पट्टा शय्या के लिये सस्तारक तृण का आसन
ओसहमेसज्जेण	-	औषध और भेषज (कई औषधियों के संयोग से बनी हुई गोतिया आदि)
पडिलाभेमाणे	-	देता हुआ (बहराता हुआ)

विहरामि	-	विहार करुं (रहू)
सचितनिक्खेवणया	-	साधु को नहीं देने की बुद्धि से अचित वस्तु को सचित जलादि पर रखना
सचित पिहणया	-	साधु को नहीं देने की बुद्धि से अचित वस्तु को सचित वस्तु से ढकना
कालाईक्कमे	-	साधु के भोजन के काल काउल्लघन करना अर्थात् भोजन के समय से पहिले या पीछे साधु को भोजन के लिये यह विचार करके प्रार्थना करना कि इस समय साधु भोजन नहीं लेगे और मेरा दानीपना प्रकट होगा।
परवएसे	-	दान नहीं देने की बुद्धि से अपनी वस्तु को दूसरे की कहना
मच्छरियाए	-	अमुक पुरुष ने दान दिया है, क्या मैं उससे कृपण हू या हीन हू ? इस प्रकार ईर्ष्या करके दान देने में प्रवृत्ति करना या दान देकर पश्चाताप करना

भावार्थ - मैं अतिथिसविभाग व्रत का पालन करने के लिये निर्ग्रन्थ साधुओं को अचित्त दोष रहित अशन, पान खाद्य स्वाद्य आहार का, वस्त्र पात्र कम्बल पादपौछन चोकी पट्टी सस्तारक औषधि आदि का साधु साध्वी का योग मिलने पर दान दूं तब शुद्ध होऊँ, मेरी ऐसी श्रद्धा प्ररूपणा है। यदि मैंने साधु को देने योग्य, अचित्त वस्तु को सचित वस्तु पर रखा हो, अचित्त वस्तु को सचित वस्तु से ढका हो, भोजन के समय से पहिले या पीछे साधु को भिक्षा के लिये प्रार्थना की हो, (या भोजन के समय साधु-साध्वी को दान देने की भावना न भायी हो) दान करने योग्य वस्तु को दूसरे की बता के साधु को दान नहीं दिया हो, दूसरे को दान देते ईर्ष्या की हो, मत्सर भाव से दान दिया हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूँ और चाहता हूँ कि मेरे सब पाप निष्फल हों।

॥ बड़ी सलेखना का पाठ ॥

अहं भते अपच्छिममारणातिरंसंलेहणा झूसणा आराहणा पौपघशाला पूं जे, पूजके उच्चार पासवण भूमिका पडिलेहे, पडिलेह के गमणागमणे, पडिक्कमे, पडिक्कम के दर्मादिक संथारा सथारे, संथार के दर्मादिक सथारा

दुरुहे, दुरुह के पूर्व तथा उत्तर दिशि सन्मुख पत्यकादिक आसन से बैठे, बैठ के करयलसपरिगहिय सिरसावत्त मत्थए अजलिं कट्टु एवं वयासी

णमोत्थुण अरिहताण भगवंताण जाव सपत्ताणं एसे अनन्त सिद्ध भगवान् को नमस्कार करके, णमोत्थुण अरिहताणं भगवताण जाव सपाविउकामाण जयवते वर्तमान काले महाविदेह क्षेत्र मे विचरते हुए तीर्थकर भगवान् को नमस्कार करके अपने धर्माचार्यजी महाराज को नमस्कार करता हू। साधु प्रमुख चारो तीर्थ को खमाकर सर्व जीव राशि को खमाकर पहले जो व्रत आदरे है उनमे जो अतिचार # दोष लगे हो, वे सर्व आलोच के पडिक्कम के, निन्द के, निःशल्य होकर के, सब पाणाइवाय पच्चक्खमि, सब मुसावाय पच्चक्खामि, सब अदिण्णादाणं पच्चक्खामि, सबं मेहुण पच्चक्खामि, सब परिगह पच्चक्खामि, सब कोह माण जाव मिच्छादसणसल्ल पच्चक्खामि, सबं अकरणिज्जं जोग पच्चक्खामि, जावज्जीवाए तिविह तिविहेण न करेमि, न कारवेमि, करतपि अन्नं न समणुजाणामि, मणसा, वयसा कायसा एसे अटारह पापस्थानक पच्चक्ख कर सबं असण

पाणं खाइम साइम, चउव्विहं पि आहार पच्चक्खामि जावज्जीवाए, एसे चारो आहारपच्चक्ख कर ज पि य इम सरीरं इड्ड, कंत, पियं, मणुण्ण, मणाम, धिज्ज, विसासिय, समय, अणुमय, बहुमय, भण्करण्डसमाण, रयणकरडगभूय, मा ण सीय, मा णं उण्ह, माणं खुहा, मा ण पिवासा, मा ण वाला, मा णं चोरा, मा ण दसमसगा, मा ण वाइय, पित्तिय, कफ्फिय, सभीम, सण्विवाइय विविहा रोगायं का परीसहा उवसग्गा फासा फुसतु, एव पि य णं चरमेहि उस्सासणिस्सामेहि वोसरामि ति कट्टु ऐसे शरीर को वोसिरा कर काल अवकखमाणे विहरामि, ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररुपणा तो है, फरसना करुतब शुद्ध होऊ। ऐसे अपच्छिम मारणतिय सलेहणा झूसणा आराहणाए पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउ इहलोगासंसप्पओगे, परलोगा संसप्पओगे जीवियाससप्पओगे, मरणाससप्पओगे, काममोगासंसप्पओगे तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

बारह व्रतो के 60 अतिचारो का विशष खुलासा श्री जैन सिद्धान्त बोल सग्रह प्रथम भाग के बोल न 301 से 312 तक मे है।

अपच्छिममारणातिय	-	सब के पश्चात् मृत्यु के समीप होने वाली
सलेहणा	-	सलेखना अर्थात् जिसमे शरीर
		कषाय ममत्व आदि
		कृश (दुर्बल) किये जाते हैं, ऐसा
		तप विशेष

भूसणा	-	संलेखना का सेवन करना ।
आराहणा	-	संलेखना का अन्तकाल तक पालन करना ।
पूज के	-	प्रमार्जन करके पूज कर
उच्चारपासवणभूमिका	-	मल-मूत्र त्यागने की भूमि का
पडिलेह के	-	पडिलेखन करके, देख करके
गमणागमणे	-	जाने आने की क्रिया का
पडिक्कम के	-	प्रतिक्रमण कर
दुरुह के	-	संधारे पर आरुढ होकर
करयलसंपरिग्गहियं	-	दोनो हाथ जोड कर
सिरसावत्तं	-	मस्तक से आवर्तन # करके
मत्थए अंजलिं कट्टु	-	मस्तक पर हाथ जोड के
एवं वयासी	-	इस प्रकार बोले
नमोत्थुणं	-	नमस्कार हो
अरिहंताणंभगवंताणं	-	अरिहन्त भगवान को
जाव संपत्तारणं	-	यावत् मोक्ष को प्राप्त हुए को
सपाविउकामाणं	-	मोक्ष प्राप्ति की इच्छा वाले को
निःशत्य	-	माया, मिथ्या दर्शनशत्य और
मिच्छादंसणसल्लं	-	नियाण इन तीन शत्यो से रहित
अकरणिज्जं	-	मिथ्यादर्शनशत्य (मिथ्या दर्शन
इड्डं	-	रूपी कंटक)
# आवर्तन - मस्तक पर जोडे हुए हाथों को तीन बार घुमाना ।	-	नहीं करने योग्य
कंतं	-	इष्ट, इच्छानुकूल (मर्जी माफिक)
पियं	-	कान्तियुक्त
मणुण्णं	-	प्रिय, प्यारा
मणांमं	-	मनोज्ञ, मनोहर
धिज्जं	-	अत्यन्त मनोहर
विसासियं	-	धीरज रखनेवाला - धैर्यशाली
संमयं	-	विश्वास करने योग्य
अणुमयं	-	मानने योग्य
बहुमय	-	विशेष सम्मान को प्राप्त
	-	बहुत मानवीय

भण्डकरण्डसमाण	-	आभूषणो के करण्ड (कण्डिया - डिब्बा) के समान
रयणकरण्डगमूयं	-	रत्नों के करण्ड के समान
मा ण सीय	-	शीत (सर्दी) न हो
मा णं उण्हं	-	उष्णता (गर्मी) न हो
मा ण खुहा	-	भूख न लगे
मा णं पिवासा	-	प्यास न लगे
मा ण वाला	-	सर्प न काटे
मा ण चोरा	-	चोरो का भय न हो
मा ण दंसमसगा	-	डांस और मच्छर न सतावे
मा णं वाइयं	-	न वात
पित्तिय	-	पित्त
कफियं	-	कफ
संभीम	-	भयङ्कर
सण्णिवाइयं	-	सन्निपात
विविहा	-	अनेक प्रकार की
रोगायका	-	रोग सम्बन्धी पीडाए
परीसहा	-	क्षुधा आदि परिषह (कर्म क्षय करने के लिए क्षुधा आदि की बाधा को शान्तिपूर्वक सह्यना)
उवसग्गा	-	उपसर्ग (देव, तिर्यञ्च आदि द्वारा दिया गया कष्ट)
फासा फुसंतु	-	सम्बन्ध करे
चरमेहि	-	अन्त के
उस्सासणिस्सासेहि	-	उच्छ्वासनि श्वासो (श्वासोच्छ्वासों)से
वोसिरामि	-	त्याग करता हू
ति कट्टु	-	ऐसा करके
कांलं अणवकंखमाणे	-	काल की आकांक्षा (वाछा) नहीं करता हुआ
विहरामि	-	विहार करता हू विचरता हू

भावार्थ- मृत्यु का समय निकट आने पर सलेखना तप का प्रीतिपूर्वक सेवन करने के लिए पौषधशाला का प्रमार्जन (शोधन) करे । मल-मूत्र त्यागने

की भूमि का प्रतिलेखन करे। चलने-फिरने की क्रिया का प्रतिक्रमण कर पूर्व व उत्तर दिशा की और मुंह करके पत्यंक (पालस्थ) आदि आसन लगा कर दर्भादि के आसन पर बैठे और हाथ जोड़ कर सिर से आवर्तन करता हुआ मस्तक पर हाथ जोड़कर णमोत्थुणं अरिहंताणं भगवताणं जाव सप्ताणं इस प्रकार बोल कर सिद्ध भगवान् को नमस्कार करे। णमोत्थुण अरिहताण भगवताणं जाव संपाविउकामाणं ऐसा बोल कर महाविदेह क्षेत्र में वर्तमान काल में जो तीर्थंकर विचर रहे हैं, उनकी नमस्कार करे और पीछे अपने धर्माचार्य जी महाराज की नमस्कार करे। साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका इस प्रकार चतुर्विध संघ से क्षमा मांगकर समस्त जीवों से क्षमा मागे। पहले धारण किये व्रतों में जो अतिचार लगे हो उनकी आलोचना और निन्दा करे। सम्पूर्ण हिंसा, झूठचोरी, अब्रम्हाचर्य (मैथुन) और परिग्रह इन पांच पापों का तथा क्रोध, मान, माया, लोभ यावत् मिथ्यादर्शन शक्त्य आदि का तथा सम्पूर्ण पापजनक योगों का त्याग करे, अठारह पापास्थान का तीन करण और तीनयोग से त्याग करे। जीवन पर्यन्त चार प्रकार के आहार का त्याग करे, इसके बाद मनोज्ञ जो अपना शरीर है उनमें ममत्व हटावे और संलेखना के पापों अतिचारों को दूर करके शुद्ध अनशन करे। इस प्रकार श्रद्धा और प्ररूपणा की शुद्धि के लिए नित्य पाठ करे। जब अन्तिम समय आवे, तब स्पर्शना द्वारा (संलेखना तप का पालन करके) शुद्ध होवे।

॥ तस्स धम्मस्स का पाठ ॥

तस्स धम्मस्स केवलिपण्णत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए, विरोमि
विराहणाए तिविहेणं पडिक्कंतो वन्दामि जिणचउब्बीसं।

केवलिपण्णत्तस्स	-	केवली भाषित
तस्स	-	उस
धम्मस्स	-	धर्म की.
आराहणाए	-	आराधना के लिये
अब्भुट्ठिओमि	-	उधत हुआ हूँ
तिविहेण	-	मन-वचन-काया द्वारा
विराहणाए	-	विराधना से
पडिक्कंतो	-	निवृत्त होता हुआ
विरओमि	-	विरक्त होता हुआ
जिणचउब्बीस	-	चोबीस तीर्थंकरों की

वंदामि

-

वन्दना करता हू

भावार्थ-मैं केवली भाषित श्रावक धर्म की आराधना (पालन) करने के लिए उधत हुआ हू। श्रावक धर्म को सम्यक् प्रकार नहीं पालने के कारण प्राप्त हुए दोषों से मन-वचन-काया द्वारा निवृत्त होता हुआ, चौबीस तीर्थकरो को नमस्कार करता हू।

॥ पांच पदों की वन्दना ॥

(1) पहिले पद श्री अरिहंत भगवान् जघन्य बीस तीर्थकरजी, उत्कृष्ट एक सौ साठ तथा एक सौ सत्तर देवाधिदेव जी, उनमें वर्तमान काल में बीस विहरमानजी महाविदेह क्षेत्र में विचरते हैं। एक हजार आठ लक्षण के धरणहार, चौतीस अतिशय, पैतीस वाणी करके विराजमान, चौसठ इन्द्रों के वन्दनीय, अठारह दोष रहित, बारह गुण सहित, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अन्त चरित्र, अनन्त बल वीर्य, अनन्त सुख, दिव्य-ध्वनि, भामण्डल, स्फटिक सिंहासन, अशोक वृक्ष, कुसुमवृष्टि, देवदुन्दुभि छत्र धरावे, चवर बिजावे, पुरुषाकार पराक्रम के धरणहार, अढाई द्वीप, पन्द्रह क्षेत्र में विचरे, जघन्य दो करोड़, केवली और उत्कृष्ट नव करोड़ केवली, केवलज्ञान, केवलदर्शन के धरणहार, सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव के जाननहार।

सवैया - नमो श्री अरिहन्त, करमो का किया, अन्त, हुआ सो केवलवन्त, करुणा भण्डारी है।

अतिशय चौतीस धार, पैतीस वाणी उच्चार, समझावे नर-नार, पर-उपकारी है।

शरीर सुन्दराकार, सूरज सो झलकार, गुण है अनन्तसार, दोष परिहारी है।

कहत है तिलोकरिख, मन, वचन, काया करी, लुलि लुलि बारम्बार वन्दना हमारी है ॥ 1॥

ऐसे श्री अरिहन्त भगवन्त दीनदयाल महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो हे अरिहन्त भगवन् ! मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करिये। हाथ जोड़, मान मोड़ शीश नमाकर तिक्युत्तो के पाठ से 1008 बार नमस्कार करता हू।

तिक्युत्तो आयाहिणं पयाहिण करेमि वन्दामि णमसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाण मगल देवय चेइय पज्जुवासामि मत्थएण वन्दामि।

आप मांगलिक हो, उत्तम हो । हे स्वामिन् । हे नाथ । आपका इस मन्त्र परभव भवभव मे सदा काल शरण हो ।

(2) दूसरे पद श्री सिद्ध भगवान् पन्द्रह भेदे अनन्त सिद्ध हुए है । आठ कर्म खपाकर मोक्ष पहुंचे है । तीर्थसिद्धा, अतीर्थसिद्धा, तीर्थकर सिद्धा, अतीर्थकर सिद्धा स्वयं, बुद्ध सिद्धा, प्रत्येक बुद्ध सिद्धा, बुद्धबोधिसिद्धा, स्त्रीलिंगसिद्धा, पुरुषलिंग सिद्धा, नपुंसकलिंगसिद्धा, स्वलिंगसिद्धा, अन्यलिंगसिद्धा, गृहस्थलिंगसिद्धा, एकसिद्धा, अनेकसिद्धा, जहां जन्म नहीं, जरा नहीं, मरण नहीं, भय नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं, दुःख नहीं, दारिद्र्य नहीं, कर्म नहीं, काया नहीं, मोह नहीं, माया नहीं, चाकर नहीं, ठाकर नहीं, भूख नहीं, तृषा नहीं, ज्योतिमेज्योति विराजमान सकल कार्य सिद्ध करके चवदे प्रकारे, पन्द्रह भेदे अनन्त सिद्ध भगवान् हुए है । अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख क्षायिक सम्यवत्त्व, अटल अवगाहना, अमूर्तिक, अगुरुलधु, अनन्तवीर्य्य, ये आठ गुण करके सहित हैं ।

सवैया - सकल करम टाल, वश कर लियो काल, मुगति मे रह्या माल, आत्मा को तारी है ।

देखत सकल भाव, हुआ है जगत् राव, सदा ही क्षायिक भाव, भवे अविकारी है ।

अचल अटल रूप, आवे नहीं भवकूप, अनूप सरूप उप, ऐसे सिद्ध धारी है ।

कहत है तिलोकरिख, बताओ है वासप्रभु, सदा ही उगते सूर, वन्दना हमारो है ॥1॥

ऐसे श्री सिद्ध भगवन्तजी महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो बारम्बार हे सिद्ध भगवान् ! मेरा अपराध क्षमा करिये । हाथ जोड़ मान मोड़, शीश नमाकर तिक्युतो के पाठ से 1008 बार नमस्कार करता हूं । (यहां पर तिक्युतो का पाठ बोले) यावत् भव-भय सदाकाल शरण हो ।

(3) तीसरे पद श्री आचार्य महाराज छत्तीस गुण करके विराजमान, पांच महाव्रत पालें, पांच आचार पाले, पांच इन्द्रिय जीते, चार कषाय टालें, नववाड़ सहित शुद्ध ब्रम्हाचर्य पाले, पांच समिति, तीन गुप्ति शुद्ध आराधें । ये 36 गुण और आठ

सम्पदा (1 आचार सम्पदा, 2 श्रुत सम्पदा, 3 शरीरसम्पदा, 4 वचनसम्पदा, 4 वाचनासम्पदा, 6 मतिसम्पदा, 7 प्रयोगमतिसम्पदा, 9 संग्रहपरिज्ञासम्पदा) सहित है।

सवैया - गुण है छत्तीस पूर, धरत धरम ऊर, मारत करम क्रूर, सुमति विचारी है ।

शुद्ध सो आचारवन्त, सुन्दर है रुप कन्त, भण्या है सब ही सिद्धात वाचणी सुप्यारी है ।

अधिक मधुर वैण, कोई नही लोपे कैण, सकल जीवो का सेण, कीरत अपारी है ।

कहत है तिलोकरिख, हितकारी देत सीख, ऐसे आचारज ताकू, वन्दना हमारी है ॥१॥

सवैया - वन्दू पूज्य ब्रह्मलाल, सारे है आतम काज मेरे गुरु सिरताज, शास्त्र के भण्डारी है, लघुवय में लीनी दीक्षा, गुरु यमेश से पाई शिक्षा ।

सत्य की करी है रक्षा, बाल-ब्रम्हाचारी है, सघ मे शिरोमणि, धार-वाणी मीठी अमृत धार, नैया नौका सागर पार, पूज्य यशधारी है । नित वन्दू चरणो मे, ब्रह्म गुरु के शरणो मे, ऐसे पूज्य राज श्री को वन्दना हमारी है । आगम गुण भण्डार, शुद्ध है क्रिया-आचार चारितर अविकार, राम गुणकारी है, सेवा मे रहे तल्लीन, विनय करे निशदिन, कर्तव्य की बजे बीन, गुरु आज्ञाधारी है । तिरण-तारण नाथ, करो भव सागर पार, ऐसे गुरुराज श्री को वन्दना हमारी है ।

• ऐसे श्री आचार्य महाराज न्यायपक्षी, भद्रिक परिणामी, परम पूज्य कल्पनीय अचित वस्तु के ग्रहणहार, सचित के त्यागी, वैरागी, महागुणी, गुणो के अनुरागी, सौभागी है, ऐसे श्री आचार्य महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो है आचार्य महाराज ! मेरा अपराध आप क्षमा करिये । हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमाकर तिक्युतो के पाठ से 1008 बार नमस्कार करता हू । (यहा पर तिक्युतो का पाठ बोले) यावत् भव-भव सदाकाल शरण हो ।

(4) चौथे पद श्री उपाध्याय महाराज पच्चीस गुण करके सहित (ग्यारह अंग, बारह उपाग, चरणसत्तरी, करण सत्तरी इन पच्चीस गुण करके सहित) हैं तथा ग्यारह अंग का पाठ अर्थ सहित सपूर्ण जाने, चौदह पूर्व पाठक और निम्नोक्त बत्तीस सूत्रों के जानकार हैं ।

ग्यारह अंग - आचाराग सूयगडाग, ठाणाग, समवायांग, विवाह पत्रति (भगवती), ज्ञाताधर्मकथा, उवासगदसा, अतगडदसा, अणुत्तरोववाई,

पण्हावागरण (प्रश्नव्याकरण), विवागसुय (विपाकश्रुत) ।

बारह उपांग - उववाई, रायप्पसेणी, जीवा जीवाभिगम, पत्रवणा, जम्बूद्धीवपन्नति, चन्दपन्नति, सूरपन्नति, निर्यावलिया, कप्पवडसिया, पुप्फिया, पुप्फचूलिया, वण्हिदसा ।

चार मूल सूत्र :- उत्तराझयणं (उत्तराध्ययन), दसवेयालियसुत (दशवैकालिक सूत्र), पंदीसुतं (नन्दीसूत्र), अणुओगद्वार (अनुयोगद्वार) ।

चार छेद - दसासुयक्खंधो (दशाश्रुतस्कन्ध), विहक्कप्पो (वृहत्कल्प), ववहारसुतं (व्यवहार सूत्र), णिसीहसुत (निशीर्थ सूत्र) और बत्तीसवा आवस्सा (आवश्यक) तथा अनेक ग्रन्थ के जानकार, सात नय, निश्चय व्यवहार, चार प्रमाण आदि स्वमत तथा अन्य मत के जानकार, मनुष्य या देवता कोई भी विवाद में जिनको छलने में समर्थ नहीं, जिन नहीं पण जिन सरीखे, केवली नहीं पण केवली सरीखे हैं ।

सवैया - पढत इग्यारे अंग, करमो सू करे जग, पाखडी को मानभग, करण हुशियारी है । चवदे पूरव धार, जानत आगम सार, भविजन के सुखकार, भ्रमता निवारी है ।

पढावे भविकजन, स्थिर कर देत मन, तप कर तावे तन, ममता, निवारी है ।

कहत है तिलोकरिख ज्ञानभानु परतिख, ऐसे उपाध्याय ताकू, वन्दन हमारी है ।

ऐसे श्री उपाध्याय महाराज मिथ्यात्वरूप अधिकार के मेटनहार, समकितरु-उद्योत के करनहार, धर्म से डिगते प्राणी को स्थिर करें, सारए, वारए, धारए, इत्यादि अनेकगुण करके सहित है, ऐसे श्री उपाध्याय महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो बारम्बार हे उपाध्याय महाराज । नेर अपराध क्षमा करिये, हाथ जोड, मान मोड, शीश नमाकर तिकखुतो के पाट ने 1008 बार नमस्कार करता हूं । (यहां पर तिकखुतो का पाट बोले) यावत् भव-सदाकाल शरण हो ।

(5) पाचवे पद णमो लोएं सब साहूणं कहिये अढाई द्वीप, पन्द्रह क्षेत्र रूप लोक में सर्व साधुजी महाराज जघन्य दो हजार करोड, उत्कृष्ट नव हजार करोड जयवन्ता विचरे, पाच महाव्रत पाले, पांच इन्द्रिय जातें, चार कपाय टाले, भावसच्चे, करणसच्चे, जोगसच्चे, क्षमावन्त वैराग्यवन्त, मनसमाधारणीया, वयमाधारणीया, कायसमाधारणीया, नाणसम्पन्ना, दंसणसम्पन्ना, चरितसम्पन्ना,

वेदनीय समाअहियासनीया, मरणान्तिसमाअहियासनीया ऐसे सत्ताईस गुण करके सहित है । पाच आचार पाले, छह काय की रक्षा करे, सात कुव्यसन त्यागे, आठ मद छोड़े, नव बाड सहित ब्रह्मचर्य पाले, दस प्रकार यति धर्म धारे, बारह भेदे तपस्या करे, सत्रह भेदे सयम पाले, अठारह पाप को त्यागे, बाईस परीषह जीते, तीस महा मोहनीय कर्म निवारे, तेतीस आशातना टाले, बयालीस दोष टाल कर आहार पानी लेवे, सैतालीस दोष टाल कर आहारपानी भोगे, बावन अनाचार टाले, तेडिया बुलावे आवे नहीं, नेतिया जीमे नहीं, सचित के त्यागी, अचित के भोगी, लोच करे, नगे पैर चले इत्यादि कायक्लेश करे और मोह ममता रहित है ।

सवैया - आदरी सयम भार, करणी करे अपार, समिति गुपति धार, वेकथा निवारी है ।

जयणा करे छह काय, सावध न बोले वाय, बुझाय कषाय लाय, केरिया भण्डारी है ।

ज्ञान भणो आठो याम, लेवे भगवन्त को नाम, धरम को करे काम, मता कूमारी है ।

कहत है तिलोक रिख करमो का टाले विख, ऐसे मुनिराज ताकू, नन्दना हमारी है ।

ऐसे मुनिराज महाराज, आपकी दिवस-सम्बन्धी अविनय आशातना की है तो बारम्बार हे मुनिराज । मेरा अपराध क्षमा करिये । हाथ जोड, मान मोड, गीश नमाकर तिक्युतो के पाठ से 1008 बार नमस्कार करता हू । यहा पर तेक्युतो का पाठ बोले यावत् भव-भव, सदाकाल शरण हो ।

॥ दोहा ॥

अनन्त चौबीसी जिन नमू, सिद्ध अनन्ता कोड ।

केवल ज्ञानी गणधरा, वन्दू बे कर जोड ॥ 1॥

दोय कोडी केवलधरा, विहरमान जिन बीस ।

सहस्र युगल कोडी नमू, साधु नमू निशदीस ॥ 2॥

धन साधु, धन साध्वी, धन-धन है जिनधर्म ।

ये समरया पातक झरे, टूटे आठो कर्म ॥ 3॥

अरिहन्त सिद्ध समरु सदा, आचारज उपाध्याय ।

साधु सकल के चरण को, वन्दू शीश नवाय ॥ 4॥

शासन-नायक सुमरिये, भगवन्त वीर जिणद ।
 अलिय विघन दूरे हरे, आपे परमानन्द ॥5॥
 अगूठे अमृत बसे, लब्धि तणा भण्डार ।
 श्री गुरु गौतम समरिये, वंछित फल दातार ॥6॥
 गुरु गोविन्द दोनो खडे, किसके लागूं पाय ।
 बलिहारी गुरु देव की, गोविन्द दिया बताय ॥7॥
 लोभी गुरु तारे नही, तिरे सो तारणहार ।
 जो तूं तिरियो चाह तो, निर्लोभी गुरु धार ॥8॥
 पर उपकारी साधुजी, तारण तरण जहाज ।
 कर जोडी हूं नित नमू, धन मोटा मुनिराज ॥9॥
 साधु सती नै शूरमा, ज्ञानी नै गजदन्त ।
 इतना पीछा ना हटे, जो जुग जाय अनन्त ॥10॥
 नानेशाचार्य महान है, तप सयम गुण खान है ।
 ऐसे सुज्ञानी आचार्य श्री को मेरे अनेको प्रणाम ॥11॥
 राम गुरु कृपा करो, दो मुझको सदज्ञान
 आपके पुण्य प्रसाद से, पाऊ पद निर्वाण ॥12॥

॥ आयरिय उवज्झाए का पाठ ॥

आयरियउवज्झाए, सीसे साहम्मिए कुलगणे अ ।
 जे मे केई कसाया, सव्वे तिविहेणं खामेमि ॥ 1॥
 सव्वस्स समणसंघस्स, भगवओ अंजलिं करिअ सीसे ।
 सव्वे खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ।
 सव्वस्स जीवरासिस्स, भावओ धम्मनिहियं नियचितो ।
 सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहय पि ।
 (मरण समाधि प्रकीर्णक और सस्तारक प्रकीर्णक)
 रागेण व दोसेण व, अहवा अकयण्णुणा पढि निवेसेणं ।
 जं मे किचिवि भणिअं, तमहं तिविहेणं खामेमि ॥4॥

उवझाए	-	उपाध्यायजी महाराज
सीसे	-	शिष्यो
साहम्मिए	-	साधर्मिको
कुल	-	एक आचार्य का शिष्य समुदाय
गणे	-	गण-समूह पर

जे	-	जो
मे	-	मैंने
केई	-	कुछ
कसाय	-	क्रोधादि कषाय (किया हौ)
सव्वे	-	सब को
तिविहेण	-	तीन योग से (मन, वचन, काया से)
खामेमि	-	खमाता हू, क्षमा चाहता हू ।
सव्वस्स	-	सभी
समण सघस्स	-	श्रमण सघ, साधु समुदाय
भगवंओ	-	भगवान को
अजलि	-	दोनो हाथ जोड
करिए	-	करके
सीसे	-	शिर पर
सव्वे	-	सब को
खमावइत्ता	-	खमा करके
खमामि	-	क्षमा करता हू
सव्वस्स	-	सब का
अहयं पि	-	मैं भी
सव्वस्स	-	सभी
जीवरासिस्स	-	जीव राशि से
भावओ	-	भाव से
धम्म निहियनियचित्तो	-	धर्म मे चित्त को स्थिर करके
सव्वे	-	सब को
खमावइत्ता	-	खमा करके
खमामि	-	खमता हू, क्षमा करता हू
रागेण	-	राग से
दोसेण	-	द्वेष से
अहवा	-	अथवा
अकयण्णुणा	-	अकृतज्ञता से
पडिनिविसेणं	-	आग्रहवश
जो	-	जो
मे	-	मैंने

किंचि वि	-	कुछ भी
भणिओ	-	कहा है
तं	-	उसके लिए
तिविहेण	-	मन, वचन, काया से
अहं	-	मैं
खामेमि	-	क्षमा चाहता हूँ

भावार्थ - आचार्य, उपाध्याय, शिष्य साधार्मिक, कुल और गण इनके उपर जो कुछ कषाय किये हों, उन सब की उन लोगों से मैं मन, वचन और काया से माफी चाहता हूँ ॥1॥

हाथ जोड़ कर सब पूज्य मुनिगण से मैं अपराध की क्षमा चाहता हूँ और मैं भी उन्हें क्षमा करता हूँ ॥2॥

धर्म में चित्त को स्थिर करके सम्पूर्ण जीवों से मैं अपने अपराध की क्षमा चाहता हूँ और स्वयं भी उनके अपराध को क्षमा करता हूँ ॥3॥

राग द्वेष, अकृतज्ञता अथवा आग्रहवश मैंने जो कुछ भी कहा है, उसके लिए मैं मन, वचन, काया से सभी से क्षमा चाहता हूँ ॥4॥

॥ अढ़ाई द्वीप का पाठ ॥

अढ़ाई द्वीप, पन्द्रह क्षेत्र में श्रावक-श्राविका दान देवें, शील पाते, तपस्या करे, शुभ भावना भावे, संवर करें, सामायिक करें, पौषध करे, प्रतिक्रमण करे, तीन मनोरथ चिंतवे, चौदह नियम चितारें, जीवादिक नद पदार्थ जानें, श्रावक के इक्कीस गुण करके युक्त एक व्रतधारी, जाब बारह व्रतधारी जो भगवान् की आज्ञा में विचरें ऐसे बड़ो से हाथ जोड़, पैर पड़कर क्षमा मांगता हूँ । आप क्षमा करे, आप क्षमा करने योग्य है और छोटी से समुच्चय खमाता हूँ ।

॥ चौरासी लाख जीवयोनि का पाठ ॥

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्काय, सात लाख तेउकाय, सात लाख वायुकाय, दस लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण वनस्पतिकाय, दो लाख वेइन्द्रिय, दो लाख तेइन्द्रिय, दो लाख चउरिन्द्रिय, चार लाख देवता, चार लाख नारकी, चार लाख तिर्यच पंचेन्द्रिय, चौदह लाख मनुष्य - ऐसे चार गति चौरासी लाख जीवयोनि के सूक्ष्म, दादर पर्याप्त, अपर्याप्त जीवों में से जीव का हालते, चालते, उठते, बैठते, सोते,

हनन किया हो, कराया हो, हनता प्रति अनुमोदन किया हो, छेदा हो, भेदा हो, किलामिया उपजाई हो तो मन, वचन, काया करके प्रत्येक जीव को अटारह लाख चौबीस हजार एक सौ बीस * (1824120) प्रकारे तस्स मिच्छामि

दुक्कडं ।

* जीव तत्व के 563 भेदों को अभिहया वत्तिया आदि दस के साथ गुणा करने से 5630 भेद होते हैं। फिर इनको राग और द्वेष को साथद्विगुण करने से 11260 भेद बनते हैं। फिर इन्हीं को मन, वचन, काया के साथ त्रिगुणा करने से 33780 भेद बन जाते हैं। फिर इनको ही तीन करणों के साथ गुणा करने से 101340 भेद बन जाते हैं। इनको फिर तीन काल के साथ गुणा करने से 304020 भेद हो जाते हैं। फिर इनको अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, गुरु और आत्मा इस प्रकार छह से गुणा करने पर 1824120 भेद बनते हैं अर्थात् इस प्रकार से मैं मिच्छामि दुक्कड देता हूँ और फिर पापकर्म न करने की प्रतिज्ञा करता हूँ । /

॥ खामेमि सव्वे जीवा का पाठ ॥

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमतु मे ।

मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मझं न केणइ ॥

एवमहं आलोइयं, निदियं गरहियं दुगच्छिय सम्म ।

तिविहेण पडिक्कंतो, वदामि जिणे चउव्वीस ॥

सव्वे	-	सब
जीवा	-	जीवों का
खामेमि	-	खमाता हूँ
सव्वे	-	सब
जीवा	-	जीव
मे	-	मुझको
खमतु	-	क्षमा करे
मे	-	मेरी
सव्वभूएसु	-	सम्पूर्ण प्राणियों से
निदियं	-	आत्मसाक्षी से निन्दा करके
गरहिय	-	गुरु साक्षी से गर्या करके
दुगच्छिय	-	जुगुप्सा (ग्लानि-घृणा) करके
तिविहेण	-	मन, वचन, काया द्वारा
पडिक्कंतो	-	पापों से निवृत्त होता हुआ
चउव्वीसं	-	चौबीस
जिणे	-	अरिहन्त भगवान् को

वन्दामि

-

वन्दना करता हूँ

भावार्थ - मैंने किसी जीव का अपराध किया हो तो मैं उससे क्षमा चाहता हूँ। सभी प्राणी मुझे क्षमा करें। संसार के प्राणी मात्र से मेरी मित्रता है, मेरा किसी से वैर-विरोध नहीं है। मैं अपने पापों की आलोचना, निन्दा, रुढ़ और जुगुप्सा करता हूँ तथा उन पापों से निवृत्त होता हुआ मन, वचन, कर्म से चौबीस तीर्थकरो की वन्दना करता हूँ।

॥ प्रायश्चित्त का पाठ ॥

देवसियपायच्छित्तविसोहणत्थं करेमि काउस्सगं ।

पायच्छित्त

-

प्रायश्चित्त

विसोहणत्थं

-

विशुद्धि करने के लिए

भावार्थ - मैं दिवस सम्बन्धी प्रायश्चित्त की शुद्धि के लिये कायोत्सर्ग करता हूँ।

॥ समुच्चय पच्चक्खाण का पाठ ॥

गंटिसहियं, मुट्टिसहियं, नमुक्कारसहियं पोरिसिय साड्ढ पोरिसिय (अपनी अपनी इच्छा अनुसार) तिविहपि चउविहपि आहारं, असण, पाण, खाइम, साइमं (अपनी-अपनी धारणा प्रमाणोपच्चक्खाण) अण्णत्थणा भोगेण, सहसागारेणं महत्तकागारेणं सव्व समाहत्तियागारेणं वोसिरामि ।

*स्वयं पच्चक्खाण करना हो तब वोसिरामि ऐसा बोले और जब दूसरे ने पच्चक्खाण कराना हो तब वोसिरे ऐसा बोले ।

गंटिसहियं

-

गांठ सहित अर्थात् जब तक मैं गांठ बधी रखूँ तब तक

मुट्टिसहियं

-

मुट्ठी सहित अर्थात् जब तक मैं मुट्ठी बन्धी रखूँ तब तक

नमुक्कारसहियं

-

नमस्कार मंत्र बोलकर सूर्योदय से लेकर एक मुहूर्त (48) मिनट) तक त्याग

पोरिसियं

-

एक पहर तक त्याग

साड्ढपोरिसियं

-

डेढ पहर तक त्याग

अण्णत्थणाभोगेणं

-

दिना उपगोग के कोई वस्तु सेवन की

सहसागारेणं

-

अकस्मात् जैसे पानी बरसाना

और मुख में छीटे पड़ जावे या
छाछ बिलोते समय मुह में छीटे
पड़ जावे तो मेरे आगार है

(पहला सामायिक, दूसरा चउवीसथ, तीसरी वदना, चौथा प्रतिक्रमण, पाचवा ध्यान ये पाच आवश्यक पूरे हुए छट्ठा पच्चक्खाण की आज्ञा फिर पच्चक्खाण करना।)

महत्तरागारेणं

-

महापुरुषों के आगार से अर्थात्
महापुरुषों के निमित्त से त्याग का
भग करना पड़े तो इसका मेरे आगार
है।

सव्वसमाहिवत्ति आगारेणं -

सब प्रकार की शारीरिक मानसिक
नीरोगता रहे तब तक अर्थात् शरीर
में भयकर रोग हो जाय तो दवाई
का आगार है

वोसिरामि

-

त्याग करता हूँ

भावार्थ - जब तक गाठ बंधी रखू तब तक या मुट्ठी बंद रखू तब तक या सूर्योदय से 48 मिनट तक या एक पहर तक या डेढ़ पहर इत्यादि काल तक (इनमें से जिसको जिस प्रकार का त्याग करना हो उसको उसका ही उच्चारण करना चाहिये) अशन खाद्य स्वाद्य इन तीनों प्रकार के आहारों का अथवा अशन, पानी, खाद्य, स्वाद्य इन चार प्रकार के आहारों का त्याग करता हूँ। यदि उपयोग न रहने से या अकस्मात् या किसी महापुरुष के निमित्त से अथवा शरीर में रोगादि उत्पन्न होने पर दवाई आदि का मेरे आगार है।

॥ अन्तिम पाठ ॥

(1) प्रतिक्रमण व्रत अविधी से किया हो विधी में कोई अविधि हुई हो तो सूत्रविपरीत किया हो, एव पहला सामायिक, दूसरा चउवीसथ, तीसरी वदना, चौथा प्रतिक्रमण, पाचवा ध्यान, छट्ठा पच्चक्खाण, इन छः आवश्यकों में जानते अजानते जो कोई अतिचार दोष लगा हो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

(2) प्रतिक्रमण का पाठ उच्चारण करते काना, मात्रा, अनुस्वार, पद, अक्षर, न्यूनाधिक आगे पीछे कहा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(3) मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण, अव्रत का प्रतिक्रमण, कषाय का प्रतिक्रमण, प्रसाद का प्रतिक्रमण, अशुभ योग का प्रतिक्रमण इन पांच प्रतिक्रमण

में से कोई प्रतिक्रमण न किया हो तस्स मिच्छामिदुक्कडं तथा चलते, फिरते, उटते, बैठते, पढ़ते, गुणते, जानते, अजानते, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप सम्बन्ध कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(4) गये काल का प्रतिक्रमण, वर्तमान काल की सामायिक और आगामी काल का पच्चक्खाण, इनमें जो कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(5) सम, संवेग, निर्वेद, अनुकपा, आस्था इन व्यवहार समकित के पांच बोलों का पालन करता हूं, अद्वारह दोष रहित, बारह गुणसहित, देवअरिहंत है, गुरु निर्ग्रथ (आचार्य श्री रामलालजी म. सा.) है। केवली भाषित धर्म है, ये तीन तत्त्व सार है, संसार असार है, सच्चे के प्रति श्रद्धा, झूठे के प्रति मिच्छामि दुक्कडं।

॥ इति प्रतिक्रमण सूत्र समाप्त ॥

॥ प्रतिक्रमण की विधि ॥

(1) आसन पर खड़े होकर जिस दिशा में धर्माचार्य धर्म गुरु विराजमान है, उस दिशा की ओर मुंह करके अपने गुरु महाराज को तिकखुत्तो के पाठ से तीन बार वन्दना करके, चउवीस थव की आज्ञा लेकर, चउवीस थव करे।

(2) चउवीस थव में खड़े होकर नवकार मंत्र, इच्छाकारेण और तस्सउत्तरी का पाठ कहकर काउस्सग करे। काउसग भाईयो को खड़े रहकर ही करना चाहिए और यदि सुरक्षित स्थान हो, मकान दरवाजे युक्त हो तो बहिनो को भी खड़े रहके ही काउस्सग करना चाहिए क्योंकि यह आवश्यक विधी खड़े रहकर काउस्सग करने में अच्छी तरह से सधती है। यदि कदाचित् सुरक्षित न स्थान हो, अथवा शारीरिक विशेष परिस्थिति हो तो तस्सउत्तरी की पाटी में जहां अप्पाणं बोसिरामि शब्द आये वहां बहिने बैठे जाये और बैठकर काउसग करे।

(3) काउस्सग में लोगस्स का पाठ दो बार मन में कहे तथा नमो अरिहंताणं कह कर काउस्सग पारे। फिर नवकार मंत्र और ध्यान का पाठ (काउस्सग में आर्तध्यान, रौद्रध्यान ध्याया हो, धर्मध्यान शुक्ल-ध्यान न ध्याया हो, काउस्सग में मन, वचन, काया चलित हुए हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं) और लोगस्स का पाठ प्रकट-बोले।

(4) फिर बैठ कर बाया घुटना खड़ा करके णमो त्थुण का पाठ दो बार बोले। दूसरे णमोत्थुण के पाठ में ठाण सपत्ताण के बदले ठाण सपापिउकामाण

हैं।

(5) फिर खड़ा होकर वन्दना करे और प्रतिक्रमण करने की आज्ञा लेवे। बड़े होकर नवकार मत्र और इच्छामि ण भन्ते का पाठ कहकर तिव्खुतो के पाठ से पहले आवश्यक की आज्ञा लेवे।

(6) पहले सामायिक आवश्यक में खड़े होकर कुरेमि भन्ते, इच्छामि ग्रमि और तस्स उत्तरी की पाटी बोल के काउस्सग करे। काउस्सग में 99 अतिचार की पाटिया (आगमे तिविहे, दंसण समिकत, बारह व्रतो के अतिचार मन्त्रह कर्मादान सहित, छोटी सलेखना), अठारह पाप स्थान और इच्छामि ग्रमि का चिन्तन करे। काउस्सग में सभी पाटियों के अन्त में मिच्छा मि दुक्कड के बदले आलाउ कहे। णमो अरिहंताण कह कर काउस्सग पारे। बाद में नवकार मत्र और ध्यान का पाठ कहे। यहा पहला सामायिक आवश्यक समाप्त हुआ। फिर तिव्खुतो के पाठ से दूसरे आवश्यक की आज्ञा लेवे। पहला सामायिक आवश्यक को पूरा हुआ, दूसरा चउवीसथव की आज्ञा।

(7) दूसरे चउवीसथव आवश्यक में खड़े होकर लोगस्स का पाठ कहे। फिर तिव्खुतो के पाठ से तीसरे आवश्यक वन्दना की आज्ञा लेवे।

(8) तीसरे वन्दना आवश्यक में इच्छामि खमासमणो का पाठ विधिपूर्वक दो बार कहे। विधि इस प्रकार है - निसीहिआए पद जहा आवे, तब बैठकर दोनों घुटने खड़े रख कर दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक नमाकर आगेका पाठ बोले। "अहो कायं कायं" इन छह अक्षरों का उच्चारण करते समय तीन आवर्तन करे। दोनों हाथ जोड़ लम्बे कर दसो अंगुलियों से गुरु महाराज के चरण स्पर्श कर या चरण स्पर्श की भावना से दसो अंगुलिया भूमि पर लगा कर मद स्वर से "अ" अक्षर का उच्चारण करे और फिर दसो अंगुलिया मस्तक पर लगाते हुए "हो" अक्षर ऊँचे स्वर से कहे। इस प्रकार दोनों अक्षर कहने से पहला आवर्तन हुआ। इसी विधि से "का" और "यं" दोनों अक्षरों का उच्चारण करने से दूसरा आवर्तन और "का" और "यं" इन दोनों अक्षरों का उच्चारण करने से तीसरा आवर्तन होता है।

इसी तरह "जत्ता भे जवणिज्ज च भे" इन नौ अक्षरों का उच्चारण करते हुए तीन आवर्तन करे। ऊपर लिखे अनुसार दोनों हाथ जोड़ लम्बे कर दसो अंगुलियों से गुरु महाराज के चरण स्पर्श अथवा चरण स्पर्श की भावना से दसो अंगुलिया भूमि पर लगा कर "ज" अक्षर मद स्वर से कहे, फिर "त्ता" अक्षर मध्यम स्वर से और दसो अंगुलिया मस्तक पर लगा कर भे अक्षर ऊँचे स्वर से कहे। इस प्रकार "जत्ता भे" ये तीन अक्षर बोलने से पहला आवर्तन हुआ। इसी विधि से "ज व णि" इन तीनों अक्षरों का उच्चारण क्रमशः मन्द,

मध्यम और उच्च स्वर से करने से दूसरा आवर्तन होता है। "ज्ज, च, भं", का भी इसी विधि से मन्द, मध्यम और उच्च स्वर से उच्चारण करने से तीसरा आवर्तन होता है। इसी तरह $3 + 3 = 6$ आवर्तन हुए। जहाँ

"तितिसन्नयराए" शब्द आवे, वहाँ खड़ा हो जाय और खड़े होकर शेष पाठ पूरा करे। इसी विधि से इच्छामि खमासमणो का पाठ दूसरी बार बोले। यह पाठ बोलते समय भी ऊपर लिखे अनुसार छः आवर्तन करें। किन्तु इस बार आवस्सियाए पद नहीं बोले और तितिसन्नयराए शब्द आने पर खड़ा न होकर बैठे हुए ही पाठ समाप्त करे। तीसरा वन्दना आवश्यक समाप्त हुआ। तिविखुत्तो के पाठ से चौथे आवश्यक की आज्ञा लेवे।

(10) पहला सामायिक दूसरा चउवीसथ, तीसरी वन्दना आवश्यक, पूरे हुए चौथा प्रतिक्रमण आवश्यक की आज्ञा लेते हैं ऐसा बोले।

(11) चौथे प्रतिक्रमण आवश्यक में खड़े होकर 99 अतिचार की पाटिया, अठारह पापस्थान, इच्छामि ठामि जिनका काउस्सग में चिन्तन किया था, प्रकट कहे। सभी पाटियों के अन्त में मिच्छामि दुक्कड कहे। फिर समुच्चय पाठ कह कर तस्स सबस्स का पाठ कहे।

(12) बाद में वन्दना करके श्रावक सूत्र की आज्ञा लेकर, दाहिना घुटना ऊँचा रख कर बैठे। फिर नवकार मंत्र, करेमि भन्ते, चत्तारी मगल, इच्छामि ठामि, इच्छाकारेणं, आगमे तिविहे, दंसेण समकित और बारह व्रतो को अतिचार सहित पाठ पढ़े। और बैठकर (पालकी लगाकर) बड़ी संलेखना का पाठ कहे।

फिर इस तरह समकित पूर्वक बारह व्रत संलेखना सहित - इनके विषय अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार जानते अजानते मन, वचन, काय से कोई पाप दोष लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड कह कर अठारह पापस्थान और इच्छामि ठामि का पाठ कहे।

(13) फिर खड़े होकर तस्सधम्मस्स का पाठ बोले और ऊपर लिखी विधि से दो बार इच्छामि खमासमणो का पाठ बोले।

(14) फिर भाव-वन्दना की आज्ञा लेकर दोनों घुटने नमाकर, धुंठनो पर दोनों हाथ जोड़कर रखे और मस्तक नीचा नमाकर, नवकार मंत्र कहकर पाँच पदों की वन्दना कहे।

(15) फिर पालखी लगाकर बैठे और अनन्त चौबीसी आदि दोहे, "आयरिय उवज्झाए" का पाठ अट्ठाई द्वीप का पाठ, चौरासी लाख जीवयोनिका का पाठ बोलकर, अठा रह पापस्थान कहे। यहाँ चौथा प्रतिक्रमण आवश्यक

समाप्त हुआ ।

(16) फिर तिक्रुत्तो के पाठ से पांचवे आवश्यक की आज्ञा लेवे ।

पहला सामायिक, दूसरा चउवीसथव, तीसरी वन्दना, चौथा प्रतिक्रमण, चार आवश्यक पूरे हुए पाचवा काउस्सग करने की आज्ञा

(17) पाचवे काउस्सग आवश्यक में खड़े होकर प्रायश्चित का पाठ, नवकार मन्त्र, करेमि भन्ते, इच्छामि ठामि और तस्सउत्तरी का पाठ कह कर काउस्सग करे । काउस्सग में देवसिय, रायसी प्रतिक्रमण 4 लोगस्स का, पक्खी प्रतिक्रमण में 8 लोगस्स का, चौमासी प्रतिक्रमण में 12 लोगस्स का और सवत्सरी प्रतिक्रमण में 20 लोगस्स का ध्यान करे । णमो अरिहन्ताण कह कर काउसग पारे । बाद में नवकार मन्त्र ध्यान का पाठ और लोगस्स का पाठ बोलकर दो बार इच्छामि खमासमणो का पाठ उपर्युक्त विधि सहित बोले । पाचवा काउस्सग आवश्यक समाप्त हुआ । तिक्रुत्तो के पाठ से छठे आवश्यक की आज्ञा लेवे ।

(18) छठे पच्चक्खाण आवश्यक में खड़े होकर डसाधु महाराज से शक्ति अनुसार पच्चक्खाण करे । यदि साधु महाराज नहीं विराजते हो तो बड़े श्रावक जी से पच्चक्खाण के पाठ से पच्चक्खाण करे । (1) सामायिक (2) चउवीस थव (3) वन्दना (4) प्रतिक्रमण (5) काउस्सग (6) पच्चक्खाण ये छ आवश्यक समाप्त हुए ।

(19) फिर अन्तिम पाठ बोलकर नीचे बैठे और बाया घुटना खड़ा करके उपर्युक्त विधि से दो बार णमोत्थुण बोले ।

(20) फिर तिक्रुत्तो के पाठ से गुरु महाराज को वन्दना करे । यदि वे वहा नहीं विराजते ही तो जिस दिशा में धर्माचार्यजी विराजमान हो उस दिशा में वन्दना करे और बाद में स्वधर्मी भाइयो को खमावे । बाद में चौबीसी, स्तवन आदि बोले ।

नोट. प्रतिक्रमण में जहा देवसिय शब्द आया है, वहा देवसिय प्रतिक्रमण में देवसिय । राइय प्रतिक्रमण में राइय पक्खी प्रतिक्रमण में पक्खी सम्बन्धी । चौमासी प्रतिक्रमण में चौमासी सम्बन्धी । सवत्सरी प्रतिक्रमण में सवत्सरी सम्बन्धी कहना चाहिए ।

॥ चौबीसी ॥

अरिहन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु समरणा करणा, तीर्थंकर रतना री माला, समरणा नित्य करणा । समारियो माला, मेरी जान समारियो माला, ज्यू कटे कर्म का जाला, ए जीव तणा रखवाला ॥ ध्यान तार्थकर का धरणा रे ॥ ध्या ॥

पाच पद चौबीस जिनन्दजी का, नित्य लीजे शरणा ॥१॥

ए आकड़ी ॥

श्री ऋषभ अजित संभव अभिनन्दन, अति आनन्द करना ।
सुमाति पदम सुपाश्वर्च चन्द्रप्रभु, दास रहू चरणा ॥
चरण नित्य वंदू, मेरी जान चरण नित्य वदू ।
ज्यू कटे कर्म का फन्दा, तुम तजो जगत का धन्धा ।
दीठा होय नयन अभिय ठरणा रे ॥दीठा ॥ 2 ॥
सुविधि शीतल श्रेयांस वासुपूज्य, पूज्य, हृदय माहे धरणा ।
विमल अनन्त श्रीधर्म शांतिजी, दास रहू चरणा ॥
जिनन्द मोहे तारी, मेरी जान जिनन्द मोहे तारो ।
संसार लगे मोहे खारो, वैराग्य लगे मोहे प्यारो ।
मै सदा-दास चरणां रो, नाथजी अब कृपा करणा रे ॥नाथ ॥

पाच पद ॥३॥

बुंथु अर मल्लि मुनिसुब्रतजी, प्रभु तारण तरणा ।
नमि नेम पाश्वर्च महावीरजी, पाप परा हरणा ॥
तिरे भव प्राणी, मेरी जान तिरे भव प्राणी ।
संसार समुद्र जाणी, सुणो सूत्र सिद्धांत की बाणी ।
पापकर्म से अब तो डरणा रे ॥ पाप ॥ पांच पद ॥४॥
इग्याराजी गणधर बीस विरहमान, बांधां सुं मिटे मरणा । अनन्त
चौबीसी को नित-नित बांदू, दुरर्गति नहीं पडना ॥
मिथ्या अंध मेढो, मेरी जान मिथ्या अंध मेढो ।
रहो धर्म ध्यान मे सेंढो, जिनराज चरण नित्य भेटो ।
दुःख दारिद्र सब तो सेढो, जिनराज चरण नित्य भेटो ।
दुःख दारिद्र सब तो हरणा रे ॥ दुःख ॥ पांच पद ॥५॥
जैन धर्म पाया बिन प्राणी, पाप सु पिंड भरणा ।
नीठ - नीठ मानव भव पायो, धर्मध्यान करणा ।
करो शुद्ध करणी, मेरी जान करो शुद्ध करणी । निरवाण तणी निसरणी,
तुम तजो पराई परणी, एक चित्त धर्मध्यान करणा रे ॥ एक ॥

पांच पद ॥६॥

विहरमान तीर्थकर गणधर, मनमा शुद्ध धरणा ।
वेलपालजी के उकलाने, कीया स्तवन वरना ॥
वरन गुन कीना, मेरी जान वरन गुन कीना ।
ज्यो अमृत प्याला पीना, एक शरण धर्म का लीना ।
रिख लालचन्दजी गुण कीना, करो नव तत्व का निरणा रे, ॥करो ॥
पांच पद चौबीस जिनन्दजी का नित्य लीजे शरणा ॥७॥ इति ॥

प्रतिष्ठा के लक्ष्य के लिए उच्च स्तर पर कार्य कर रहे हैं

इच्छा निवासी - हिन्दुस्तान के लिये 778

इनके अतिरिक्त - हिन्दुस्तान के लिये 778

संस्कृत के लिये अतिरिक्त - हिन्दुस्तान के लिये 778

संस्कृत के लिये अतिरिक्त - हिन्दुस्तान के लिये 778

(87 संस्कृत अतिरिक्त 2 अतिरिक्त 88 संस्कृत 888) हिन्दुस्तान के लिये 778

12 संस्कृत के लिये अतिरिक्त - हिन्दुस्तान के लिये 778

12 संस्कृत के लिये अतिरिक्त - हिन्दुस्तान के लिये 778

इच्छा निवासी - हिन्दुस्तान के लिये 778

संस्कृत के लिये अतिरिक्त - हिन्दुस्तान के लिये 778

संस्कृत के लिये अतिरिक्त - हिन्दुस्तान के लिये 778

(हिन्दुस्तान के लिये 778) हिन्दुस्तान के लिये 778

वही संस्कृत - हिन्दुस्तान के लिये 778

संस्कृत के लिये अतिरिक्त - हिन्दुस्तान के लिये 778

संस्कृत के लिये अतिरिक्त - हिन्दुस्तान के लिये 778

गाथा 1578 (संस्कृत के लिये 778) हिन्दुस्तान के लिये 778

संस्कृत के लिये अतिरिक्त - हिन्दुस्तान के लिये 778

(संस्कृत के लिये 778) हिन्दुस्तान के लिये 778

चतुर्थ आयाम

१. दधु दण्डक

जीवाभिगम सूत्र की प्रथम प्रतिपत्ति इसका मुख्य आधार है। इसमें 24 दण्डको का 25 द्वारों से विश्लेषण किया गया है।

25 द्वार -

1. शरीर द्वार 2. अवगाहना 3. संहनन 4. संस्थान 5. कषाय 6. सज्ञा
7. लेख्या 8. इन्द्रिय 9. समुदघात 10 संज्ञी 11. वेद 12. पर्याप्ति 13. दृष्टि
14. दर्शन 15. ज्ञान, अज्ञान 16. योग 17. उपयोग 18. आहार 19.
उत्पाद 20 स्थिति 21. समोहया असमोहया मरण 22. च्यवन 23. गति-
आगति 24. प्राण 25. योग।

गाथा-

नेरइया असुराई, पुढवाई बेइन्दियादओ चेव।

पंचिन्दिय - तिरिय - नरा, वंतर - जोइसिस - वेमाणी॥1॥

संग्रहणी गाथाएं - जीवाभिगम सूत्र प्रथम प्रतिपत्ति

सरीरोगाहण - संघयण - संटाण-कसाय तह य हुंति

सन्नाओ लेसिंदिय - समुग्घाए सन्नी वेए य पज्जती ॥1॥

दिड्डी-दंसण - नाणे जोगुवओगे तहा किमाहारे।

उववाय ठिई समुग्घाय चवण-गइरागई च्चेव ॥2॥

1. शरीर द्वार

जो जीर्ण-शीर्ण अर्थात् विनाश होने वाला है, उसे शरीर कहते हैं।

इसके पाँच भेद हैं - 1 औदारिक 2. वैक्रिय 3. आहारक 4 तैजस

और 5. कर्मण।

1. औदारिक शरीर - उदार अर्थात् प्रधान अथवा स्थूल पुद्गलो से बना हुआ शरीर - औदारिक कहलाता है।

तीर्थकर और गणधरो का शरीर प्रधान पुद्गलों से बनता है।
साधारण और सर्वसाधारण का शरीर स्थूल साधारण पुद्गलो बनता है।
मनुष्य और तिर्यच को औदारिक शरीर प्राप्त होता है।

2 **वैक्रिय शरीर** - जिस शरीर से एक, अनेक, छोटा, बड़ा, दृश्य अदृश्य शरीर धारण करना आदि विविध क्रियाएँ होती हैं, उसे वैक्रिय शरीर कहते हैं।

वैक्रिय शरीर दो प्रकार है - 1. औपपातिक और 2. लब्धिप्रत्यय।

देव और नारको का शरीर औपपातिक कहलाता है अर्थात् उनको जन्म से ही वैक्रिय शरीर मिलता है। लब्धिप्रत्यय शरीर तिर्यच और मनुष्यो को होता है। मनुष्य और तिर्यच तप आदि के द्वारा प्राप्त की हुई शक्ति विशेष से वैक्रिय शरीर प्राप्त कर लेते हैं।

3 **आहारक शरीर** - अति विशुद्ध, स्फटिक के समान निर्मल, आहारक पुद्गलों से बना शरीर आहारक शरीर कहलाता है। छठे गुणस्थानवर्ती, 14 पूर्वधारी, आहारक लब्धि प्राप्त मुनिराज को 14 पूर्व चितारते हुए कोई सशय उत्पन्न हो अथवा कोई वादी आकर मुनिराज को प्रश्न पूछे उसका उत्तर 14 पूर्व में न हो अथवा उस समय मुनिराज का उपयोग नहीं लगे अथवा तीर्थकर भगवान् की ऋद्धि, दर्शन या प्राणी दया का प्रसंग उपस्थित होने पर वे मुनिराज आहारक लब्धि से जघन्य देश न्यून एक हाथ उत्कृष्ट एक हाथ प्रमाण अति विशुद्ध स्फटिक के समान निर्मल शरीर निकालते हैं। वह शरीर केवली भगवान के पास शका निवारण के लिए अथवा प्रश्न का उत्तर पूछने के लिए पहुँचता है उस शरीर को आहारक शरीर कहते हैं।

4 **तैजस शरीर** - तेजस पुद्गलों से बना हुआ शरीर तैजस कहलाता है। उष्णता इस शरीर का चिन्ह है। शरीर में उष्णता को टिकाने में एव आभा (कान्ति) को बनाये रखने में तैजस शरीर प्रमुख निमित्त है। इस शरीर की उष्णता से खाये हुए अन्न का पाचन होता है और कोई - कोई तपस्वी क्रोध से उष्णतेजो - लेश्या के द्वारा ओरो को हानि पहुँचाता है तथा प्रसन्न होकर शीतल तेजोलेश्या के द्वारा लाभ पहुँचाता है, वह इसी तेजस-शरीर के प्रभाव से होता है अर्थात् आहार के पाचन के हेतु तथा उष्ण तेजोलेश्या और शीतल तेजोलेश्या के निर्गमन के हेतु जो शरीर है, वह तैजस-शरीर कहलाता है।

5 **कर्मण शरीर** - नाम कर्म के उदय से प्राप्त कर्मों को धारण करने वाली पेट्टी को कर्मण शरीर कहते हैं।

समस्त ससारी जीवों के तैजस शरीर और कर्मण शरीर, ये दो शरीर अवश्य (नियमा) होते हैं।

1 नारकी और देवता में शरीर पावे - 3 वैक्रिय, तैजस और कर्मण।

2 चार स्थावर पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वनस्पतिकाय और असन्नी

- मनुष्य इन पाचों में शरीर पावे तीन - औदारिक, तेजस, कर्मण ।
 वायुकाय मे शरीर पावे चार - औदारिक, वैक्रिय, तेजस और कर्मण ।
 3 तीन विकलेन्द्रिय और असत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय मे शरीर पावे तीन औदारिक, तैजस और कर्मण ।
 4 सत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय मे शरीर पावे चार - 1. औदारिक, 2. वैक्रिय, 3. तैजस और 4. कर्मण ।
 5. गर्भज मनुष्य मे शरीर पावे पांच - 1. औदारिक, 2. वैक्रिय, 3. आहारक, 4. तैजस और 5. कर्मण ।
 6 युगलिक मनुष्यों के भेद - 5. हेमवत, 5 हैरण्यवत, 5 हरिवास, 5 रम्यकवास, 5. देवकुरु, 5 उत्तरकुरु एव 56 अन्तर्द्वीप मे शरीर पावे तीन 1 औदारिक, 2 तेजस और 3. कर्मण ।
 7 सिद्ध भगवान के शरीर नहीं, अशरीरी है ।

2. अवगाहना द्वार

जीव का शरीर जितने आकाश प्रदेशों को अवगाहे (रोके), उसको अवगाहना कहते हैं । वह जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट 1000 योजन झाड़ोरी है । (यद्यपि तैजस, कर्मण शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना 14 राजु लोक प्रमाण है, तथापि इस थोकड़े में 1000 योजन झाड़ोरी तक ही प्रयुक्त होने से यहां इतना ही उत्कृष्ट ग्रहण किया है) उत्तर वैक्रिय करे तो ज अंगुल का असंख्यातवे भाग उत्कृष्ट एक लाख योजन झाड़ोरी है ।

- 1 पहली नारकी से सातवी नारकी तक भवधारणीय शरीर की अवगाहना, जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट पहली नारकी की पौने आठ धनुष 6 अंगुल, दूसरी नारकी की साठे पद्रह धनुष 12 अंगुल की, तीसरी नारकी की सवा इकतीस धनुष, चौथी नारकी की साठे बासठ धनुष, पाँचवी नारकी की सँवासो धनुष, छठी नारकी, की दौ सौ पचास धनुष, सातवी नारकी की पाँच सौ धनुष। उत्तर वैक्रिय करे, तो जघन्य अंगुल के संख्यातवे भाग, उत्कृष्ट अपनी-अपनी अवगाहना से दुगुनी । जैसे सातवी नारकी की भवधारणीय शरीर की अवगाहना 500 धनुष की है और उत्तर वैक्रिय करे तो 1000 धनुष की कर सकता है ।

भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी तथा पहिले, दूसरे देवलोक के देवों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवे भाग, उत्कृष्ट 7 हाथ की ।

आगे सभी कि ज अंगुल के अस भाग उ इस प्रकार है -
तीसरे और चौथे देवलोक के देवों की 6 हाथ की, पाँचवे-छठे
देवलोक के देवों की 5 हाथ की, सातवे-आठवे देवलोक के देवों की
4 हाथ की, नौवे से बारहवे देवलोक के देवों की 3 हाथ की, नव
ग्रैवेयक के देवों की 2 हाथ की, पाच अनुत्तर विमान के देवों की 1
हाथ की ।

उत्तर वैक्रिय करे, तो जघन्य अंगुल के असंख्यातवे भाग, उत्कृष्ट
बारहवे देवलोक तक एक लाख योजन की । नव ग्रैवेयक और
अनुत्तर विमान के देवों में वैक्रिय करने की शक्ति तो होती है किन्तु
करते नहीं है ।

- 2 पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और असत्री मनुष्य इन
पाचों की अवगाहना ज अंगुल के असंख्यातवे भाग और उत्कृष्ट भी
अंगुल के असंख्यातवे भाग । किन्तु ज से उत्कृष्ट असंख्यात गुण
अधिक है।

वनस्पतिकाय की अवगाहना ज. अंगुल के असंख्यातवे भाग, उत्कृष्ट
1000 योजन झाड़ोरी, कमल नाल की अपेक्षा । वायुकाय के उत्तर
वैक्रिय शरीर की अवगाहना ज और उ अंगुल के असंख्यातवे भाग ।

- 3 वेइन्द्रिय की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवे भाग, उत्कृष्ट 12
योजन ।

तेइन्द्रिय की अवगाहना ज अंगुल के असंख्यातवे भाग, उ 3 गाऊ ।
चौरिन्द्रिय की अवगाहना ज अंगुल के असंख्यातवे भाग, उ 4
गाऊ ।

असत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय के पाच भेद -

जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भूजपरिसर्प । जलचर
की अवगाहना ज अंगुल के अस भाग, उ 1000 योजन की ।

स्थलचर की जघन्य अंगुल के अस. भाग, उ पृथक्त्व गाऊ ।

खेचर की जघन्य अंगुल के अस भाग उ पृथक्त्व धनुष ।

उरपरिसर्प की जघन्य अंगुल के अस भाग, उ पृथक्त्व योजन ।

भूजपरिसर्प की जघन्य अंगुल के अस भाग, उ पृथक्त्व धनुष

- 4 सत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय के पांच भेद —

जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प, भूजपरिसर्प । जलचर की
अवगाहना ज अंगुल के असंख्यातवे भाग उत्कृष्ट 1000 योजन ।

स्थलचर की ज अंगुल के असंख्यातवे भाग, उत्कृष्ट 6 गाऊ ।

खेचर की ज अंगुल के असंख्यात वे भाग, उत्कृष्ट पृथक्त्व धनुष ।
 उरपरिसर्प की ज. अंगुल के असंख्यातवे भाग उ. 1000 योजन ।
 भुजपरिसर्प की ज अंगुल के असंख्यातवे भाग उ. पृथक्त्व गाऊ ।
 सत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय वैक्रिय शरीर करे, तो अवगाहना ज अंगुल
 के संख्यातवे भाग उत्कृष्ट पृथक्त्व 100 योजन (ज. 200 उत्कृष्ट
 900 योजन)

5. **गर्भज मनुष्यों की अवगाहना** - ज. अंगुल के असंख्यातवे भाग
 उत्कृष्ट तीन गाऊ । काल के अनुसार अवसर्पिणी काल में गर्भज
 मनुष्यों की उत्कृष्ट अवगाहना इस प्रकार है—

पहले आरे के प्रारंभ में तीन गाऊ ।

पहला पूर्ण होते और दूसरे के प्रारंभ में दो गाऊ ।

दूसरा पूर्ण होते और तीसरे के प्रारंभ में एक गाऊ ।

तीसरा पूर्ण होते और चौथे के प्रारंभ में 500 धनुष । ५

चौथा पूर्ण होते और पांचवे के प्रारंभ में 7 हाथ । 3

पांचवा पूर्ण होते और छठे के प्रारंभ में 2 हाथ । 2

छठा आरा पूर्ण होते एक हाथ । ।

यह उत्कृष्ट अवगाहना है । जघन्य अवगाहना उत्पत्ति के समय
 अंगुल के असंख्यातवे भाग है ।

उत्सर्पिणी काल की अवगाहना का क्रम इससे उलटा होता है । यदि
 मनुष्य वैक्रिय करे, तो अवगाहना ज. अंगुल के संख्यातवे भाग और
 उत्कृष्ट एक लाख योजन झाड़ेरी ।

6. **युगलिक मनुष्य की अवगाहना** - ज. अंगुल के असं भाग तथा
 उत्कृष्ट हेमवत और हैरण्यव्रत में एक गाऊ । हरिवास और रम्यवास
 में दो गाऊ । देवकुरु और उत्तरकुरु में तीन गाऊ । अन्तर्द्विप में आठ
 सौ धनुष । इन सबमें ज. देशउणी और उत्कृष्ट परिपूर्ण होती है ।

7. **श्री सिद्ध भगवान की अवगाहना**—आत्म प्रदेशों की अवगाहना जघन्य
 एक हाथ आठ अंगुल (दो हाथ वाले मनुष्य की अपेक्षा) मध्यम
 चार हाथ और सोलह अंगुल (7 हाथ वाले मनुष्य की अपेक्षा)
 उत्कृष्ट 333 धनुष्य 32 अंगुल (500 धनुष वाले मनुष्य की अपेक्षा)

3. संहनन द्वार

हड्डियों के बन्धन विशेष को संहनन कहते अथवा उस-उस प्रकार के
 बन्धन के समान दृढता को संहनन कहते हैं । इसके छह भेद हैं -

- 1 वज्रऋषभ - नाराच संहनन - वज्र का अर्थ - किल है, ऋषभ का अर्थ वेष्टन-पट्ट (पट्टा) है और नाराच का अर्थ दोनो ओर से मर्कट बन्ध है। जिस संहनन मे दोनो ओर से मर्कट-बन्ध द्वारा जुडी हुई दो हड्डियो पर तीसरी पट्ट की आकृति वाली हड्डी का चारो ओर से वेष्टन होऔर जिसमे इन तीनो हड्डियो को भेदने वाली हड्डी की वज्र नामक कील हो, उसे वज्र - ऋषभ - नाराज संहनन कहते है ।
- 2 ऋषभ - नाराच संहनन - जिस संहनन मे दोनो ओर से मर्कट-बन्ध द्वारा जुडी हुई हड्डियो पर तीसरी पट्ट की आकृति वाली हड्डी का चारो ओर से वेष्टन हो, परन्तु तीनों हड्डियों को भेदने वाली वज्र नामक हड्डी की कील नही हो, उसे ऋषभ - नाराच - संहनन कहते हैं ।
- 3 नाराच - सहनन - जिस सहनन मे दोनो ओर से मर्कट-बन्ध द्वारा जुडी हड्डियों हो, परन्तु इनके चारों ओर वेष्टन-पट्ट और वज्र नामक कील नहीं हो, उसे नाराच - सहनन कहते हैं ।
- 4 अर्धनाराच - संहनन - जिस सहनन मे एक ओर मर्कट -बन्ध हो, उसे अर्धनाराच - संहनन कहते है ।
- 5 कीलिका - संहनन - जिस सहनन मे हड्डियों केवल कील से जुडी हुई हो, उसे कीलिका - सहनन कहते है ।
- 6 . सेवार्तक - संहनन - जिस सहनन मे हड्डियों पर्यन्त भाग मे एक दूसरे को स्पर्श करती हुई रहती है तथा सदा चिकने पदार्थों के प्रयोग एवं तैलादि की मालिश की अपेक्षा रखती है, उसे सेवार्तक - सहनन कहते है ।
- 1 नारकी और देवता में सहनन नही । नारकी मे अशुभ पुद्गल परिणमे और देवो मे शुभ परिणमे ।
- 2 पाच स्थावर और असत्री मनुष्य मे एक सेवार्तक सहनन है ।
- 3 तीन विकलेन्द्रिय और असत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय मे एक सेवार्तक सहनन है ।
- 4 सत्री तिर्यच पचेन्द्रिय मे सहनन पावे छहो -
1 वज्र ऋषभ नाराच संहनन 2 ऋषभ नाराच सहनन 3 नाराच सहनन 4 अर्द्ध नाराच संहनन 5 कीलिका संहनन 6 सेवार्तक सहनन ।
- 5 गर्भज मनुष्य मे संहनन पावे छहों ।
- 6 युगलिक मनुष्य मे वज्र ऋषभ नाराच सहनन ।

7. सिद्ध भगवान मे संहनन नही ।

4. संस्थान द्वार

नामकर्म के उदय से बनने वाली शरीर की आकृति को संस्थान कहते हैं । इसके छह भेद है -

1. **समचतुरस्त्र (समचोरस)** - ऊपर, नीचे तथा बीच में समभाग से शरीर की सुन्दराकार आकृति को समचोरस संस्थान कहते हैं ।
 2. **न्यग्रोधपरिमण्डल** - वट वृक्ष के समान शरीर की आकृति अर्थात् जिसमें नाभि से ऊपर का भाग प्रशस्त, विस्तृत, लक्षणयुक्त, पूर्ण एवं शास्त्रनुसार प्रमाण वाला हो और नाभि से नीचे का भाग हीन हो, उसे न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान कहते हैं ।
 3. **सादि**- ऊपर वाले लक्षण से बिल्कुल विपरीत हो, जैसे साँप की बाँबी अर्थात् नाभि से नीचे का भाग उत्तम प्रमाण वाला हो और नाभि से ऊपर का भाग हीन हो, उसे सादि संस्थान कहते हैं ।
 4. **कुब्जक (कुबड़ा)** - जिस शरीर के हाथ, पाँव, मुख और ग्रीवादिक उत्तम हो और हृदय, पेट, पीठ अधम (हीन) हों, उसे कुब्जक संस्थान कहते हैं ।
 5. **वामन** - बौना शरीर हो अर्थात् जिस शरीर में हाथ, पाँव आदि अवयव हीन हों और छाती, पेट आदि पूर्ण हों, उसे वामन संस्थान कहते हैं ।
 6. **हुण्डक** - जिस शरीर में सभी अंगोपाग किसी खास आकृति के न हो (खराब हो) उसे हुण्डक संस्थान कहते हैं ।
1. नारकी के भवधारणीय शरीर और उत्तर वैक्रिय शरीर में एक हुण्डक संस्थान है । देवों के भवधारणीय शरीर में एक समचोरस संस्थान और उत्तर वैक्रिय शरीर में विविध प्रकार का संस्थान होता है ।
 2. पाँच स्थावर और असत्री मनुष्य के एक हुण्डक संस्थान होता है ।
 3. तीन विकलेन्द्रिय और असत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय में एक हुण्डक संस्थान होता है ।
 4. सत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय में संस्थान पावे छहो -
 1. समचतुरस्त्र संस्थान (समचोरस), 2. न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान
 3. सादि संस्थान 4. कुब्जक संस्थान 5. वामन संस्थान 6. हुण्डक संस्थान ।
 5. गर्भज मनुष्यो में छहो संस्थान पाये जाते हैं ।

- 6 युगलिक मनुष्यो मे समचतुरस्त्र सस्थान पाया जाता है ।
- 7 सिद्ध भगवान् मे सस्थान नही ।

5. कषाय द्वार

क्रोधदि रुप आत्मा के विभाव परिणामो को काषाय कहते है ।

इसके चार भेद है - क्रोध, मान, माया, लोभ ।

- 1 सभी जीवो मे कषाय पावे चारो - क्रोध, मान, माया, लोभ । मनुष्य अकषायी भी होते हैं । 11 12 14
- 2 सिद्ध भगवान् अकषायी हैं ।

6. संज्ञा द्वार

आहारादि की सवेदना विशेष को संज्ञा कहते है । इसके चार भेद है ।

- 1 24 ही दण्डको मे चारो संज्ञा पाई जाती है -
1 आहार - संज्ञा 2 भय - संज्ञा 3 मैथुन - संज्ञा और परिग्रह संज्ञा । मनुष्य नोसंज्ञोपयुक्त भी होते है । 13 14
- 2 सिद्ध भगवान् मे संज्ञा नही, नोसंज्ञोपयुक्त हैं ।

7. लेश्या द्वार

योग की प्रवृत्ति से उत्पन्न होने वाले आत्मा के शुभाशुभ परिणाम को लेश्या कहते है । इसके छह भेद है ।

- 1 पहली और दूसरी नारकी मे एक कापोत लेश्या है । तीसरी नारका में कापोत और नील लेश्या । चौथी नारकी मे एक नील लेश्या । पाचवी नारकी मे नील और कृष्ण लेश्या । छठी नारकी मे कृष्ण लेश्या । सातवी नारकी मे महा कृष्ण लेश्या । भवनपति और वाणव्यन्तरम देव मे पहली चार लेश्या होती है - 1 कृष्ण लेश्या 2 नील - लेश्या 3 कापोत लेश्या 4 तेजो लेश्या । ज्योतिषी तथा पहले - दूसरे देवलोक मे तेजो-लेश्या । तीसरे, चौथे और पाँचवे देवलोक मे पद्म लेश्या । छठे देवलोक से नवग्रैवेयक तक शुक्ल लेश्या । पाच अनुत्तर विमान मे परम शुक्ल लेश्या ।
- 2 पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय - इन तीनो मे चार लेश्या पायी जाती है - कृष्ण, नील, कपोत और तेजो लेश्या । तेउकाय, वायुकाय और असन्नी मनुष्य मे तीन लेश्या पायी जाती है - कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या ।

3. तीन विकलेन्द्रिय और असत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय मे तीन लेश्या पायी जाती है - कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या ।
4. सत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय मे छहों लेश्या पाई जाती है -
1 कृष्ण 2. नील 3. कापोत 4. तेजो 5. पद्म 6 शुक्ल ।
5. गर्भज मनुष्य में छहों लेश्या तथा अलेशी भी होते है ।
6. युगलिक मनुष्य में चार लेश्या पाई जाती है । कृष्ण, नील, कापोत और तेजो लेश्या ।
7. सिद्ध भगवान् मे लेश्या नही, अलेशी हैं ।

8. इन्द्रिय द्वार

इन्द्र का अर्थ आत्मा । जिसके माध्यम से छद्मस्थ आत्मा शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श का ज्ञान करती है उसे इन्द्रिय कहते है ।

इसके पाँच भेद है ।

1. नारकी और देवो मे पांचो इन्द्रिय - 1. श्रोतेन्द्रिय 2. चक्षुरिन्द्रिय 3 घ्राणेन्द्रिय 4. रसनेन्द्रिय 5. स्पर्शनेन्द्रिय ।
2. पांच स्थावर मे एक स्पर्शनेन्द्रिय पावे और असत्री मनुष्य मे पांचो ही . इन्द्रियां पावे ।
3. बेइन्द्रिय में इन्द्रिय पावे दो - रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय तेइन्द्रिय मे इन्द्रिय पावे तीन - घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिया चौइन्द्रिय में चार इन्द्रिय पावे - चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय । शेष सभी जीवो में पांचो इन्द्रिय पावे, मनुष्य अनिन्द्रिय भी होते है । 13, 14
4. सिद्ध भगवान मे इन्द्रिया नहीं, अनिद्रिय है ।

9. समुदघात द्वार

सम-एकी भावेन से, उद्-प्रबलता से, घात-बाहर निकलना । वेदना आदि के साथ तन्मय होकर मूल शरीर को बिना छोड़े प्रबलता से आत्म प्रदेशो को बाहर निकाल कर असाता वेदनीय आदि कर्मों का नाश करता है च समुदघात कहलाता है । इसके सात भेद हैं -

1. वेदनीय समुदघात - असाता वेदनीय कर्म के कारण आत्म-प्रदेशो मे स्पन्दन होकर कुछ आत्म - प्रदेशो का शरीरावगाहना से बाहर आ जाना वेदनीय समुदघात हैं । इसके द्वारा उदय प्राप्त असाता वेदनीय कर्म का नाश होता है । साता वेदनीय कर्म का समुदघात नही होता है
2. कषाय समुदघात - तीव्र क्रोधादि कषायो के कारण आत्म-प्रदेशो मे

- स्पन्दन होकर कुछ आत्म-प्रदेशो का शरीरावगाहना से बाहर आ जाना कषाय समुदघात कहलाता है। इसके द्वारा उदय प्राप्त कषाय मोहनीय का नाश होता है। चारों कषायों का समुदघात होता है।
- 3 मारणातिक समुदघात - मृत्यु से अन्तर्मुहूर्त पूर्व उत्पत्ति के स्थान तक लंबा (शरीर प्रमाण चौड़ा एवं मोटा वाला) आत्मप्रदेशो का दंड निकालना, मारणातिक समुदघात कहलाता है।
 - 4 वैक्रिय समुदघात - वैक्रिय रूपों का निर्माण करने हेतु वेक्रिय वर्णना के पुद्गलों को ग्रहण करने के लिए आत्म-प्रदेशो का एक दिशा अथवा विदिशा में संख्यात योजन तक का दण्ड निकालना (मोटाई व चौड़ाई में शरीर प्रमाण-दण्ड होता है) वैक्रिय समुदघात कहलाता है। इसमें वैक्रिय नाम कर्म की क्षपणा होती है।
 - 5 तेजस् समुदघात - शीतल अथवा उष्ण तेजोलेण्या किसी पर डालने हेतु तैजस पुद्गलों को ग्रहण करने के लिये संख्यात योजन तक का एक दिशा अथवा विदिशा में आत्म-प्रदेशो का दंड निकालना (यह भी मोटाई व चौड़ाई में शरीर प्रमाण ही होता है) तैजस समुदघात कहलाता है। इसमें तैजस् नामकर्म की क्षपणा होती है।
 - 6 आहारक समुदघात - जीवदया, ऋद्धि दर्शन, ज्ञान ग्रहण या सशय निवारण हेतु चौदह पूर्वधारी मुनि द्वारा आहारक पुतला बनाने हेतु आहारक वर्णना के पुद्गलों को ग्रहण करने के लिए संख्यात योजन का आत्म - प्रदेशो का दण्ड निकालना (मोटाई व चौड़ाई में शरीर प्रमाण दण्ड होता है) आहारक समुदघात कहलाता है। इसमें आहारक शरीर नामकर्म की क्षपणा होती है।
 - 7 केवली समुदघात - वेदनीय आदि कर्मों को खपाने के लिए चार समयों में आत्म प्रदेशो को समग्र लोक में फैला देना एवं चार समयों में पुनः सकोचित करके शरीरस्थ हो जाना, केवली समुदघात कहलाता है। इसमें आयु से अधिक स्थिति वाले वेदनीय, नाम और गौत्र कर्मों की क्षपणा होती है। जिन महापुरुषों को 6 माह या उससे कम आयु शेष रहने पर केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। उनमें से जिन की आयु कम व वेदनीय आदि कर्मों की स्थिति अधिक होती है, उनकी स्थिति सम करने के लिये केवली समुदघात करते हैं। केवली समुदघात के अन्तर्मुहूर्त बाद अवश्य मोक्ष हो जाता है।

1. नारकी में समुदघात चार-वेदनीय, कषाय, मारणांतिक और वैक्रिय भवनपति से यावत् बारहवें देवलोक तक अनुक्रम से पाच समुदघात पाँवे । नव ग्रेवयक और पाँच अनुत्तर विमान में शक्ति से पाच समुदघात पावे परन्तु करते हैं तीन-वेदनीय, कषाय और मारणान्तिक वैक्रिय और तैजस समुदघात नहीं करते हैं ।
2. चार स्थावर - पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वनस्पतिकाय और असत्री मनुष्य, इन पांचों में समुदघात पावे तीन-वेदनीय, कषाय और मारणांतिक समुदघात । वायुकाय में समुदघात पावे चार वेदनीय, कषाय, मारणांतिक और वैक्रिय ।
3. तीन विकलेन्द्रिय और असत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय में समुदघात पावे तीन - वेदनीय, कषाय और मारणांतिक ।
4. सत्री तिर्यच में समुदघात पावे पाच-वेदनीय, कषाय, मारणान्तिक वैक्रिय और तेजस
5. गर्भज मनुष्य में समुदघात पावे सातों ही -
1. वेदनीय 2. कषाय 3. मारणांतिक 4. वैक्रिय 5. तैजस 6. आहारक 7. केवली ।
6. युगलिक मनुष्य में समुदघात पावे तीन - वेदनीय, कषाय और मारणान्तिक ।
7. सिद्ध भगवान में समुदघात नहीं ।

10. सत्री द्वार

जिसके मन हो उसे संज्ञी और जिसके मन नहीं हो उसे असंज्ञी कहते हैं ।

1. पहली नारकी, भवनपति और वाणयन्तर में सत्री-असत्री दोनों उत्पन्न होते हैं । असत्री कुछ देर असत्री रहकर फिर सत्री हो जाते हैं । दूसरी नारकी से सातवीं नारकी तक, ज्योतिषी से पाच अनुत्तर विमान तक सत्री ही उत्पन्न होते हैं ।
2. पांच स्थावर और असत्री मनुष्य असत्री हैं, सत्री नहीं ।
3. तीन विकलेन्द्रिय और असत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय - ये सभी सत्री नहीं, असत्री हैं । शेष सभी जीव सत्री हैं, असत्री नहीं ।
4. सत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय सत्री ।
5. गर्भज मनुष्य सत्री तथा नौ सत्री नौ असत्री ।
6. युगलिक मनुष्य सत्री ।

सिद्ध भगवान् सत्री - असत्री नहीं, नोसत्री नोअसत्री ।

11. वेद द्वार

नामकर्म के उदय से होने वाले शरीर के स्त्री, पुरुष, नपुसक रूप को द्रव्य वेद , तथा जीव की विषय भोग की अभिलाषा को भाव वेद है । इसके तीन भेद होते हैं -

नारकी में एक नपुसक वेद पावे । भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और पहिले - दूसरे देवलोक में वेद दो-स्त्री वेद, और पुरुष वेद । तीसरे देवलोक से सर्वार्थसिद्ध विमान तक एक पुरुष वेद होता है । पाच स्थावर और असत्री मनुष्य में एक नपुसक वेद होता है । तीन विकलेन्द्रिय और असत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय में एक नपुसक वेद होता है ।

सत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय में तीनों ही वेद पाये जाते हैं ।

गर्भज मनुष्य में तीनों वेद पाये जाते हैं एव अवेदी भी । ११० । ५

युगलिक मनुष्य में दो वेद - स्त्री वेद और पुरुष वेद ।

सिद्ध भगवान् में वेद नहीं, अवेदी है ।

12. पर्याप्ति द्वार

आहारादि के पुदगलो को ग्रहण करने तथा उन्हें शरीरादि रूप में मानने की आत्म शक्ति विशेष को पर्याप्ति द्वार कहते हैं । इसके छह भेद हैं -

नारकी में पर्याप्ति पावे छह और देव में पर्याप्ति, पावे पांच । क्योंकि भाषा और मन ये दोनों पर्याप्तियों शामिल बंधिते हैं ।

पाच स्थावर में चार पर्याप्ति पावे आहार पर्याप्ति शरीर पर्याप्ति इन्द्रिय पर्याप्ति और श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति । असत्री मनुष्य चौथी पर्याप्ति का अपर्याप्ता रहते हुए ही मर जाता है ।

तीन विकलेन्द्रिय और असत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय में पर्याप्ति पावे पाच आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास प्ति और भाषा पर्याप्ति ।

सत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय में छहो पर्याप्ति पाई जाती है ।

गर्भज मनुष्य में छहो पर्याप्ति पाई जाती है ।

युगलिक मनुष्य में छहो पर्याप्ति पाई जाती है ।

सिद्ध भगवान् नोपर्याप्त - नो अपर्याप्त है ।

13. दृष्टि द्वार

तत्त्व विचारणा की रुचि को दृष्टि कहते हैं। इसके तीन भेद होते हैं-

1. सम्यक दृष्टि 2. मिथ्या दृष्टि 3. सम्यग मिथ्या (मिश्र) दृष्टि।

सम्यक दृष्टि - वीतराग देव की वाणी पर अखण्ड श्रद्धा रखने वाला।

मिथ्या दृष्टि - वीतराग वाणी को देशतः या सर्वत मिथ्या मानता है।

सम्यग मिथ्या मिश्र दृष्टि - वीतराग वाणी के प्रति न रुचि हो न अरुचि हो।

1. नारकी और भवनपति से लगा कर त्रैवेयक तक दृष्टि पावे तीनों ही

1. सम्यग् दृष्टि 2. मिथ्या दृष्टि 3. सम्यग् मिथ्या दृष्टि। (मिश्र)

15. परमाधार्मिक 3 किल्बीषी में एक मिथ्या दृष्टि ही होती है। पांच

अनुत्तर विमान में एक सम्यग दृष्टि ही होती है।

2. पांच स्थावर और असत्री मनुष्य में एक मिथ्या दृष्टि।

3. तीन विकलेन्द्रिय और असत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय में दो दृष्टि-सम्यग दृष्टि और मिथ्या दृष्टि।

4. सत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय में तीनों ही दृष्टि पाई जाती है।

5. गर्भज मनुष्य में तीनों ही दृष्टि पाई जाती है।

6. युगलिक मनुष्य में 30 अकर्म भूमि में दो दृष्टि - 1 सम्यग् दृष्टि और

2. मिथ्या दृष्टि और 56 अन्तर्द्विपो में एक मिथ्या दृष्टि।

7. सिद्ध भगवान् में एक सम्यग् दृष्टि।

14. दर्शन द्वार

जिसमें महासत्ता (सामान्य) का प्रतिभास (निराकार झलक) हो, उसको दर्शन कहते हैं। इसके चार भेद हैं -

1. चक्षु दर्शन - नेत्रजन्य मतिज्ञान से पहिले होने वाले सामान्य प्रतिभास, या अवलोकन को चक्षु दर्शन कहते हैं।

2. अचक्षु दर्शन - नेत्र के सिवाय दूसरी इन्द्रियो और मन सम्बन्धी मतिज्ञान के पहिले होने वाले सामान्य अवलोकन को अचक्षु दर्शन कहते हैं।

3. अवधि दर्शन - अवधिज्ञान से पहले होने वाले सामान्य अवलोकन को अवधि दर्शन कहते हैं।

4. केवल दर्शन - केवलज्ञान के उपयोग के बाद होने वाले सामान्य धर्म के अवलोकन (उपयोग) को केवल-दर्शन कहते हैं।

1. नारकी और देवों में दर्शन पावे तीन - चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन।

- 2 पाच स्थावर मे एक अचक्षुदर्शन होता है ।
असत्री मनुष्य मे चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन - ये दो दर्शन हैं ।
- 3 बेइन्द्रिय और तेइन्द्रिय मे एक अचक्षुदर्शन है । चउन्द्रिय और असत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय मे दो दर्शन - चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन ।
- 4 सत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय मे दर्शन पावे तीन - चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन ।
- 5 गर्भज मनुष्य में दर्शन पावे चार - चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन ।
- 6 युगलिक मनुष्य मे दर्शन दो-चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन ।
- 7 सिद्ध भगवान मे एक केवलदर्शन ।

15. ज्ञान - अज्ञान द्वार

किसी विवक्षित पदार्थ के विशेष धर्म को विषय करने वाला बोध ज्ञान कहलाता है । इसके दो भेद है - सम्यग् ज्ञान, मिथ्या ज्ञान ।

सम्यग् ज्ञान के पाँच भेद है - अभिनिबोधिक ज्ञान(मतिज्ञान), श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ।

- 1 **मतिज्ञान** - पाच इन्द्रिय और मन की सहायता से जो ज्ञान हो, उसे मतिज्ञान कहते है ।
- 2 **श्रुतज्ञान** - मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थ से सम्बन्धित किसी दुसरे पदार्थ के ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते है । जैसे - घट शब्द सुनने के अनन्तर उत्पन्न हुआ कबुग्रीवादिरूप घट का ज्ञान ।
- 3 **अवधिज्ञान** - मन व इन्द्रियो की सहायता के बिना द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा लिये हुए जो रुपी पदार्थ को स्पष्ट जाने ।
- 4 **मनः पर्ययज्ञान** - मन व इन्द्रियो की सहायता के बिना द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा लिये हुए जो साधु सज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवो के मन मे रही हुई पर्यायो को स्पष्ट जाने ।
- 5 **केवलज्ञान**-जो त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थो को हस्तामलकवत् स्पष्ट जाने ।

मिथ्याज्ञान के तीन भेद है - 1 मतिअज्ञान 2 श्रुतअज्ञान 3 विभगज्ञान। ये तीन अज्ञान है ।

- 1 नारकी और देवो मे ज्ञान पावे तीन - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान। अज्ञान - नारकी और भवनपति से नवग्रैवेयक तक

- अज्ञान पावे तीन - मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभगज्ञान । पाव अनुत्तर विमान में अज्ञान नहीं होता । ज्ञान पावे तीन ।
2. पांच स्थावर और असत्री मनुष्य में ज्ञान नहीं होता, मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान - ये दो अज्ञान होते हैं ।
 3. तीन विकलेन्द्रिय और असत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय में दो ज्ञान - मतिज्ञान और श्रुतज्ञान तथा दो अज्ञान ।
 4. सत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय में ज्ञान पावे तीन - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान । अज्ञान पावे तीनो ।
 5. गर्भज मनुष्य में ज्ञान पावे पांच मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, केवलज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और अज्ञान पावे तीनो ।
 6. 30 अकर्मभूमि में दो ज्ञान-मतिज्ञान, श्रुतज्ञान । दो अज्ञान मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान । 56 अन्तर्द्वीप में दो अज्ञान । ज्ञान नहीं ।
 7. सिद्ध भगवान में एक केवलज्ञान, अज्ञान नहीं ।

16. योग द्वार

मन, वचन, काया की प्रवृत्ति को योग कहते हैं । इसके 15 भेद हैं - 4 मन के, 4 वचन के और 7 काया के ।

1. नारकी और देवों में योग पावे ग्यारह - 4 मन के, 4 वचन के और 3 काया के (वैक्रिय योग, वैक्रिय मिश्र योग, कर्मण योग)
2. चार स्थावर - पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वनस्पतिकाय और असत्री मनुष्य - इन पांचों में योग पावे तीन - 1. औदारिक योग, 2 औदारिक मिश्र योग, 3. कर्मण काय योग । वायुकाय में योग पावे पांच - 1. औदारिक योग, 2 औदारिक मिश्र योग, 3 वैक्रिय योग, 4 वैक्रिय मिश्र योग और 5. कर्मण काय योग ।
3. तीन विकलेन्द्रिय और असत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय में योग पावे चार-व्यवहार भाषा, औदारिक योग, औदारिक मिश्र योग और कर्मण काय योग ।
4. सत्री तिर्यच में योग पावे 13- चार मन के, चार वचन के और पांच काया के - औदारिक योग, औदारिक मिश्र योग, वैक्रिय योग, वैक्रिय मिश्र और कर्मण काय योग ।
5. गर्भज मनुष्य में पंद्रह ही योग पावे । 4 मन के, 4 वचन के और 7 काया के एवं अयोगी भी होते हैं ।
6. युगलिक मनुष्य में योग पावे ग्यारह - 4 मन के, 4 वचन के और 3

काया के - 1. औदारिक काय योग, 2 औदारिक मिश्र काय योग,
3 कर्मण काय योग ।

7 सिध्द भगवान मे योग नही, अयोगी है ।

17. उपयोग द्वार

ज्ञान और दर्शन में होती हुई आत्म प्रवृत्ति को उपयोग कहते है ।

इसके 12 भेद होते है - 5 ज्ञान के, 3 अज्ञान के, 4 दर्शन के ।

1 नारकी और देवो मे नवग्रैवेयक तक उपयोग पावे नौ- तीन ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शन । पांच अनुत्तर विमान मे उपयोग पावे छह- तीन ज्ञान और तीन दर्शन ।

2 पाच स्थावरों मे उपयोग पावे तीन - मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और अचक्षुदर्शन। असत्री मनुष्य मे उपयोग पावे चार-मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन ।

3 बेइन्द्रिय और तेइन्द्रिय मे उपयोग पावे पाच - दो ज्ञान, दो अज्ञान और एक दर्शन - अचक्षुदर्शन, चौइन्द्रिय और असत्री तिर्यच पचेन्द्रिय मे छह उपयोग - दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन ।

4 सत्री तिर्यच पचेन्द्रिय मे उपयोग पावे नौ - 3 ज्ञान, 3 अज्ञान और 3 दर्शन ।

5 गर्भज मनुष्य मे उपयोग पावे 12 - पाच ज्ञान, तीन अज्ञान, चार दर्शन ।

6 तीस अकर्म भूमि मे उपयोग पावे 6 - दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन । 56 अन्तर्दीपो मे उपयोग पावे चार - दो अज्ञान और दो दर्शन ।

7 सिध्द भगवान् में दो उपयोग-केवलज्ञान और केवलदर्शन ।

18. आहार द्वार

जीव के द्वारा शरीर के निर्माण, धारण अथवा पोषण के लिए ग्रहण किए जाने वाले पुद्गलो को आहार कहते है ।

जीव 288 प्रकार के पुद्गलो का आहार करता है । आहार तीन प्रकार का होता है - सचित्त, अचित्त, मिश्र । प्रकारान्तर से भी आहार के तीन भेद होते है - ओज (शरीर द्वारा), रोम (त्वचा द्वारा), प्रक्षेपाहार (कवल द्वारा) जो ग्रहण किया जाता है ।

1 पाच स्थावर को छोड शेष सभी जीव छहो दिशा से 288 भेद का आहार लेते है ।

2. पांच स्थावर 288 भेदों का आहार लेते हैं। दिशा की अपेक्षाव्याघात हो, तो कदाचित् तीन दिशा का, कदाचित् चार दिशा का और कदाचित् पांच दिशा का। निर्व्याघात की अपेक्षा नियमा छह दिशा का। असत्री मनुष्य आहार लेवे 288 भेद का, जिसमें दिशा की अपेक्षा नियमा छह दिशा का आहार लेवे।
3. गर्भज मनुष्य छहो दिशा से 288 भेदों का आहार लेते हैं, तथा अनाहारक भी होते हैं।
4. सिद्ध भगवान आहारक नहीं, अनाहारक होते हैं।

19. उपपात द्वार

जीव पूर्वभव से आकर उत्पन्न हो, उसे उपपात कहते हैं।

1. नारकी और भवनपति से लगाकर यावत् आठवें देवलोक तक एक समय में ज. 1-2-3 यावत् संख्यात उ. असंख्यात उत्पन्न होवे। नौवें देवलोक से लगाकर यावत् सर्वार्थसिद्ध तक ज. 1-2-3 उ. संख्यात उत्पन्न होवे।
2. चार स्थावर में प्रति समय निरन्तर असंख्यात उपजे और वनस्पतिकाय में प्रति समय अनन्त उपजे। असत्री मनुष्य में ज. 1-2-3 यावत् संख्यात उ. असंख्यात उपजे।
3. तीन विकलेन्द्रिय और असत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय में एक समय में ज. 1-2-3 यावत् संख्यात उत्कृष्ट असंख्यात उत्पन्न होते हैं।
4. सत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय एक समय में ज. 1-2-3 यावत् संख्यात उत्कृष्ट असंख्यात उपजे।
5. गर्भज मनुष्य में उपपात ज. 1-2-3 उ. संख्यात उपजे।
6. युगलिक मनुष्य में ज. 1-2-3 उ. संख्यात उत्पन्न होते हैं।
7. सिद्ध भ. एक समय में ज. 1-2-3 उत्कृष्ट 108 सिद्ध होते हैं।

20. स्थिति द्वार

जीव जितने काल तक जिस भव की पर्याय को धारण करे, उसे स्थिति कहते हैं।

समुच्चय नेरियक एवं देवताओं की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट 33 सागरोपम की।

1. पहली नारकी के नेरिये की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट 1 सागरोपम की।
- दूसरी नारकी की ज. एक सागरोपम उ. 3 सागरोपम की।

तीसरी नारकी की ज 3 सागरोपम उ 7 सागरोपम की ।
 चौथी नारकी की ज 7 सागरोपम उ 10 सागरोपम की ।
 पाचवी नारकी की ज 10 सागरोपम उ 17 सागरोपम की ।
 छठी नारकी की ज. 17 सागरोपम उ 22 सागरोपम की ।
 सातवी नारकी की ज. 22 सागरोपम उ 33 सागरोपम की ।
 भवनपति देव की असुरकुमार जाति के दो इन्द्र है - चमरेन्द्रजी और बलिन्द्रजी ।

चमरेन्द्र के रहने की चमरचंचा राजधानी, जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से दक्षिण दिशा में अधोलोक में है । बलिन्द्रजी के रहने की बलिचंचा राजधानी जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से उत्तर दिशा में अधोलोक में है । चमरेन्द्रजी के भवनवासी देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट एक सागरोपम और उनकी देवी की स्थिति ज दस हजार वर्ष उ साढ़े तीन पत्योपम की । शेष नौ जाति के दक्षिण दिशा के भवनपति देवों की स्थिति ज दस हजार वर्ष उत्कृष्ट डेढ़ पत्योपम और उनकी देवी की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट पौन पत्योपम । बलिन्द्रजी के भवनवासी देवों की स्थिति ज. दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट एक सागरोपम झाड़ोरी । उनकी देवियों की स्थिति ज दस हजार वर्ष उत्कृष्ट साढ़े चार पत्योपम । शेष नौ जाति के उत्तर दिशा वाले भवनपति देवों की स्थिति ज दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट देशोन दो पत्योपम । उनकी देवी की स्थिति ज दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट देशोन एक पत्योपम । वाणव्यन्तर देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट एक पत्योपम । उनकी देवी की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट अर्ध पत्योपम ।

ज्योतिषी देवों की स्थिति इनके पांच भेद

1 चन्द्र 2 सूर्य 3 ग्रह 4 नक्षत्र और 5 तारा ।

चन्द्र - विमानवासी देवों की स्थिति ज पाव पत्योपम, उ 1 पत्योपम, और 1 लाख वर्ष । उनकी देवियों की स्थिति ज पाव पत्योपम उ आधा पत्योपम और 50 हजार वर्ष ।

सूर्य - विमानवासी देवों की स्थिति ज पाव पत्योपम उ 1 पत्योपम, और एक हजार वर्ष । उनकी देवियों की स्थिति ज पाव पत्योपम, उत्कृष्ट आधा पत्योपम और 500 वर्ष ।

ग्रह - विमानवासी देवों की स्थिति ज 1 पत्योपम, उत्कृष्ट एक पत्योपम ।

उनकी देवियों की स्थिति ज पाव पत्योपम, उ आधा पत्योपम।
नक्षत्र-विमानवासी देवों की स्थिति ज पाव पत्योपम उ आधा पत्योपम
और उनकी देवियों की स्थिति ज पाव पत्योपम उ. पाव पत्योपम
झाड़ोरी ।

तारा -विमानवासी देवों की स्थिति ज. पत्योपम के आठवे भाग, उ पाव
पत्योपम । उनकी देवियों की स्थिति ज. पत्योपम के आठवे भाग,
उ पत्योपम के आठवें भाग झाड़ोरी ।

वैमानिक देवों की स्थिति

पहिले देवलोक के देवों की स्थिति ज. एक पत्योपम, उ दो सागरोपम ।
उनकी देवियां दो प्रकार की है -

1 परिगृहिता और 2. अपरिगृहिता । परिगृहिता देवियों की स्थिति ज
एक पत्योपम, उ 7 पत्योपम । अपरिगृहिता देवियों की स्थिति ज
एक पत्योपम, उ. 50 पत्योपम ।

दूसरे देवलोक के देवों की स्थिति ज. 1 पत्योपम झाड़ोरी, उ 2
सागरोपम झाड़ोरी । उनकी देवियां दो प्रकार की है - परिगृहिता और
अपरिगृहिता। परिगृहिता देवियों की स्थिति ज. एक पत्योपम झाड़ोरी।
उ 9 पत्योपम । अपरिगृहिता देवियों की स्थिति ज एक पत्योपम
झाड़ोरी उ 55 पत्योपम ।

तीसरे देवलोक के देवों की स्थिति ज 2 सागरोपम उ 7 सागरोपम।
चौथे देवलोक के देवों की स्थिति ज 2 सागरोपम झाड़ोरी, उ. 7
सागरोपम झाड़ोरी ।

पांचवे देवलोक के देवों की स्थिति ज 7 सा उ 10 सा ।

छठे देवलोक के देवों की स्थिति ज 10 सा उ. 14 सा ।

सातवें देवलोक के देवों की स्थिति ज 14 सा. उ. 17 सा ।

आठवें देवलोक के देवों की स्थिति ज. 17 सा उ 18 सा ।

नौवें देवलोक के देवों की स्थिति ज 18 सा. उ 19 सा. ।

दसवें देवलोक के देवों की स्थिति ज. 19 सा उ 20 सा. ।

ग्यारहवें देवलोक के देवों की स्थिति ज. 20 सा उ 21 सा ।

बारहवें देवलोक के देवों की स्थिति ज. 21 सा, उ 22 सा ।

पहले त्रैविक के देवों की स्थिति ज 22 सा उ 23 सा. ।

दूसरे त्रैविक के देवों की स्थिति ज. 23 सा उ. 24 सा ।

तीसरे त्रैविक के देवों की स्थिति ज. 24 सा. उ. 25 सा ।

- चौथे त्रैव्यक के देवों की स्थिति ज 25 सा उ 26 सा ।
 पांचवें त्रैव्यक के देवों की स्थिति ज 26 सा उ 27 सा ।
 छठे त्रैव्यक के देवों की स्थिति ज 27 सा उ 28 सा ।
 सातवें त्रैव्यक के देवों की स्थिति ज 28 सा उ 29 सा ।
 आठवें त्रैव्यक के देवों की स्थिति ज 29 सा उ 30 सा ।
 नौवें त्रैव्यक के देवों की स्थिति ज 30 सा उ 31 सा ।
 चार अनुत्तर विमान के देवों की स्थिति ज 31 सा उ 33 सा ।
 सर्वार्थसिद्ध देवों की स्थिति अजघन्य अनुत्कृष्ट 33 सागरोपम ।
- 2 पृथ्वीकाय की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त की, उ 22000 वर्ष है ।
 अप्काय की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त की, उ 7000 वर्ष की ।
 तेउकाय की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त की, उ तीन अहोरात्रि ।
 वायुकाय की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त की, उ 3000 वर्ष की ।
 वनस्पतिकाय की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त की, उ 10,000 वर्ष की ।
 असन्नी मनुष्य की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की ।
- 3 बेइन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट 12 वर्ष ।
 तेइन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट 49 अहोरात्रि ।
 चौइन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट छह महीने ।
 असन्नी तिर्यच पचेन्द्रिय के पाच भेद -
 जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प ।
 जलचर की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त, उ एक करोड पूर्व ।
 स्थलचर की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त, उ 84 हजार वर्ष ।
 खेचर की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त, उ 72 हजार वर्ष ।
 उरपरिसर्प की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त, उ 53 हजार वर्ष ।
 भुजपरिसर्प की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त, उ 42 हजार वर्ष ।
- 4 सन्नी तिर्यच पचेन्द्रिय की स्थिति
 जलचर की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट एक करोड पूर्व ।
 स्थलचर की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन पत्योपम ।
 खेचर की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त, उ पत्योपम के असख्यातवेभाग ।
 उरपरिसर्प की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त, उ एक करोड पूर्व ।
 भुजपरिसर्प की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त, उ एक करोड पूर्व ।
- 5 गर्भज मनुष्य की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त, उ तीन पत्योपम ।
 काल की अपेक्षा अवसर्पिणी काल में - गर्भज मनुष्य की स्थिति -
 पहले आरे के आरम्भ में 3 पत्योपम ।

पहले उतरते और दूसरा लगते 2 पत्योपम ।
 दूसरा उतरते और तीसरा लगते 1 पत्योपम ।
 तीसरा उतरते और चौथा लगते 1 करोड पूर्व ।
 चौथा उतरते और पांचवां लगते एक सौ वर्ष झाड़ोरी ।
 पांचवां उतरते, छठा लगते 20 वर्ष ।
 छठा आरा उतरते 16 वर्ष ।

यह उत्कृष्ट स्थिति बतलाई है । तीसरे आरे तक के मनुष्यो की जघन्य स्थिति उत्कृष्ट से देशउणी होती है । शेष आरे मे ज.अन्तर्मुहूर्त की। उत्सर्पिणी काल में इससे उलटी होती है ।

6. युगलिक मनुष्य की स्थिति -

5 देवकुरु 5 उतरकुरु की स्थिति तीन पत्योपम ।
 5 हरिवास 5 रम्यक्वास की स्थिति दो पत्योपम ।
 5 हेमवत 5 हैरण्यवत की स्थिति एक पत्योपम ।
 56 अन्तर्द्वीप की स्थिति पत्योपम के असंख्यातवे भाग । इनमेंजघन्य स्थिति कुछ कम होती है और उत्कृष्ट पूर्ण होती है ।

7. सिध्द भगवान् की स्थिति - एक सिध्द भगवान की अपेक्षा सादिअनत और सभी सिध्द भगवतो की अपेक्षा अनादि अनंत ।

21. समोहया असमोहया मरण द्वार

जो ईलिका गति समुदघात करके मरे अर्थात्, कीडी की कतार की तरह जीव के प्रदेश अलग-अलग निकले, उसे समोहयामरण कहते हैं एवं जो गेद (दडी) की गति से समुदघात करके मरे अथवा बन्दूक की गोली की तरह जीव के प्रदेश एक साथ निकलें उसे असमोहयामरण कहते हैं ।

1. 24 दण्डक के जीव दोनों प्रकार के मरण से मरते हैं ।
2. सिध्द भगवान मे मरण नहीं ।

22. च्यवन द्वार

जीव वर्तमान भव को छोडकर अन्य भव की पर्याय को धारण करे उसे च्यवन कहते हैं ।

1. नारकी और भवनपति देव से लगाकर आठवें देवलोक तक एक समय में ज.1-2-3 यावत् संख्यात उत्कृष्ट असंख्यात च्यवे । नौवे देवलोक से लगाकर सर्वार्थसिध्द विमान तक एक समय मे ज 1-2-3 उत्कृष्ट संख्यात च्यवे ।
2. चार स्थावर में प्रति समय असंख्यात च्यवे ।
 वनस्पतिकाय में प्रति समय अनन्त च्यवे ।

- असत्री मनुष्य मे ज. 1-2-3 यावत् सख्याता उत्कृष्ट असख्याता च्यवे ।
- 3 विकलेन्द्रिय और असत्री तिर्यच पचेन्द्रिय मे एक समय मे जघन्य 1-2-3 यावत् सख्यात उत्कृष्ट असख्यात च्यवे ।
- 4 सत्री तिर्यच पचेन्द्रिय एक समय मे ज. 1-2-3 यावत् सख्यात, उत्कृष्ट असख्यात च्यवे ।
- 5 गर्भज मनुष्य ज 1-2-3 उ सख्यात च्यवे ।
- 6 युगलिक मनुष्य ज 1-2-3 उ सख्यात च्यवे ।
- 7 सिध्द भगवान मे च्यवन (मरण) नही ।

23. गति-आगति द्वार

जीव मरकर भवान्तर में जावे उसे गति एव भवान्तर से आकर उत्पन्न होने को आगति कहते है ।

- 1 पहली नारकी से लगाकर 6 नारकी तक दो गतियों से आवे और दो गतियों मे जावे - तिर्यचगति और मनुष्यगति । दण्डक की अपेक्षा दो दण्डक से आवे और दो दण्डक मे जावे (20-21) वाँ तिर्यच पचेन्द्रिय और मनुष्य दण्डक । सातवी नारकी मे दो गतियों से आवे तिर्यचगति और मनुष्यगति से और एक तिर्यचगति में जावे । दण्डक की अपेक्षा दो दण्डको से आवे (20-21) वा दण्डक और एक तिर्यच पचेन्द्रिय (20वा दण्डक)मे जावे । भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और पहिले दूसरे देवलोक के देव, दो गतियों से आवे और दो गतियों मे जावे - तिर्यचगति और मनुष्यगति । दण्डक की अपेक्षा दो दण्डक से आवे, तिर्यच पचेन्द्रिय से और मनुष्य से और पाच दण्डक मे जावे पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय, तिर्यच पचेन्द्रिय और मनुष्य मे । तीसरे देवलोक से लगाकर आठवे देवलोक तक दो गति से आवे एव दो गति मे जावे (मनुष्य एव तिर्यच) एव दण्डक की अपेक्षा दो दण्डक से आवे, दो दण्डक (मनुष्य तिर्यच) पचेन्द्रिय मे जावे । नौवे देवलोक से लगाकर सर्वार्थसिध्द विमान के देव एक मनुष्य गति से आवे और उसी गति मे जावे । दण्डक की अपेक्षा एक दण्डक (21 वा) से आवे और एक दण्डक (21 वा) मे जावे - मनुष्य का दण्डक ।
- 2 पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय मे तीन गति से आवे तिर्यचगति, मनुष्यगति और देवगति से और दो गति मे जावे तिर्यचगति और मनुष्यगति मे । दण्डक की अपेक्षा 23 दण्डक से आवे (10 भवनपति, 5 स्थावर, 3 विकलेन्द्रिय, 1 तिर्यच पचेन्द्रिय, 1 मनुष्य, 1 वाणव्यन्तर, 1 ज्योतिषी 1 वैमानिक से) और दस दण्डक मे जावे

- (5 स्थावर, 3 विकलेन्द्रिय, 1 तिर्यच पंचेन्द्रिय, 1 मनुष्य में) ।
 तेउकाय और वायुकाय मे दो गति से आवे (तिर्यच और मनुष्य गति से) और एक तिर्यचगति में जावे । दण्डक की अपेक्षा दस दण्डक से आवे (औदारिक का दस दण्डक उपरोक्त) 9 दण्डक मे जावे (5 स्थाव, 3 विकलेन्द्रिय और 1 तिर्यच पंचेन्द्रिय में) और असत्री मनुष्य दो गति से आवे - तिर्यचगति और मनुष्यगति से, और दो गति मे जावे - तिर्यचगति और मनुष्यगति मे ।
 दण्डक की अपेक्षा आठ दण्डक से आवे (एक पृथ्वीकाय, 1 अप्काय, 1 वनस्पतिकाय, 3 विकलेन्द्रिय, 1 तिर्यच पंचेन्द्रिय, 1 मनुष्य से) दस दण्डक में जावे - उपरोक्त औदारिक मे ।
- 3 तीन विकलेन्द्रिय में दो गति से आवे और दो गति मे जावे तिर्यचगति और मनुष्यगति । दण्डक ती अपेक्षा दस दण्डक से आवे और दस दण्डक मे जावे । दस दण्डक औदारिक के हैं । असत्री तिर्यच मे दो गति से आवे- तिर्यचगति और मनुष्यगति से और चार गति मे जावे नरक, तिर्यच, मनुष्य और देवगति में और दण्डक की अपेक्षा दस दण्डक से आवे - (दस दण्डक औदारिक के) और 22 दण्डक मे जावे (1 नारकी, 10 भवनपति, 1 वाणव्यन्तर, 5 स्थावर, 3 विकलेन्द्रिय, 1 तिर्यच पंचेन्द्रिय और 1 मनुष्य) ।
 - 4 सत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय चारो गति और 24 दण्डक से आते है और चारो गति चौबीस दण्डक में जाते हैं ।
 5. गर्भज मनुष्य - आगति - चारो गति और 22 दण्डक से आते है (तेउकाय व वायुकाय छोडकर) । गति 1. चारो गति और दण्डक 24 मे जाते है और 2. सिध्द गति में भी जाते हैं ।
 6. युगलिक मनुष्य - आगति 2 तिर्यच और मनुष्यगति से आते है । गति - एक देवगति ।
 दण्डक की अपेक्षा - तीस अकर्मभूमि की आगति - दो दण्डक से मनुष्य और तिर्यच से । गति दण्डक 13 मे - 10 भवनपति, 1 वाणव्यन्तर, 1 ज्योतिषी और 1 वैमानिक में ।
 छप्पन अर्न्तद्वीपों मे 2 दण्डक से आवे (तिर्यच पंचेन्द्रिय व मनुष्य और 11 दण्डक मे - 10 भवनपति और 1 व्यन्तर मे जावे ।
 - 7 सिध्द भगवान् मे आगति एक मनुष्यगति और एक दण्डक से और गति नहीं ।

24 प्राण द्वार

जीवन के आधारभूत पदार्थों को अर्थात् जिनके सद्भाव से जन्म

जिसे शरीर के सात बंध रहे उसे प्राण कहते हैं - इसके दस भेद हैं -

1. नसरी और देवी में प्राण पावे दस
2. पांच स्थावर में प्राण पावे चार (स्पर्शान्द्रिय बलप्राण, श्रोत्रोद्भूत प्राण, वासोच्छ्वास बलप्राण और अणुष्य बलप्राण) असत्री मनुष्य में प्राण पावे कुछ कम (जन्मा) आठ - पांच इन्द्रिय के बलप्राण, जल, वासोच्छ्वास बलप्राण और अणुष्य बलप्राण ।
3. वैद्विज्य में प्राण पावे छह - रसनैन्द्रिय बलप्राण, स्पर्शान्द्रिय बलप्राण, वचन बलप्राण, काय बलप्राण, वासोच्छ्वास बलप्राण और अणुष्य बलप्राण ।
- तैद्विज्य में प्राण पावे सात-घ्राणैन्द्रिय बलप्राण और छह पूर्वोक्त
- चौरिन्द्रिय में प्राण पावे आठ - चक्षुरिन्द्रिय बलप्राण और सात पूर्वोक्त
- असत्री तिर्यचपंचेन्द्रिय में प्राण पावे नव - श्रोत्रैन्द्रिय बल प्राण और आठ पूर्वोक्त ।
4. सत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय में प्राण पावे दसों ही-ननोबल प्राण और नव पूर्वोक्त ।
5. गर्मज ननुष्य युगलिक ननुष्य में प्राण पावे दस ।
6. सिध्द भगवान में द्रव्य प्राण नहीं भाव प्राण चार है (ज्ञान, दर्शन, सुख और आत्मशक्ति)

25 योग द्वार

मन, वचन, काया की शुभाशुभ प्रवृत्ति को योग कहते हैं ।

योग तीन - 1, मनयोग 2 वचन योग 3 काययोग । इनमें से

1. पांच स्थावर और असत्री मनुष्य में योग पावे एक - वाययोग ।
2. तीन विकलेन्द्रिय और असत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय में योग पावे दो वचनयोग और काययोग ।
3. शेष सभी जीवों में योग पावे तीनों । मनुष्य अयोगी भी होते हैं ।
4. सिध्द भगवान में योग नहीं, अयोगी है ।

लघु दण्डक समाप्त

२. गतागत का थोकाड़ा

(प्रज्ञापना सूत्र के छठे पद के आधार से)

जीवों की आगति और गति का वर्णन किया जाता है।

आगति - जीव जिस गति से आकर उत्पन्न होता है।

गति - जीव मरने के बाद जिस गति में जाकर उत्पन्न होता है।

अपेक्षा भेद से जीव के एक, दो, तीन, चार आदि अनेक भेद होते हैं। किसी अपेक्षा से 563 भेद भी हैं। ये इस प्रकार हैं - नारकियों के 14, तिर्यच के 48, मनुष्यों के 303 और देवों के 198। (विशेष खुल्लासा जीव धड़ा में देखें)।

गति आगति के विशेष बिन्दु :

1. नारकी, देवता, युगलिक अपर्याप्त अवस्था में नहीं मरते।
2. नारकी जीव मरकर नरक, देव, युगलिक, एके, बे, ते, चऊ, तथा असत्री पं. में उत्पन्न नहीं होते।
3. देवता मरकर देव, नरक, युगलिक, बे.ते. चऊ तथा तेऊ, वाऊ में नहीं जाते।
4. एके बे, ते, चऊ, जीव नारकी देवता में उत्पन्न नहीं होते। नारकी, देवता में जाने वाले पंचेन्द्रिय ही होते हैं।
5. नरक, देव, युगलिक में मात्र दो गति के जीव आते हैं। मनुष्य एवं तिर्यच पंचेन्द्रिय।
6. असत्री मनुष्य अपर्याप्त अवस्था में ही काल करता है। इसलिए नारकी देवता में नहीं जाता।
7. असत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय पहली नारकी तक तथा देवता में 25 भवनपति 26 वाणव्यन्तर तक ही जाते हैं।
8. सत्री भुजपरिसर्प (चूहा, छिपकली, नेवला आदि) 1,2, नरक तक ही जाते हैं।
9. सत्री खेचर तिर्यच (चिड़िया, कबूतर, कौवा आदि) 1,2,3 नरक तक ही जाते हैं।
10. सत्री स्थलचर (शेर, गाय, कुत्ता) आदि जो अपने बच्चों को स्तनपान कराते हैं वे, 1,2,3,4 नरक तक ही जाते हैं।
11. सत्री उरपरिसर्प (सभी सर्प की जाति) 1,2,3,4,5 नरक तक ही जाते हैं।

- 12 जलचर स्त्री 6 ठी नरक तक तथा जलचर पुरुष, नपु सातवी नरक तक जाते ।
- 13 सत्री ति पचे, 8 वे देवलोक तक जा सकता है, तथा 8 वे देवलोक तक के देवता सत्री ति पचे मे आ सकते है । आगे नहीं ।
- 14 तेऊ, वायु एवं 7 वी नरक के जीवो की नियमा तिर्यच गति
- 15 वासुदेव, चक्रवर्ती, श्री देवी की नियमा नरक गति ।
- 16 9 वे देवलोक से सर्वाथसिध्द देवो की नियमा मनुष्य गति ।
- 17 साधु, श्रावक एवं युगलिक की नियमा देवगति ।
- 18 तीर्थकर भगवान् पहले मुनि बन के निर्वाण प्राप्त करते है ।
- 19 केवली भगवान पहले मुनि बनते भी है, नहीं भी लेकिन सामायिक चारित्र के परिणाम, सूक्ष्म सपराय तथा यथाख्यात चारित्र अवश्य प्राप्त करते है ।
- 20 चक्रवर्ती की गति यह सदेश देती है कि पद लिप्सा अधोगति का कारण है ।
- 21 1 ली नारकी से आया जीव चक्रवर्ती बन सकता है ।
- 22 1, 2 री,,,, बलदेव, वासुदेव ।
- 23 1,2,3, री,,,, तीर्थकर ।
- 24 1,2,3,4, थी,,,,केवली ।
- 25 1,2,3,4,5 वी,,,, साधु ।
- 26 1,2,3,4,5,6 ठी,,,, श्रावक ।
- 27 1,2,3,4,5,6,7 वी,,,, सम्यग् दृष्टि बन सकता है ।

1. पहली नारकी मे आगति 25 की है । यथा - 15 कर्मभूमिज मनुष्य, 5 सज़ी तिर्यच और 5 असज़ी तिर्यच पचेन्द्रिय, इन सब के पर्याप्त । इन 25 स्थानो से आकर जीव, पहली नरक मे उत्पन्न होते है । गति 40 की - 15 कर्मभूमिज मनुष्य और 5 सज़ी तिर्यच । इन 20 के पर्याप्त और 20 अपर्याप्त ।

2. दूसरी नारकी मे आगति 20 की - 15 कर्मभूमिज मनुष्य और 5 सज़ी तिर्यच के पर्याप्त । गति 40 की पहली नारकी के समान ।

3. तीसरी नारकी मे आगति 19 की - दूसरी नारकी के 20 भेदो मे से भुजपरिसर्प को छोडकर । गति 40 की पहली नारकी के समान ।

4. चौथी नारकी मे आगति 18 की तीसरी नारकी के 19 भेदो मे खेचर को छोडकर । गति 40 की - पहली नारकी के समान ।

5. पांचवी नारकी मे आगति 17 की - चौथी नारकी के 18

से स्थलचर को छोड़कर । गति 40 की ।

6. छठी नारकी में आगति 16 की - पांचवी नारकी के 17 भेदों में से उरपरिसर्प को छोड़कर । गति 40 की ।

7. सातवीं नारकी में आगति 16 की - 15 कर्मभूमिज मनुष्य और 1 मत्स्य जलचर के पर्याप्त गति 10 की - 5 संज्ञी तिर्यच के पर्याप्त और 5 अपर्याप्त ।

8. भवनपति वाणव्यन्तरदेव में आगति 111 की - 101 संज्ञी मनुष्य, 5 संज्ञी तिर्यच और 5 असंज्ञी तिर्यच पंचेन्द्रिय के पर्याप्त । गति 46 की - 15 कर्मभूमिज, 5 संज्ञीतिर्यच, 1 बादर पृथ्वीकाय, 1 बादर अप्काय और 1 बादर प्रत्येक वनस्पतिकाय । इन 23 के पर्याप्त और अपर्याप्त कुल 46 ।

9. ज्योतिषी और पहले देवलोक में आगति 50 की - 15 कर्मभूमिज मनुष्य, 30 अकर्मभूमिज और 5 संज्ञी तिर्यच के पर्याप्त । गति 46 की - भवनपति के सामान ।

10. दूसरे देवलोक में आगति 40 की - 30 अकर्मभूमिज में से 5 हैमवत और 5 हैरण्यवत के 10 भेद छोड़कर 20 तथा 15 कर्मभूमिज मनुष्य और 5 संज्ञी तिर्यच । गति 46 की भवनपति के सामान ।

11. पहले कित्विषी में आगति 30 की - 15 कर्म भूमिज मनुष्य, 5 संज्ञी तिर्यच, 5 देवकुरु और 5 उत्तरकुरु । गति 46 की भवनपति के समान ।

12. तीसरे देवलोक से आठवें देवलोक तक छः, नौ लोकातिक और दूसरे व तीसरे कित्विषी, इन सतरह प्रकार के देवों में आगति 20 की - 15 कर्मभूमिज मनुष्य और 5 संज्ञी तिर्यच पंचे. के पर्याप्त । गति 40 की - 15 कर्मभूमि के मनुष्य और 5 संज्ञी तिर्यच के पर्याप्त ।

13. नौवें से बारहवें देवलोक, नवग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमान, इन अष्टारह जाति के देवों में आगति 15 की - 15 कर्मभूमि के पर्याप्त मनुष्य की । गति 30 की - 15 कर्मभूमि के पर्याप्त और अपर्याप्त मनुष्य ।

14. पृथ्वी, जल और वनस्पति में आगति 243 की - 101 सम्मूर्च्छिम (अपर्याप्त) मनुष्य, 30 (पंद्रह कर्मभूमि के पर्याप्त - अपर्याप्त) मनुष्य, 48 तिर्यच, 64 देव (25 भवनपति, 26 वाणव्यन्तर, 10 ज्योतिषी, पहला व दूसरा देवलोक के और पहला कित्विषी के पर्याप्त) गति 179 की - 101 सम्मूर्च्छिम (अपर्याप्त) मनुष्य, 15 कर्मभूमि के पर्याप्त और 15 अपर्याप्त तथा 48 तिर्यच ।

15. तेजस्काय और वायुकाय में आगति - 179 की - ऊपर लिखे

अनुसार गति 48 तिर्यचो की ।

16. तीन विकलेन्द्रिय मे आगति - 179 की और गति 179 की पूर्ववत् ।

17. असङ्गी तिर्यच पचेन्द्रिय में आगति - 179 भेदो का पूर्ववत् ।

गति 395 की - 56 अन्तरद्वीप के मनुष्य, 25 भवनपति के और 26 व्यन्तर के (यों कुल 51 जाति के देव) और पहली नारकी, इन 108 के पर्याप्त, अपर्याप्त 216 और 179 पूर्व कहे हुए । इस प्रकार 395 ।

18. पांच सङ्गी तिर्यच में आगति 267 की - 81 प्रकार के देव (ऊपर के चार देवलोक, नौग्रेवेयक, पाच अनुत्तर विमान - इन 18 को छोड़कर) 7 नारकी के पर्याप्त और पहले कहे हुए 179 भेद, ये सब मिलाकर 267 भेद हुए । इन पाचो की गति भिन्न-भिन्न इस प्रकार है -

जलचर की गति - 527 की - 563 भेदो मे से नौवे देवलोक से सर्वार्थसिध्द तक के 18 जाति के देव के पर्याप्त और अपर्याप्त - ये 36 कम करने से शेष बचे हुए 527 ।

उरपरिसर्प की गति - 523 की 527 भेदो मे से छठी और सातवी नारकी का पर्याप्त और अपर्याप्त - ये 4 छोड़कर ।

स्थलचर की गति - 521 की - 523 मे से पाचवी नारकी का पर्याप्त और अपर्याप्त - ये 2 छोड़कर ।

खेचर की गति - 519 भेद की - 521 मे से चौथी नारकी के पर्याप्त और अपर्याप्त - ये 2 छोड़कर ।

भुजपरिसर्प की गति - 517 भेद की - 519 मे से तीसरी नारकी के पर्याप्त और अपर्याप्त - ये 2 छोड़कर ।

19. असङ्गी मनुष्य मे आगति - 171 भेद की । पहले कहे हुए 179 भेदो मे से तेउकाय और वायुकाय के 8 भेद कम करके शेष बचे हुए । गति 179 भेद की पूर्ववत् ।

20. पद्मह कर्मभूमि के सङ्गी मनुष्य में आगति 276 भेद की । 171 पूर्ववत् (असङ्गी मनुष्य की आगति के समान) 99 जाति के देव और 6 पहली से छठी नारकी के पर्याप्त । गति 563 की ।

21. तीस अकर्मभूमि के सङ्गी मनुष्य की आगति 20 की - 15 कर्मभूमि और 5 सङ्गी तिर्यच इन 20 के पर्याप्त । उनकी गति भिन्न - भिन्न है ।

पाच देवकुरु और पाच उत्तरकुरु - इन दस क्षेत्रो के मनुष्यो की गति 1 की 64 प्रकार के देव (25 भवनपति, 26 वाणव्यन्तर, 10 ज्योतिषी, 2 व पहला कित्विषी) के पर्याप्त और अपर्याप्त ।

पांच हरिवास और पांच रम्यकवास, इस दस क्षेत्रों के मनुष्यों की गति 126 की। 128 में से पहले किल्बिषी के पर्याप्त और अपर्याप्त छोड़कर।

पांच हैमवत और पांच हैरण्यवत, इन दस क्षेत्रों के मनुष्यों की गति 124 की। 126 में से दूसरे देवलोक के पर्याप्त और अपर्याप्त छोड़कर।

22. छप्पन अन्तरद्वीपों में आगति 25 की - 15 कर्मभूमिज मनुष्य, 5 संज्ञी तिर्यच और 5 असंज्ञी तिर्यच के पर्याप्त। गति 102 की - 25 भवनपति और 26 वाणव्यन्तर। इन 51 के पर्याप्त और 51 अपर्याप्त।

23. तीर्थकर की आगति 38 की - 35 वैमानिकों के (12 देवलोक, 9 लोकान्तिक, 9 ग्रैवेयक व 5 अनुत्तर विमान) और प्रथम 3 नारकी के पर्याप्त। गति - मोक्ष की।

24. चक्रवर्ती की आगति 82 की - 99 जाति के देवों में से 15 परमाधामी और 3 किल्बिषी, इन 18 को छोड़कर शेष बचे हुए 81 देव और पहली नारकी के पर्याप्त। गति 14 की - 7 नरक के पर्याप्त और अपर्याप्त (यदि दीक्षा लेवे तो साधु की गति के समान)।

25. वासुदेव की आगति 32 की - 12 देवलोक, 9 लोकान्तिक 9 ग्रैवेयक और पहली व दूसरी नारकी के पर्याप्त, इस प्रकार 32। गति 14 की - सात नरक के पर्याप्त और अपर्याप्त।

26. बलदेव की आगति 83 की - चक्रवर्ती वत् 82 और दूसरी नारकी से। गति - पदवी अमर (देवलोक या मोक्ष) क्योंकि बलदेव नियमा साधुपना स्वीकार करते हैं अतः साधु की गति के समान।

27. केवली की आगति 108 की - 99 जाति के देवों में से 15 परमाधामी और 3 किल्बिषी निकालकर, शेष 81, 15 कर्मभूमिज मनुष्य, 5 संज्ञी तिर्यच, 1 बादर पृथ्वी, 1 बादर पानी, 1 प्रत्येक बादर वनस्पति और पहले की चार नरक। इस प्रकार 108 के पर्याप्त। गति मोक्ष की।

28. साधु की आगति 275 की - 171 पूर्वोक्त (असंज्ञी मनुष्य की आगति नं. 19 वत्) 99 प्रकार के देव और प्रथम 5 नारकी के पर्याप्त, इस प्रकार 275। गति 70 भेद की। 12 देवलोक, 9 लोकान्तिक, 9 ग्रैवेयक और 5 अनुत्तर विमान के देव। इन 35 के पर्याप्त और अपर्याप्त 70 और मोक्ष भी।

29. श्रावक की आगति 276 की - पूर्वोक्त 275 और छठी नरक। गति 42 की - 12 देवलोक, 9 लोकान्तिक, इन 21 जाति के देवों के पर्याप्त और अपर्याप्त।

30. सम्यग्दृष्टि की आगति 363 की - 99 प्रकार के देव 101 संज्ञी मनुष्य के पर्याप्त, 101 सम्मूर्छिम मनुष्य, 15 कर्मभूमिज मनुष्य, 5

अपर्याप्त, 7 नारकी के पर्याप्त और तेजस्काय, वायुकाय के 8 भेदों को छोड़कर शेष रहे हुए 40 भेद तिर्यच के, सभी मिलाकर 363। गति 282 भेद की - 81 जाति के देवता, 15 कर्मभूमिज मनुष्य, 30 अकर्मभूमिज मनुष्य, 5 सजी तिर्यच और 6 नारकी, इन 137 के पर्याप्त और अपर्याप्त, इस प्रकार 274 तथा 3 विकलेन्द्रिय और 5 असजी तिर्यच पचेन्द्रिय के अपर्याप्त।

31. मिथ्यादृष्टि की आगति 371 की - 363 पूर्वोक्त तथा 8 तेज वायु के। गति 553 की - 563 में से 5 अनुत्तर विमान के पर्याप्त और अपर्याप्त ये 10 छोड़कर।

32. मांडलिक राजा की आगति 276 की - श्रावक के भेदों के अनुसार। गति 535 की 563 में से 9 त्रैवेयक 5 अनुत्तर विमान इन 14 के पर्याप्त - अपर्याप्त के 28 भेदों को निकालकर शेष रहे हुए।

33. स्त्रीवेद की आगति 371 की - मिथ्यादृष्टि के अनुसार। गति 561 की (सातवीं नरक के पर्याप्त, अपर्याप्त छोड़कर)

34. पुरुष वेद की आगति 371 की - स्त्रीवेद की आगति के अनुसार। गति 563 की।

35. नपुंसक वेद की आगति 285 की - 179 पहले कहे हुए, 99 प्रकार के देव पर्याप्त, 7 नारकी के पर्याप्त - ये 285 तथा गति 563 की।

36. गर्भज जीव की आगति 285 की नपुंसक वेदवत्। गति 563।

37. नोगर्भज जीवों की आगति 329 की 179 की लड़ी, 64 जाति के देवता (दूसरे देवलोक तक) 86 युगलिक। गति - 395 की। असजी तिर्यच पचेन्द्रियवत्।

३. जीव घटा

जीव के 563 भेद हैं - यथा

नारकी के 14 भेद - सात नारकी के अपर्याप्त और पर्याप्त ।

तिर्यच के ४८ भेद

22 पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय - इन चार प्रकार के स्थावर जीवों के प्रत्येक के सूक्ष्म और बादर तथा दोनों के अपर्याप्त और पर्याप्त - ऐसे चार भेदों से कुल 16 भेद हुए । वनस्पतिकाय के सूक्ष्म, साधारण और प्रत्येक - इन तीन के अपर्याप्त और पर्याप्त ये 6 भेद हुए । इस प्रकार पांच स्थावर के कुल 22 भेद हुए ।

6 बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौरैन्द्रिय । इन तीन विकलेन्द्रिय के अपर्याप्त और पर्याप्त ऐसे 6 भेद हुए ।

20 पंचेन्द्रिय तिर्यच पांच प्रकार के - 1. जलचर 2. स्थलचर 3. खेचर 4. उरपरिसर्प और 5. भुजपरिसर्प । ये पांचो ही असंज्ञी और पाचों ही सज्ञी । ये 10 भेद हुए और इनके अपर्याप्त, और पर्याप्त ऐसे 20 भेद हुए । कुल $22+6+20=48$ भेद तिर्यच के हुए ।

मनुष्य के ३०३ भेद

कर्मभूमिज मनुष्य के 15 भेद हैं - यथा - 5 भरत, 5 ऐरावत और 5 महाविदेह में उत्पन्न मनुष्यों के 15 भेद । अकर्मभूमिज (भोगभूमिज) मनुष्य के 30 भेद हैं । यथा - 5 देवकुरु, 5 उत्तरकुरु, 5 हरिवास, 5 रम्यक्वास, 5 हेमवत और 5 हेरण्यवत क्षेत्रों में उत्पन्न मनुष्यों के 30 भेद हैं । 56 अन्तरद्वीपों में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों के 56 भेद । ये सभी मिलाकर गर्भज मनुष्य के 101 भेद होते हैं । इनके अपर्याप्त और पर्याप्त के भेद से 202 भेद होते हैं, और इन 101 गर्भज मनुष्यों के 14 प्रकार की अशुचि में उत्पन्न सम्मूर्च्छिम मनुष्य के 101 भेद अपर्याप्त के (ये नियमा अपर्याप्त ही काल करते हैं इसलिए इनके पर्याप्त के भेद नहीं होते) । 14 उत्पत्ति के स्थान - 1 उच्चारसु वा (मल) 2. पासवणसु वा (मूत्र), 3 खेलेसु वा (कफ), 4. सिघाणसु वा (श्लेष्म), 5. वतेसु वा (वमन), 6. पितेसु वा (पित्त), 7 पुडसु वा (पीप), 8 सोणिएसु वा (रक्त), 9 सुक्केसु वा (वीर्य से), 10. सुक्कपुगल परिसाडि एसु वा (सूखे हुए वीर्य आदि के पुदगलों के पुन. गीले होने पर), 11 दिग्य जीव कलेवरेसु वा (मृत कलेवरो में) 12 थी-पुरिस सजोएसु वा (रंग-पुरिस के

संयोग में), 13 नगर निधम - मणोसु वा (नगर की नालियों में), 14 सव्वेसु
वेव असुइठाणेसु वा (मनुष्य के सभी अशुचि स्थान में) (प्रथम प्रज्ञापनापद)
कुल $101+101+101=303$ भेद मनुष्य के हुए।

देव के १९८ भेद

10 भवनपति के 10 भेद - 1. असुरकुमार 2 नागकुमार 3 सुवर्णकुमार
4 विद्युतकुमार 5 अग्निकुमार 6 उदधिकुमार 7 द्वीपकुमार, 8 दिशाकुमार
9 पवनकुमार और 10 स्तनितकुमार।

15 परमाधार्मिक देवों के 15 भेद हैं। यथा -1 अम्ब 2 अम्बरीष 3
श्याम, 4 शबल 5 रौद्र 6. महारौद्र 7 काल 8 महाकाल 9 असिपत्र
10 धनुष 11 कुम्भ 12 बालुका 13 वैतरणी 14 खरस्वर और 15
महाघोष।

26 वाणव्यन्तर के 26 भेद हैं। जैसे - पिशाचादि 8 (1 पिशाच 2 भूत
3 यक्ष 4 राक्षस 5 किन्नर 6 किम्पुरुष 7 महोरग और 8 गन्धर्व),
आणपण्णे आदि 8 (1 आणपन्ने 2 पाणपण्णे 3 इसिवाई 4 भूयवाई 5
कन्दे 6 महाकन्दे 7. कूहण्डे 8 पयगदेवे) जृम्भक 10 1 अन्न जृम्भक 2
पान जृम्भक 3 लयन जृम्भक 4 शयन जृम्भक 5 वस्त्र जृम्भक 6 फल
जृम्भक 7 पुष्प जृम्भक 8 फलपुष्प जृम्भक 9 विद्या जृम्भक 10 अव्यक्त
(अधिपति) जृम्भक।

10 ज्योतिषी देवों के 5 भेद - 1 चन्द्र 2 सूर्य, 3 ग्रह 4 नक्षत्र और 5
तारा। इनके चर (भ्रमणशील) और अचर (स्थिर) के भेद से दस भेद हो
जाते हैं।

12 वैमानिक देवों के कल्पोपपन्न और कल्पातीत दो भेद हैं। इनमें
कल्पोपपन्न के 12 भेद हैं। जैसे - 1 सौधर्म 2 ईशान 3 सनत्कुमार 4
माहेन्द्र 5 ब्रह्म लोक 6 लातक 7 महाशुक्र 8 सहस्त्रार 9 आणत 10
प्राणत 11 आरण और 12 अच्युत।

कल्पातीत के दो भेद - ग्रैवेयक और अनुत्तर वैमानिक। ग्रैवेयक के 9 भेद
- 1 भद्र 2 सुभद्र 3 सुजात 4 सुमनस 5 सुदर्शन 6 प्रियदर्शन
7 आमोह 8 सुप्रतिबद्ध और 9 यशोधर।

5 अनुत्तर वैमानिक के पांच भेद हैं। जैसे - 1 विजय 2 वैजयन्त 3
जयन्त 4 अपराजित और 5 सर्वार्थसिद्ध।

3 कित्विषिक देव - 1 त्रैपत्योपमिक 2 त्रैसागरिक और 3 त्रयोदश
सागरिक।

9 लोकान्तिक देवों के नौ भेद - 1 सारस्वत 2 आदित्य 3 वह्नि

वरुण 5. गर्ततोय 6. तुषित 7. अव्याबाध 8. आग्नेय 9 अरिष्ट ।

इस प्रकार - $10 + 15 + 16 + 10 + 10 + 12 + 3 + 9 + 9 + 5$

कुल 99 अप. 99 प = 198 देव के भेद हुए ।

उपरोक्त 563 भेदों का सत्ताईस द्वारों से निरूपण किया जाता है -

द्वार - 1. जीव, 2 गति, 3 इन्द्रिय 4. काय, 5 योग, 6. वेद, 7 कषाय, 8 लेश्या, 9 सम्यक्त्व 10 ज्ञान 11 दर्शन 12 संयम, 13 उपयोग, 14 आहारक, 15 भाषक 16 परित्ति, 17 पर्याप्त, 18 सूक्ष्म 19 सत्री 20 भव्य, 21 चरम 22. संहनन, 23 संठाण, 24. क्षेत्र 25. शाश्वत 26. अमर और 27. गर्भज ।

1. जीव द्वार

समुच्चय जीव के भेद 563 - नारकी के 14, तिर्यच के 48, मनुष्य के 303 और देव के 198 भेद

2. गति द्वार

1. नरक गति में 14 । तिर्यच में 48 । तिर्यचिनी में 10 (पाच सत्री तिर्यच के पर्याप्त व अपर्याप्त) मनुष्य गति में 303 मनुष्यिनी में 202 (101 सत्री मनुष्य के अपर्याप्त व पर्याप्त 202) देव में 198 देवी में 128 (10 भवनपति, 15 परमाधामी, 16 वाणव्यन्तर, 10 जृम्भक, 10 ज्योतिषी 1 पहला 1 दूसरा देवलोक के और 1 पहली कित्विषी कुल 64 के अपर्याप्त और पर्याप्त) । सिद्ध भगवान में कोई भेद नहीं ।

3. इन्द्रिय द्वार

सइन्द्रिय में 563 - सभी भेद । एकेन्द्रिय में 22, वेइन्द्रिय में 2, तेइन्द्रिय में 2, चौरिन्द्रिय में 2 और पंचेन्द्रिय में 535 (563 में से एकेन्द्रिय के 22 और विकलेन्द्रिय के 6 छोड़कर) अनिन्द्रिय में 15 (15 कर्मभूमि के मनुष्य के पर्याप्त - 13, 14 गुणस्थान वाले) श्रोत्रेन्द्रिय में 535 (पंचेन्द्रिय के) चक्षुरिन्द्रिय में 537 (चौरिन्द्रिय के पर्याप्त व अपर्याप्त बढ़े) घ्राणेन्द्रिय में 539 (तेइन्द्रिय के पर्याप्त व अपर्याप्त बढ़े) रसनेन्द्रिय के 541 (वेइन्द्रिय के पर्याप्त व अपर्याप्त बढ़े) स्पर्शनेन्द्रिय के 563 ।

इन्द्रिय अलक्ष्मिया में (अलक्ष्मिया - अनुपलब्ध - अप्राप्त होना तथा प्राप्त हुई इन्द्रियो का उपयोग नहीं करना (13, 14 वें गुणस्थान की अपेक्षा)

श्रोत्रेन्द्रिय के अलक्ष्मिये में 43 - एकेन्द्रिय के 22, वेइन्द्रिय के 2, तेइन्द्रिय के 2, चौरिन्द्रिय के 2 और 15 कर्मभूमि के पर्याप्त मनुष्य (13, 14 गुणस्थान के

चक्षुरिन्द्रिय के अलघ्दिये मे 41- (43 मे से चौरिन्द्रिय के 2 कम ।)
 घ्राणेन्द्रिय के अलघ्दिये मे 39 - (41 मे से तेइन्द्रिय के 2 कम ।)
 रसनेन्द्रिय के अलघ्दिये मे 37 - (39 मे से वेइन्द्रिय के 2 कम ।)
 स्पर्शनेन्द्रिय के अलघ्दिये मे 15 - (15 कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त । 13
 वे, 14 वे गुणस्थानी) ।

4. काय द्वार

सकाया मे 563 सभी । पृथ्वीकाय के 4, अप्काय के 4, तेउकाय के 4,
 वायुकाय के 4, वनस्पतिकाय के 6 और त्रसकाय के 541 (एकेन्द्रिय के 22
 कम) । अकाया (सिध्द) में कोई भेद नही ।

5. योग द्वार

सयोगी मे 563 - सभी ।

मनयोगी में 212 - नारकी के 7, तिर्यच पचेन्द्रिय के 5, सत्री मनुष्य के
 101 और देव के 99 । ये सभी पर्याप्त ।

वचनयोगी मे 220 - मनयोगी के 212 एव 5 असत्री तिर्यच और तीन
 विकलेन्द्रिय के पर्याप्त ।

काययोगी में 563 - सभी ।

4 मन, 3 वचन योग में 212 - मनयोगी के समान ।

व्यवहार भाषा मे 220 - वचन योगी के अनुसार ।

औदारिक योग में 351 - तिर्यच के 48 और मनुष्य के 303 ।

औदारिक मिश्र काय योग में 247 - तिर्यच के 30-24 अपर्याप्त, और 5
 पर्याप्त सत्री तिर्यच तथा एक बादर पर्याप्त वायुकाय । मनुष्य के 217 - असत्री
 मनुष्य के अपर्याप्त 101, सत्री मनुष्य के अपर्याप्त 101 और कर्मभूमिज
 मनुष्य के पर्याप्त 15 ।

वैक्रिय काय योग में 233 - 14 नारकी के सभी, 5 सत्री तिर्यच के
 पर्याप्त, 1 बादर वायुकाय के पर्याप्त, 15 कर्मभूमि मनुष्य के पर्याप्त और 198
 देव के सभी ।

वैक्रिय मिश्र काय योग में 219 - वैक्रिय योग के 233 मे से 9 ग्रैवेयक और
 5 अनुत्तर विमान के पर्याप्त के 14 भेद कम ।

आहारक और आहारक मिश्र काय योग मे 15 - कर्मभूमिज मनुष्य के
 पर्याप्त (विशिष्ट संयमी सत की अपेक्षा) ।

कार्मण काययोग मे 347 - नारकी के 7, तिर्यच के 24, देव के 99,
 असत्री मनुष्य के 101, सत्री मनुष्य के 101 ये सभी अपर्याप्त और 15
 कर्मभूमिज के पर्याप्त (13 वे गु की अपेक्षा) ।

अयोगी में 15 - कर्मभूमि मनुष्य के पर्याप्त (14 वे गुणस्थानी) ।

6. वेद द्वार

सवेदी में 563 - सभी ।

पुरुष वेद में 410 - पांच सत्री तिर्यच के पर्याप्त और पर्याप्त 10, सत्री मनुष्य के पर्याप्त और अपर्याप्त 202 और देव के 198 ।

स्त्रीवेद में 340 - तीसरे देवलोक से बारहवे देवलोक तक 10, दूसरे 1 व तीसरे 1 कित्विषी, नव लोकांतिक 9, नव ग्रैवेयक 9 और पांच अनुत्तर विमान के 5 । इन 35 के पर्याप्त और अपर्याप्त । ये 70 पुरुषवेदी को छोड़कर शेष (10 तिर्यच के, 202 मनुष्य के 128 देवता के) ।

नपुंसक वेद में 193 - नारकी 14, तिर्यच 48, असत्री मनुष्य के अपर्याप्त 101, कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त और अपर्याप्त 30 ।

एकवेद में 223 - नारकी 14, तिर्यच 38 (48 में से पांच सत्री तिर्यच के पर्याप्त व अपर्याप्त 10 छोड़कर) 101 असत्री मनुष्य के अपर्याप्त, ये सब नपुंसक वेदी है । देव के 70 (तीसरे देवलोक से लगाकर सर्वार्थसिद्ध तक 35 के पर्याप्त व अपर्याप्त । ये सब पुरुषवेदी है) ।

दो वेद में 300 - अकर्मभूमि के 30, अन्तरद्वीप के 56, इन 86 के पर्याप्त व अपर्याप्त 172 और देवलोक के 128 (198 में से एकान्त पुरुषवेद के 70 कम) ।

तीन वेद में 40 - 10 तिर्यच - पांच सत्री तिर्यच के पर्याप्त और अपर्याप्त 30 कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त और अपर्याप्त ।

अवेदी में 15 - कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त ।

एकांत पुरुषवेद में 70 - तीसरे देवलोक से आगे के देव ।

एकांत नपुंसकवेद में 153 - नारकी के 14, तिर्यच के 38 (48 में से पांच सत्री तिर्यच के पर्याप्त व अपर्याप्त 10 कम), असत्री मनुष्य के अपर्याप्त 101 ।

7. कषाय द्वार

सकषायी क्रोध, मान, माया, लोभकषायी में 563 भेद - सभी ।

अकषायी में 15 - कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त (गुणस्थान 11 से 14 तक)

8. लेश्या द्वार

सलेशी में - 563 ।

कृष्ण, नील और कापोत, इन तीन लेश्या में, प्रत्येक में 459 ।

नारकी के 6 - पहली, दूसरी और तीसरी नरक के पर्याप्त -

अपर्याप्त में कापोत लेश्या 6 । तीसरी, चौथी और पांचवी नरक के

पर्याप्त-अपर्याप्त में नील लेश्या 6 । पाचवी, छठी और सातवी नरक के पर्याप्त-अपर्याप्त में कृष्ण लेश्या 6 ।

48 तिर्यच के । 303 मनुष्य के ।

102 देव के - भवनपति के 10, परमाधामी के 15, व्यन्तर के 16, जृम्भक के 10 । इन 51 के पर्याप्त, अपर्याप्त ।

तेजोलेख्या में 343 -

13 तिर्यच के - बादर - पृथ्वीकाय, अप्काय और प्रत्येक वनस्पतिकाय के अपर्याप्त 3 । सत्री -तिर्यच पंचेन्द्रिय के पर्याप्त अपर्याप्त के 10 ।

202 मनुष्य - सत्री के पर्याप्त और अपर्याप्त ।

128 देव के - भवनपति के 10, परमाधामी के 15, व्यन्तर के 16, जृम्भक के 10, ज्योतिषी के 10, वैमानिक के पहले देवलोक का 1, दूसरे देवलोक का 1 और प्रथम किल्बिषी का 1 । इन 64 के पर्याप्त-अपर्याप्त ।

पद्म लेश्या में 66 -

10 तिर्यच के - सत्री पंचेन्द्रिय के पर्याप्त - अपर्याप्त ।

30 मनुष्य के - 15 कर्मभूमि के पर्याप्त - अपर्याप्त ।

26 देव के - तीसरे, चौथे और पांचवों देवलोक, दूसरी किल्बिषी, -9 लोकातिक देव इन 13 के पर्याप्त, अपर्याप्त ।

शुक्ल लेश्या में - 84 -

10 सत्री तिर्यच के अप. प । 30 कर्मभूमि मनुष्य के अप प ।

44 देव के - वैमानिक के छठे से 12 वे तक देवलोक 7, तीसरी किल्बिषी, ग्रेवेयक 9 और अनुत्तर 5 । इन 22 के प , अप. ।

एकान्त कृष्णलेशी में 4 - छठी और सातवी नरक के प अप ।

एकान्त नील लेश्या में 2 - चौथी नरक के पर्याप्त-अपर्याप्त ।

एकान्त कापोत लेश्या में 4 - पहली दूसरी नरक के प अप ।

एकान्त तेजो लेश्या में 26 - ज्योतिषी देव के 10, पहला, दूसरा, देवलोक, प्रथम किल्बिषी । इन 13 के पर्याप्त - अपर्याप्त ।

एकान्त पद्म लेश्या में 26 - वैमानिक के 3,4,5 देवलोक, दूसरी किल्बिषी और लोकातिक 9 । इन 13 के पर्याप्त - अपर्याप्त ।

एकान्त शुक्ल लेश्या में 44 - छठे देवलोक से 12 वे तक 7, तीसरी किल्बिषी, ग्रेवेयक 9 और अनुत्तर 5 । इन 22 के पर्याप्त, अपर्याप्त ।

एक लेश्या में 106 - 10 नारक के, तीसरी और पाचवी नारकी के प अप छोड़कर । 96 देव के - ज्योतिषी के 10, वैमानिक के 38 इनके पर्याप्त-अपर्याप्त ।

दो लेश्या में 4 । तीसरी और पाचवी नरक के पर्याप्त,

तीन लेख्या में 136 - 35 तिर्यच के - एकेन्द्रिय के 19 (बादर पृथ्वीकाय, अप् और प्रत्येक वनस्पति के अपर्याप्त छोड़कर) विकलेन्द्रिय के 6 और असत्री पंचेन्द्रिय के 10 । समुच्छिर्म मनुष्य के 101 ।

चार लेख्या में 277 ।

3 तिर्यच के - बाद पृथ्वी, अप्. और प्रत्येक वनस्पतिकाय के अपर्याप्त ।
172 मनुष्य के - 86 युगलिक के प अ । 102 देवों के - भवनपति, परमाधर्मी, व्यन्तर और जृम्भक के इन 51 के प. अप. ।

5 लेख्या में - 0 शून्य, कोई नहीं ।

छह लेख्या में 40 - सत्री तिर्यच के 10, कर्मभूमि मनुष्य के 30 ।

अलेशी में 15 - कर्मभूमि मनुष्य के पर्याप्त (14 वे गु)

9. सम्यक्त्व द्वारा

सम्यग्दृष्टि में 283 - 13 नारकी के (सातवी का अप. छोड़कर) ।

18 तिर्यच के - 10 सत्री तिर्यच के प अप. । 5 असत्री तिर्यच और 3 विकलेन्द्रिय के अप. ।

90 मनुष्य के - 15 कर्मभूमि, 30 अकर्मभूमि के प. अप. ।

162 देव के - (15 परमाधर्मी, 3 कित्विषी के प अप. छोड़कर) ।

मिथ्यादृष्टि में 553 - 563 में से अनुत्तर विमान के प अ. छोड़के ।

मिश्रदृष्टि में 103 - नारकी के 7, तिर्यच के 5, कर्मभूमि मनुष्य के 15, देव के 76 (परमाधर्मी के 15, कित्विषी के 3 और अनुत्तर विमान के 5 ये 23 पर्याप्त कम करके) । सभी पर्याप्त ही है ।

एकान्त सम्यग्दृष्टि में 10 - पांच अनुत्तर विमान के प. और अप. ।

एकान्त मिथ्यादृष्टि में 280 - सातवी नारकी के अप. 1, तिर्यच के 30 (एकेन्द्रिय के 22, विकलेन्द्रिय के 3 और असत्री पंचेन्द्रिय के 5 प.), मनुष्य के 213 (असत्री मनुष्य के अप. 101, अंतरद्वीप प और अप. 112) देव के 36 (परमाधर्मी 15 और कित्विषी 3 के प अप) ।

एक दृष्टि में 290 - एकान्त सम्यग्दृष्टि के 10 और एकान्त मिथ्यादृष्टि के 280 । कुल 290 ।

दो दृष्टि में 170 - नारकी के 6 पहली से छठी तक के अप । तिर्यच के 13 - पांच सत्री तिर्यच, पांच असत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय और तीन विकलेन्द्रिय, इनके अप । मनुष्य के 75 - कर्मभूमि के अप. 15, अकर्मभूमि के प अप 60 । देव के 76 (99 में से 15 परमाधर्मी 3 कित्विषी तथा 5 अनुत्तर विमान । ये 23 कम करके शेष सभी के अप. ।

तीन दृष्टि में 103 - मिश्र दृष्टि के समान ।

सास्वादन समकित मे 207 - नारकी के 7 (सात नारकी के पर्याप्ति) तिर्यच के 18 (5 असत्री तिर्यच आदि) 3 विकलेन्द्रिय के अप और सत्री तिर्यच के प अप 10) । मनुष्य मे पद्रह कर्मभूमि के प अपर्याप्त 30। देव के 152-15 परमाधामी, 3 कित्विषी 5 अनुत्तर विमान के प्र अप छोडकर शेष सभी के प अप

टिप्पणी - कर्मग्रन्थ भाग - 2 कर्म प्रकृति के उपशमनाकरण के गाथा 23 की टीका के अनुसार सास्वादन समकित मे नरकानु पूर्वी का उदयन होने से सास्वादन समकित मे नारकी के अपर्याप्ता के भेद नहीं लिए गए हैं । साथ ही 9 ग्रेवेयक के अपर्याप्ता मे उपशम सम्यक्त्वी का सास्वादन सम्यक्त्व मे जाना समव होने से तथा 9 ग्रेवेयक मे सास्वादन सम्यक्त्व के अभाव का प्रमाणिक निषेध प्राप्त न होने से कुल 76 देवो (15 परमाधामी 3 कित्विषिक 5 अनुत्तर वि. छोडकर) के पर्याप्त अपर्याप्त को भी ग्रहण करने से सास्वादन समकित मे कुल $7 + 18 + 30 + 152 = 207$ भेद मानना ठिक लगता है ।

वेदक समकित में 103 - मिश्र दृष्टि के समान ।

उपसम समकित में 138 - 7 नारकी के प + 5 सत्री के प्र + 15 कर्म भूमि के पर्याप्त + देव के 111 (10 भवनपति + 26 व्याणवन्तर + 10 ज्योतिषी + 12 देवलोक + 9 लोकान्तिक + 9 ग्रेवेयक इन सभी के पर्याप्ता तथा 12 देवलोक 9 लोकान्तिक + 9 ग्रेवेयक + 5 अनुत्तर विमान इन सभी के अपर्याप्त)

टिप्पणी - कर्म प्रकृति की चूर्णी कर्म प्रकृति के उपशमनाकरण की गाथा 62, 63 तथा लब्धि सार ग्रन्थ की गाथा 359 के अनुसार उपशम श्रेणि से पतित होने वाले प्रमतादि गुणस्थान वृत्ति जीव का काल करके देव होना बताया है । ग्रन्थो मे वैमानिक देव मे ही जाने का उल्लेख मिलता है । अतः उपशम समकित मे कुल 138 भेद मानना उपयुक्त लगता है । वह इस प्रकार है - (7 नारकी के प. 5 सत्री के ति. प. के पर्याप्ता + 15 कर्म भूमि मनुष्य के पर्याप्त + 35 वैमानिक देव के अपर्याप्त (3 कित्विषी देव को छोडकर) + 76 देव के पर्याप्त (15 परमाधामी + 3 कित्विष + 5 अनुत्तर विमान मे 23 कम करने से) 138 ।

क्षयोपशमिक सम्यक्त्व मे 275 । 13 नारकी + 10 सत्री तिर्यच के प अप + 90 मनुष्य के 15 कर्म भूमि 30 अकर्मभूमि के प अप. + 162 देव के (15 परमाधामी 3 कित्विषी के प अप को छोडकर)

क्षायिक सम्यक्त्व में 168 । 6 नरक के (प्रथम 3 नरक के प्र अप्र) 2 तिर्यच के (सत्री थलचर युगल के प्र अप्र) 90 मनुष्य के (15 कर्मभूमि 30 अकर्मभूमि के प्र अप्र) 70 देव के (12 देवलोक, 9 लोकान्तिक, 9 ग्रेवेयक, 5 अनुत्तर विमान के प्र अप)

टिप्पणी - जीव समास गाथा 80 तथा उसकी वृत्ति कर्म-प्रकृति चूर्णि, कर्म प्रकृति के उपशम करण की 32 वी गाथा का टिका, पच सग्रह की गाथा।

तइय चउत्थ तम्भि व भवन्भि सिज्भकान्ति दसणे खीणे की मुल टिका तथा प्रवचन सारोहार की निम्नोक्त गाथाओ के आधार पर क्षायिक सम्यक्त्व मे 168 भेद मानना सगत लगता है ।

10. ज्ञान द्वार

समुच्चयज्ञानी और मतिश्रुतज्ञानी में 283 । सम्यग्दृष्टि के समान ।

विभेग ज्ञान ३२२
अवधिज्ञान में 210 - 13 नारक के - सातवी के अप. छोडकर ।

+5 +15 +188 5 सत्री ति. पं. के प. । 30 कर्म भूमिज मनुष्य के ।

162 देव के - 15 परमाधर्मी, 3 कित्विषी के प. अप छोडकर ।

मनःपर्याय और केवलज्ञानी में - 15 कर्मभूमिज मनुष्यो के प. ।

मतिश्रुत अज्ञान और समुच्चय अज्ञान मे - 553 (पांच अनुत्तर विमानवासी

देवों 1 नो संयत नो असंयत नो संयतासंयत (सिध्द) में नही ।

11 दशान हार + 1 ३ संयम हार

13. उपयोग द्वार

साकार और अनाकार उपयोग मे 563 - सभी ।

14. आहारक द्वार

आहारक में 563 - सभी ।

. अनाहारक में 347 - 7 नारक, 24 तिर्यच, 202 मनुष्य और 99 देव - ये सब अप., कर्मभूमिज मनुष्य के प 15 (13वें 14 वें गु के) ।

15. भाषक द्वार

भाषक में 220 भेद - 7 नारक के पर्याप्त ।

13 तिर्यच के - 3 विकलेन्द्रिय, 5 असत्री, 5 सत्री पंचे, के प. ।

101 मनुष्य के पर्याप्त । 99 देव के पर्याप्त ।

अभाषक में 358 - 7 नारक के अपर्याप्त ।

35 तिर्यच के - एकेन्द्रिय के 22 प अप । विकलेन्द्रिय 3 अप. और सत्री-असत्री पंचेन्द्रिय के पर्याप्त 10 ।

217 मनुष्य के - 101 सत्री और 101 असत्री के अप. तथा 15 कर्मभूमि के प (अयोगी) । 99 देवता के अप ।

16. परित्त 20. भव्य और 21. चरम द्वार

परित्त, भव्य, चरम में प्रत्येक में 563 ।

अपरित्त, अभव्य और अचरम मे प्रत्येक मे 553 (पांच अनुत्तर विमान के प अप छोडकर) ।

17. पर्याप्त द्वार

पर्याप्त में 231 - नारकी 7, तिर्यच 24 मनुष्य 101 और देव 99 ।

अपर्याप्त में 332 - नारकी 7, तिर्यच 24, मनुष्य 202 और देव के 99।

18. सूक्ष्म द्वार

सूक्ष्म में 10 - पाच सूक्ष्म स्थावर के प अप ।

बादर में 553 - सूक्ष्म के 10 कम करके ।

19. सत्री द्वार

सत्री में 424 - नारक के 14, तिर्यच पचेन्द्रिय के 10, मनुष्य के 202 (समुच्छिर्म छोड़कर) और देव के 198 ।

असत्री में 191 - 1 नरक का - पहली का अप ।

38 तिर्यच के - सत्री के 10 छोड़कर । 101 असत्री मनुष्य ।

51 देव के - 10 भवनपति के, 15 परमाधामी के, 16 बाणव्यन्तर के 10 जृम्भक के । इन सब के अपर्याप्ता ।

22. सहनन द्वार

वज्र - ऋषभ - नाराच सहनन में 212 - सत्री तिर्यच के 10 और मनुष्य के 202 (सत्री मनुष्य के प अप) ।

मध्य के चार सहनन में 40 - सत्री तिर्यच के 10, मनुष्य के 30 कर्मभूमिज मनुष्य के प अप में ।

सेवार्त सहनन में 179 - 48 तिर्यच के । मनुष्य के 131 - (असत्री मनुष्य 101 कर्मभूमि मनुष्य के प अप 30)

23. संस्थान द्वार

समचतुरस्र संस्थान में 410 । 10 सत्री तिर्यच के ।

202 सत्री मनुष्य के 198 देवता के ।

मध्य के चार संस्थान में 40 । मध्य सहनन के समान ।

हुंडक संस्थान में 193 - 14 नारक के, 48 तिर्यच के, 131 मनुष्य के (असत्री मनुष्य के 101, कर्मभूमिज मनुष्य के प अप 30) ।

24. क्षेत्र द्वार

एक भरत और ऐरावत क्षेत्र में 51 । पाचो के 63 ।

(48 तिर्यच के और 3 मनुष्य के - सत्री मनुष्यो का अप, प और असत्री मनुष्य का अप) । एक महाविदेह में 57 (48 ति, 9 मनुष्य का - 1 महाविदेह, 1 देवकुरु, 1 उत्तरकुरु इन 3 के अप प और समुच्छिर्म) 5 महाविदेह क्षेत्र में 93 (48 तिर्यच के । 45 मनुष्य के - 5 महाविदेह, 5 देवकुरु, 5 उत्तरकुरु इन

15 के प, अप तथा असत्री अप. ये 45) ।

जम्बूद्वीप में 75 । 48 तिर्यच के (सभी)

27 मनुष्य के - 1 भरत, 1 ऐरावत, 1 महाविदेह, 1 हेमवय, 1 हैरण्यवय, 1 हरिवास, 1 रम्यक्वास, 1 देवकुरु, 1 उत्तरकुरु, ये 9 प. 9 अप और इनके 9 असत्री के अप. ।

लवण समुद्र में 216 - 48 तिर्यच के, 168 मनुष्य के - छप्पन अंतरद्वीप के प. अप 112 और इनके असत्री के अप. ।

घातकी खंड में 102 - 48 तिर्यच के । 54 मनुष्य के - 2 भरत, 2 ऐरावत, 2 महाविदेह, 2 हेमवय, 2 हैरण्यवत, 2 हरिवास, 2 रम्यक्वास, 2 देवकुरु, 2 उत्तरकुरु । इन 18 के प., अप., समूर्च्छिम

कालोदधि समुद्र में 46 । 46 तिर्यच के (48 में से बादर तेउकाय के प. और अप. 2 कम) ।

अर्ध पुष्करद्वीप में 102 । घातकीखंड के समान ।

अढ़ाई द्वीप में 351 - 48 तिर्यच के, 303 मनुष्य के ।

अढ़ाई द्वीप के बाहर 108 -

46 तिर्यच के (48 में से बादर तेउकाय के प. अप. कम)

62 देव के - 16 वाणव्यंतर के, 10 जृम्भक के, 5 ज्योतिषी अचर । इन 31 के प. अप. ।

नीचे लोक में 115 - 14 नारक । 48 तिर्यच के ।

3 मनुष्य के - जम्बूद्वीप महाविदेह क्षेत्र की (सलिलावती) विजय की अपेक्षा सत्री प अप. और असत्री के अप. ।

50 देव के - 10 भवनपति और 15 परमाधामी के प. अप ।

ऊंचे लोक में 122 - 46 तिर्यच के (बादर तेउ. के प अप. कम) 176 देव के - 12 वैमानिक, 3 किंत्विषी, 9 लोकांतिक, 9 त्रैवेयक और 5 अणुत्तर विमान, इनके प. अप. ।

तिच्छे लोक में 423 - 48 तिर्यच के । 303 मनुष्य के । 72 देव के - 16 वाणव्यंतर, 10 जृम्भक और 10 ज्यो. के प. अ ।

सिध्दशिला में 12 - 5 सूक्ष्म (स्थावर) और बादर पृथ्वी के प. अप ।

सिध्दशिला के ऊपर तथा सातवीं नरक के नीचे, लोक के चरमान्त में 12-5 सूक्ष्म स्थावर और बादर वायुकाय के प. अप ।

25. शाश्वत द्वार

शाश्वत में 250 - 7 नारक के पर्याप्त ।

101 मनुष्य सत्री के पर्याप्त । 99 देव - सभी के पर्याप्त ।

43 तिर्यच के - (पांच सत्री तिर्यच के अपर्याप्त कम) ।

अशाश्वत मे 313 - 7 नारक के, 5 सत्री तिर्यच के 202 मनुष्य के (101 सत्री म 101 समूर्च्छिम) 99 देव के । ये सभी अपर्याप्त है ।

26. अमर द्वार

अमर मे 192 - 7 नारक के ।

86 मनुष्य के - 30 अकर्मभूमि और 56 अन्तर्द्वीप के ।

99 देव के । ये सभी अपर्याप्त अवस्था मे अमर होते है ।

मरने वाले 371 - 7 नारक के पर्याप्त । 48 तिर्यच के ।

217 मनुष्य के - 101 असत्री के अपर्याप्त, 101 सत्री के पर्याप्त और 15 कर्मभूमि के अपर्याप्त । 99 देव के पर्याप्त ।

27. गर्भज द्वार

गर्भज मे 212 - 10 सत्री ति पंचे के प अ ।

202 मनुष्य के - सत्री मनुष्य के प. अप ।

नो गर्भज मे 351 - 14 नारक के ।

38 तिर्यच के - 5 सत्री के प.अप छोडकर ।

101 मनुष्य - असत्री मनुष्य के अपर्याप्त । 198 देव के ।

४. आठ कर्म का थोकड़ा

श्री भगवती सूत्र शतक 8 उद्देशक 9 में कर्मों की प्रकृतिबध के 85 कारण बताए और श्री पत्रवणा सूत्र पद 23 उद्देशक 1 में कर्म - भोग के 93 कारण बताए हैं, वे इस प्रकार हैं -

कर्मों के नाम - 1 ज्ञानावरणीय, 2 दर्शनावरणीय, 3 वेदनीय, 4 मोहनीय, 5 आयु, 6 नाम, 7, गोत्र और 8 अन्तराय ।

परिभाषा - 1 वस्तु के विशेष धर्म को जानना ज्ञान कह - लाता है और जिसके द्वारा ज्ञान ढंका जाय उसे ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं । जैसे बादलों से सूर्य ढँक जाता है ।

2 वस्तु के सामान्य धर्म को जानना दर्शन कहलाता है, उस दर्शन को आच्छादित करने वाले कर्म को दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं । जैसे द्वारपाल के रोक देने पर राजा के दर्शन नहीं हो पाते ।

3. जिस कर्म के द्वारा सात्ता (सुख) और असात्ता (दुःख) का वेदन (अनुभव) हो, उसे वेदनीय कर्म कहते हैं । जैसे शहद लिपटी तलवार के चाटने से सुख और जीभ कटने से दुःख होता है ।

4. जिससे आत्मा मोहित (सत् और असत् के ज्ञान से शून्य) हो जाय, उसे मोहनीय कर्म कहते हैं । जैसे मदिरा पीने से मनुष्य बे - भान हो जाता है ।

5 जिस कर्म के उदय से जीव चार गतियों में रुका रहे, उसे आयु कर्म कहते हैं । जैसे बेडी में बन्धने से अपराधी रुक जाता है, पराधीन हो जाता है ।

6 जिस कर्म से आत्मा, गति आदि नाना पर्यायों का अनुभव करे (शरीर आदि बने या जो जीव अमूर्तत्व गुण को प्रगट न होने दे) उसे नाम कर्म कहते हैं । जैसे चित्रकार अनेक प्रकार के चित्र बनाता है ।

7 जिस कर्म के उदय से जीव, उच्च-नीच कुलो में उत्पन्न हो, उसे गोत्र कर्म कहते हैं । जैसे कुम्भकार छोटे - बड़े बरतन बनाता है ।

8 जिस कर्म से दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य (शक्ति) में विघ्न उत्पन्न हो, उसे अन्तराय कर्म कहते हैं । जैसे राजा की आज्ञा होने पर भी भडारी दान प्राप्ति में बाधक होता है ।

9 कर्मों की 148 प्रकृतियाँ 1 ज्ञानावरणीय की 5, दर्शनावरणीय की 9, वेदनीय की 2, मोहनीय की 28, आयुकर्म की 4, नामकर्म की 93 (103), गोत्रकर्म की 2, अन्तराय की 5 प्रकृतियाँ हैं ।

बन्ध के प्रकार

बन्ध - मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग के निमित्त से आत्म-प्रदेशों में हलचल होती है, तब जिस क्षेत्र में आत्म-प्रदेश हैं, उसी क्षेत्र में रहे हुए अनन्तानन्त कर्म योग्य पुद्गल जीव के साथ बन्ध को प्राप्त होते हैं। जीव और कर्म का यह बन्ध ठीक वैसा ही होता है, जैसा दूध और पानी का, अग्नि और लोहपिण्ड का। बन्ध के चार भेद हैं - 1. प्रकृति बन्ध, 2. स्थितिवन्ध अनुभाग बन्ध और 4 प्रदेश बन्ध।

1. प्रकृति बन्ध - जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म - पुद्गलों में भिन्न-भिन्न स्वभावों का होना।

2. स्थिति बन्ध - जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए कर्म - पुद्गलों में जीव के साथ लगे रहने की काल - मर्यादा।

3. अनुभाग बन्ध - इसे "अनुभाग बन्ध" तथा "रसबन्ध" अनुभव बन्ध व रस बन्ध भी कहते हैं। जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म पुद्गलों में फल देने की न्यूनाधिक शक्ति।

4. प्रदेश बन्ध - जीव के साथ न्यूनाधिक परमाणु वाले कर्म स्कन्धों का सम्बन्ध होना।

चारों बन्धों का स्वरूप समझाने के लिए मोदक लड्डू का दृष्टांत दिया जाता है - जैसे - सोठ, कालीमिर्च आदि से बनाया हुआ लड्डू वायु - नाशक होता है। पित्त-नाशक और कफ - नाशक पदार्थों से बनाया हुआ मोदक पित्त और कफ-नाशक होता है। इसी प्रकार आत्मा द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म - पुद्गलों में से किन्हीं में ज्ञान गुण को आच्छादन करने की शक्ति होती है, किन्हीं में दर्शन - गुण किन्हीं में आत्मा के आनन्द - गुण और किन्हीं में अनन्त शक्ति घात करने की शक्ति होती है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न कर्म-पुद्गल में भिन्न - भिन्न प्रकार की प्रकृतियों का बन्ध होना प्रकृति-बन्ध कहलाता है।

कोई मोदक एक सप्ताह, कोई एक पक्ष, कोई एक मास तक प्रभावशाली रहता है, इसके बाद ये विकृत हो जाते हैं। मोदक की काल मर्यादा के समान कर्मों की भी कालमर्यादा होती है। इसी को स्थिति बन्ध कहते हैं। स्थिति पूर्ण होने पर कर्म आत्मा से पृथक् हो जाते हैं।

कोई मोदक रस में अधिक मधुर होते हैं, तो कोई कम। कोई रस में अधिक कटु होते हैं, तो कोई कम। इस प्रकार मोदकों में रसों की न्यूनाधिकता होती है, उसी प्रकार कुछ कर्म - पुद्गलों में अणुग शुभ-रस अधिक और कुछ में कम होता है। इसी प्रकार कर्मों में तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम, और मन्द

मन्दतर, मन्दतम, शुभाशुभ रसों का बन्ध होना - रस बन्ध है ।

कोई मोदक परिमाण में दो तोले का, कोई पौंच तोले का और कोई पावभर का होता है । इसी प्रकार भिन्न - भिन्न कर्म - पुद्गलो में न्यूनाधिक प्रदेश होना ।

जीव संख्यात, असंख्यात और अनन्त परमाणुओं से बने हुए कर्मणः स्कन्ध हो ग्रहण नहीं करता, परन्तु अनन्तानन्त प्रदेश वाले स्कन्ध ग्रहण करता है ।

प्रकृति - बन्ध और प्रदेश - बन्ध तो योग के निमित्त से होता है और स्थिति - बन्ध और अनुभाग - बन्ध कषाय के निमित्त से होता है ।

कर्म - बन्ध के कारण और फल

१. ज्ञानावरणीय कर्म

(1) ज्ञानावरणीय कर्म छह प्रकार से बन्धता है । यथा -

1. ज्ञान और ज्ञानी की प्रत्यनीकता (विरोध) करने से ।
2. ज्ञान एवं ज्ञानदाता का अपलाप करने (लोप करने - छुपाने) से ।
3. ज्ञान प्राप्त करने में अन्तराय डालने (बाधक बनने) से ।
4. ज्ञान व ज्ञानी से द्वेष करने से ।
5. ज्ञान व ज्ञानी की आशातना करने से ।
6. ज्ञानी से विसंवाद (वितण्डावाद) करने से ।

इस कर्म का फल दस प्रकार का है ।

1. श्रोतइन्द्रिय का आवरण ।
2. चक्षु - इन्द्रिय का आवरण ।
3. घ्राण - इन्द्रिय का आवरण ।
4. रसना - इन्द्रिय का आवरण ।
5. स्पर्शनेन्द्रिय का आवरण ।
6. मतिज्ञान का आवरण ।
7. श्रुतज्ञान का आवरण ।
8. अवधिज्ञान का आवरण ।
9. मनःपर्यव ज्ञान का आवरण ।
10. केवल ज्ञान का आवरण ।

२. दर्शनावरणीय कर्म

दर्शनावरणीय कर्म छह प्रकार से बधता है । यथा

- 1 दर्शन और दर्शनी की प्रत्यनीकता (विरोध) करने से ।
- 2 दर्शन एवं दर्शनी का अपलाप करने (लोप करने - छुपाने) से ।
- 3 दर्शन प्राप्त करने वाले को अन्तराय डालने (बाधक बनने) से ।
- 4 दर्शन व दर्शनी से द्वेष करने से ।
- 5 दर्शन व दर्शनी की आशातना करने से और ।
- 6 दर्शनी से विसंवाद (वितण्डावाद) करने से ।

यह कर्म नौ प्रकार से भोगा जाता है -

- (1) निद्रा (2) निद्रानिद्रा (3) प्रचला (4) प्रचला - प्रचला (5) सत्यानगृद्धि
(6) चक्षुदर्शनावरण (7) अचक्षुदर्शनावरण (8) अवधिदर्शनावरण (9)
केवलदर्शनावरण ।

३. वेदनीय कर्म

वेदनीय कर्म - 22 प्रकार से बधता है एवं 16 प्रकार से भोगा जाता है जिसके 2 भेद हैं - 1 सात्त्विकवेदनीय कर्म, 2 असात्त्विक वेदनीय कर्म ।

सात्त्विक - वेदनीय कर्म दस प्रकार से बंधता है । यथा - 1 पाणाणुकपयाए-बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौरैन्द्रिय जीवों पर अनुकम्पा (दया) करने से, 2 भूयाणुकपयाए - वनस्पतिकाय के जीवों की अनुकम्पा करने से 3 जीवाणुकपयाए - पक्षेन्द्रिय जीवों की अनुकम्पा करने से 4 सत्ताणुकपयाए पृथ्वीकायादि चार स्थावरकाय जीवों की अनुकम्पा करने से । (उपरोक्त प्राणो, भूतो, जीवो और सत्त्वो को) 5 दुःख नहीं देने से 6 शोक उत्पन्न नहीं करने से) 7 नहीं झुराने, पीड़ित नहीं करने से, 8 आंसू नहीं गिराने से, 9 नहीं पीटने से और 10 परिताप (दुःख) उत्पन्न नहीं करने से ।

इस कर्म का फल आठ प्रकार का है -

- | | |
|-------------------|---------------------------------|
| 1 मनोज्ञ शब्द । | 2 मनोज्ञ रूप । |
| 3 मनोज्ञ गंध । | 4 मनोज्ञ रस । |
| 5 मनोज्ञ स्पर्श । | 6 इच्छित सुख । |
| 7 अच्छे वचन और | 8 शारीरिक सुख का प्राप्त होना । |

(ख) असात्त्विकवेदनीय कर्म बारह प्रकार से बंधता है, प्राण, भूत, जीव और सत्त्व को

- | | |
|--------------------------|----------------------------------|
| 1. दुःख देने से, | 2. शोक कराने से |
| 3. झुराने से, | 4. आँसू गिराने से, |
| 5. मार-पीट करने से, | 6. परिताप उत्पन्न करने से, |
| 7. बहुत दुःख देने से, | 8. बहुत शोक कराने से, |
| 9. बहुत झुराने से, | 10. बहुत रुलाने से, |
| 11. बहुत मार-पीट करने और | 12. बहुत परिताप उत्पन्न करने से। |

इसका फल आठ प्रकार का है -

- | | |
|--------------------|------------------|
| 1. अमनोज्ञ शब्द, | 2. अमनोज्ञ रूप, |
| 3. अमनोज्ञ गंध, | 4. अमनोज्ञ रस, |
| 5. अमनोज्ञ स्पर्श, | 6. मन का दुःख, |
| 7. वचन का दुःख और | 8. काया का दुःख। |

४. मोहनीय कर्म

मोहनीय कर्म छह प्रकार से बंधता है - 1 तीव्र क्रोध करने से 2 तीव्र मान करने से, 3 तीव्र माया करने से 4 तीव्र लोभ करने से, 5 तीव्र राग करने से। और 6 तीव्र द्वेष करने से। यह कर्म अट्ठाइस प्रकार से भोगा जाता है।

इनके मुख्य दो भेद हैं। 1. दर्शन - मोहनीय और 2. चारित्र मोहनीय।

दर्शन मोहनीय के तीन भेद हैं -

1. सम्यक्त्व मोहनीय 2. मिथ्यात्व मोहनीय 3. मिश्र मोहनीय

चारित्र मोहनीय के भी दो भेद हैं - 1. कषाय - मोहनीय और 2. नोकषाय - मोहनीय। कषाय मोहनीय के सोलह भेद हैं - अनन्तानुबन्धी 1 क्रोध 2 मान 3 माया और 4 लोभ। अप्रत्याख्यानी 5 क्रोध 6 मान 7 माया और 8 लोभ। प्रत्याख्यानावरण 9 क्रोध 10 मान 11 माया और 12 लोभ। संज्वलन का 13 क्रोध 14 मान 15 माया और 16 लोभ।

नोकषाय के नौ भेद हैं - 1 हास्य 2 रति 3 अरति 4 भय 5 शोक 6 जुगुप्सा 7 स्त्रीवेद 8 पुरुषवेद और 9 नपुंसक वेद - ये सब मिलाकर अट्ठाईस भेद हैं।

कषायो को हास्य आदि उत्तेजित करते हैं और उनके सहचारी हैं, इसलिए, उन्हें नो (ईपत) कहते हैं।

अनन्तानुबन्धी चोक का लक्षण :

अनन्तानुबन्धी क्रोध - जैसे पत्थर पर दरार पड़ने से वह टूट नहीं सकती अथवा पर्वत के फटने से जो दरार होती है, उसका मिलना कठिन है, उसी प्रकार जो क्रोध शांत न हो वह अनन्तानुबन्धी क्रोध है। अनन्तानुबन्धी

मान - जैसे पत्थर का खम्भा नमता नहीं, वैसे ही जो मान दूर न हो, उसे अनन्तानुबन्धी मान कहते हैं। अनन्तानुबन्धी माया - जैसे विलकुल टेढ़ी-मेढ़ी ऋतिन बास की जड़ का टेढ़ापन मिट नहीं सकता, उसी प्रकार जो भागा अमिट हो, उसे अनन्तानुबन्धी माया कहते हैं। अनन्तानुबन्धी लोभ - जैसे किरमची रंग का छूटना दुष्कर है, उसी प्रकार जो लोभ छूट न सके, उसे अनन्तानुबन्धी लोभ कहते हैं।

इस चौकड़ी से जीव नरक गति में जाना पड़ता है। स्थिति यावत् जीवन की है ये सम्यक्त्व गुण का घात करती है।

2 अप्रत्याख्यानी चोक का लक्षण - क्रोध - पानी सूखने से जमीन में जो दरार पड़ जाती है, वह आगामी वर्ष में वर्षा होने से मिटती है, उसी प्रकार जो क्रोध, विशेष परिश्रम से शांत हो, अप्रत्याख्यानी क्रोध कहते हैं। मान - हाथी - दात के खम्भे की तरह जो बड़ी मुश्किल से झुकता हो, वह अप्रत्याख्यानी मान है। माया - मेढे के सींग की तरह जो कठिनाई से सीधा हो उसे अप्रत्याख्यानावरण माया कहते हैं। लोभ - गाड़ी के ऑयल की तरह अति कष्ट से छूटे, वह अप्रत्याख्यानी लोभ है। इस चौकड़ी से तिर्यच गति होती है। इसकी स्थिति बारह महिने की है। वह श्रावक व्रत का घात करती है।

3 प्रत्याख्यानावरण चोक का लक्षण - क्रोध - जैसे रेत में खिंची हुई लकीर बहुत काल तक नहीं रहती, इसी प्रकार जो क्रोध बहुत काल तक न ठहरे, उसे प्रत्याख्यानावरण क्रोध कहते हैं। मान - बेत के खम्भे के समान जिसको झुकाने के लिए अधिक श्रम न करना पड़े, उसे प्रत्याख्यानावरण मान कहते हैं। माया - चलता हुआ बैल पेशाब करता है, तो टेढ़ी लकीरे हो जाती है उनका मिटना अति कष्ट साध्य नहीं होता। उसी प्रकार, जिस माया का मिटना कठिन न हो इसे प्रत्याख्यानावरण माया कहते हैं। लोभ - दीपक के काजल के समान जो लोभ थोड़ी कठिनाई से छूटे, उसे प्रत्याख्यानावरण लोभ कहते हैं। स्थिति 4 महिने की है। यह सकल सयम का घात करती है।

4. सज्ज्वलन चोक का स्वरूप - क्रोध - पानी में खिंची हुई लकीर के समान शीघ्र ही शांत हो जाता है, वह संज्वलन क्रोध है। मान - तिनके के खम्भे के समान शीघ्र ही नम जाय, उसे संज्वलन मान कहते हैं। माया - बास का छिलका जैसे सरलता से सीधा किया जा सकता है। उसी प्रकार माया बिना विशेष श्रम के दूर हो जाए उसे सज्ज्वलन माया कहते हैं। लोभ - हल्दी के रंग के समान सहज ही छूट जाय, उसे सज्ज्वलन लोभ कहते हैं।

इस चौकड़ी से देवगति का बन्ध होता है। क्रोध की स्थिति दो माह की, मान की एक माह की, माया की पन्द्रह दिन की और लोभ की अन्तर्मुहूर्त की

है। यह कषाय यथाख्यात चारित्र का घात करती है। (यह कषाय का सामान्य लक्षण है)।

५. आयुर्कर्म

आयुर्कर्म सोलह प्रकार से बंधता है और चार प्रकार से भोगा जाता है -
नरकायु चार प्रकार से बंधता है -

1. महाआरम्भ करने से, 2. महापरिग्रह करने से,
3. मद्य-मांस का सेवन करने से और 4. पंचेन्द्रिय जीवों की घात करने से।
तिर्यच का आयुष्य चार प्रकार से बंधता है -

1. माया करने से, 2. गूढ़ माया करने से,
3. असत्य बोलने से, 4. न्यूनाधिक नापने - तोलने से।

मनुष्य का आयुष्य चार प्रकार से बंधता है -

1. प्रकृति की भद्रता से, 2. प्रकृति की विनीतता से,
3. दयाभाव रखने से और 4. मद-मत्सर भाव रहित होने से।

देवता का आयुष्य चार प्रकार से बंधता है -

1. सराग संयम पालने से, 2. देश संयम पालने से,
3. बाल तपस्या करने से और 4. अकाम निर्जरा करने से।

आयु कर्म चार प्रकार से भोगा जाता है -

1. नरकायु 2. तिर्यचायु 3. मनुष्यायु और 4. देवायु।

६. नाम कर्म

नामकर्म आठ प्रकार से बंधता है। यह दो प्रकार का है -

1. शुभ नामकर्म और 2. अशुभ नामकर्म

शुभ नामकर्म चार प्रकार से बंधता है -

1. काया की सरलता, 2. वचन की सरलता,
3. मन की सरलता और 4. विसंवाद रहितता से

यह चौदह प्रकार से भोगा जाता है -

1. इष्ट शब्द 2. इष्ट रूप 3. इष्ट गंध 4. इष्ट रस 5. इष्ट स्पर्श 6. इष्ट गति 7. इष्ट स्थिति 8. इष्ट लावण्य 9. इष्ट यश कीर्ति 10. इष्ट उत्थान कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार - पराक्रम। इष्ट स्वर 12. कान्त स्वर 13. प्रिय स्वर और 14. मनोज्ञ स्वर

अशुभ नामकर्म चार प्रकार से बंधता है -

1. काया की वक्रता, (बांकापन) 2. वचन की वक्रता,

3 मन की वक्रता और

4 विसवाद योग युक्तता से ।

यह चौदह प्रकार से भोगा जाता है -

1 अनिष्ट शब्द 2 अनिष्ट रूप 3 अनिष्ट गंध 4 अनिष्ट रस 5 अनिष्ट स्पर्श 6 अनिष्ट गति 7 अनिष्ट स्थिति 8 अनिष्ट लावण्य 9 अनिष्ट यशः कीर्ति 10 अनिष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम । 11 हीन स्वर 12 दीन स्वर 13 अप्रिय स्वर और 14 अमनोज्ञ स्वर से ।

७. गोत्र कर्म

गोत्र कर्म सोलह प्रकार से बंधता है और सोलह प्रकार से भोगा जाता है। इसके दो भेद हैं -

1 उच्च गोत्र और 2 नीच गोत्र

उच्च गोत्र आठ प्रकार से बंधता है -

1 जाति-कामद (घमण्ड) न करने से ।

2 कुल का मद न करने से ।

3 बल का मद न करने से ।

4 रूप का मद न करने से ।

5 तपस्या का मद न करने से ।

6 श्रुत (ज्ञान) का मद न करने से ।

7 लाभ का मद न करने से ।

8 ऐश्वर्य का मद न करने से ।

यह उच्च गोत्र आठ प्रकार से भोगा जाता है, अर्थात् इनका मद न करने से जाति, कुल, बल, रूप, तप, श्रुत, लाभ और ऐश्वर्य उच्च (श्रेष्ठ) गोत्र पाता है ।

नीच गोत्र कर्म आठ प्रकार से बंधता है और आठ प्रकार से भोगा जाता है - पूर्वोक्त जाति-कुल-बल-रूप-तप-श्रुत लाभ और ऐश्वर्य का घमण्ड करने से बंधता है और इनका घमण्ड करने से नीच गोत्र की प्राप्ति होती है ।

८. अन्तराय कर्म

अन्तराय कर्म पाँच प्रकार से बंधता है और पाँच प्रकार से भोगा जाता है। यह दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में अन्तराय डालने से बंधता है और इससे पाँचो अन्तराय की प्राप्ति होती है ।

५. गुणस्थान द्वार

गुणस्थानों पर 31 द्वार हैं। वे इस प्रकार हैं - 1. नाम 2. लक्षण 3. स्थिति 4. क्रिया 5. सत्ता 6. बंध 7. उदय 8. उदीरणा 9. निर्जरा 10. भाव 11. कारण 12. परीषह 13. आत्मा 14. जीव के भेद 15. गुणस्थान 16. योग 17. उपयोग 18. लेश्या 19. हेतु 20. मार्गणा 21. ध्यान 22. दण्डक 23. जीव-योनि 24. निमित्त 25. चारित्र 26. आकर्ष 27. समकित 28. अन्तर और 29. क्षेत्र प्रमाण 30. गुणस्थान स्पर्शना 31. अल्प बहुत्व।

1. नाम द्वार

गुणस्थानों के नाम - मिथ्यात्व 2 सास्वादन 3 सम्यग् - मिथ्या (मिश्र) 4. अविरत सम्यग्दृष्टि 5. देशविरत 6. प्रमत्त - संयत 7. अप्रमत्त संयत 8. निवृत्ति-बादर 9. अनिवृत्ति-बादर 10. सूक्ष्म-सम्पराय 11. उपशान्त मोहनीय 12. क्षीण मोहनीय 13. सयोगी केवली और 14. अयोगी केवली, गुणस्थान।

2. लक्षण द्वार

1. मिथ्यात्व गुणस्थान का लक्षण - जिनेश्वर भगवान की वाणी न्यूनाधिक या विपरीत श्रद्धे या प्ररूपे जिन -मार्ग पर दुष्ट परिणाम रखे, हिंसा से धर्म माने या प्ररूपे, कुगुरु, कुदेव और कुशास्त्र पर आस्था रखे अथवा तत्व श्रद्धा का अभाव। मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से जीव पहले गुणस्थान में रहते हैं। जीव के ऐसे भाव को पहला मिथ्यात्व गुणस्थान कहते हैं।

पहले गुणस्थान का फल - कर्म रूपी डंडे से आत्मा रूपी गेंद चार गति चौबीस दण्डक और चौरासी लाख जीव-योनियों में बारम्बार परिभ्रमण कर दुःख भोगती रहती है।

2. दूसरे गुणस्थान का लक्षण - जो औपशमिक सम्यक्त्वी जीव अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से सम्यक्त्व को छोड़कर मिथ्यात्व की ओर झुक रहा है, किन्तु अभी तक मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं किया है, उसकी इस अवस्था विशेष को सास्वादन गुणस्थान कहते हैं। जैसे किसी ने खीर

भोजन किया और बाद में वमन कर दिया तो उसे कुछ गुडचटा सा स्वाद रहता है। अथवा जैसे घटे से गभीर शब्द निकल चुकने के बाद उसकी रणकार (प्रतिध्वनि) रह जाती है, उसके समान, अथवा आत्मा रूपी आम्र वृक्ष की परिणाम रूपी डाली से मोह रूपी वायु चलने से समकित रूपी फल टूट गया, परन्तु पृथ्वी पर नहीं पहुँचा यह बीच ही में है तब तक के परिणाम को "सास्वादन गुणस्थान" कहते हैं।

3. तीसरे गुणस्थान का लक्षण - सम्यक्त्व और मिथ्यात्व से मिश्रित श्रीखड के समान मीठे और खट्टे स्वाद जैसा नालिकेल द्वीप के मनुष्य का दृष्टांत - जिस द्वीप में खाने के लिए सिर्फ नारियल ही होते हैं, उसे नालिकेल द्वीप कहते हैं। वहाँ मनुष्यों ने न अन्न को देखा है और न ही उसके विषय में कुछ सुना है अतः एव उनको अन्न में रुचि नहीं होती और न ही द्वेष ही होता है। इस प्रकार मोहनीय कर्म का उदय रहता है तब जीव को जैन धर्म में प्रीति नहीं होती और अप्रीति भी नहीं होती अर्थात् श्री वीतराग ने जो जैन धर्म में कहा है वही सच्चा है, इस प्रकार एकान्त श्रद्धा रूप प्रेम भी नहीं होता है और वह धर्म झूठा है, अविश्वसनीय है, इस प्रकार अरुचि रूप द्वेष भी नहीं होता।

4. चौथे गुणस्थान का लक्षण - सात प्रकृतियों का क्षयोपशम आदि करने पर जीव की जो अवस्था होती है उसे चौथा "अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान" कहते हैं। वे सात प्रकृतियों ये हैं - 1 अनन्तानुबन्धी क्रोध 2 मान - 3 माया, 4 लोभ 5 समकित मोहनीय 6 मिश्र मोहनीय 7 मिथ्यात्व मोहनीय है। जिनका उदय तात्त्विक रुचि का निमित्त होकर भी औपशमिक या क्षायिक भाववाली तत्त्व रुचि का प्रतिबंध करता है। सम्यक्त्व का घात करने में असमर्थ मिथ्यात्व के शुद्ध दलिकों को सम्यक्त्व मोहनीय कहते हैं।

इस गुणस्थान में प्रमुखता से तीन प्रकार का सम्यक्त्व हो सकता है।

1. क्षायिक सम्यक्त्व - इसमें चार अनन्तानुबन्धी एव तीन दर्शन मोहनीय इन सात प्रकृतियों का सर्वथा क्षय हो जाता है।

2. उपशम सम्यक्त्व - इसमें चार अनन्तानुबन्धी एव तीन दर्शन मोहनीय इन सात प्रकृतियों का उपशम हो जाता है। अर्थात् उनका उदय सर्वथा रुक जाता है।

3. क्षयोपशम सम्यक्त्व - इसमें सम्यक्त्व मोहनीय के विपाकोदय अर्थात्

फल की अनुभूति कराने वाले उदय की नियमा होती है। शेष 6 प्रकृतियों चार अनन्तानुबन्धी, मिथ्यात्व मोहनीय एवं मिश्र मोहनीय का विपाकोदय नहीं होता हैं।

टिप्पणी - इन 6 प्रकृतियों के विपाकोदय के अभाव में क्षय, क्षयोपशम, उपशम आदि की अपेक्षा अनेक भग होते हैं। थोकड़े में उस विस्तार को गोण किया गया है। विशेष जिज्ञासु कर्म सिद्धांत का अध्ययन करें।

5. देशविरति गुण स्थान का लक्षण - प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय के कारण जो जीव पाप जनक क्रियाओं से सर्वथा तो नहीं किन्तु अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय न होने के कारण देश (अंश) से पापजनक क्रियाओं से अलग हो सकते हैं, वे देशविरत कहलाते हैं। देशविरत को श्रावक भी कहते हैं। इनका स्वरूप विशेष देशविरत गुणस्थान है। इस गुणस्थान में आया हुआ जीव, जीवादिक नौ पदार्थों का जानकार होता है। नवकारसी आदि से लेकर वर्षातप आदि जानता है श्रद्धांन करता है, प्ररुपणा करता हैं और शक्ति के अनुसार प्रत्याख्यान करता है। एक व्रत से लेकर श्रावक के बारह व्रत तक एक से लेकर ग्यारह प्रतिमाएँ तक पालन करे यावत् सलेखना तक सथारा करे।

6. प्रमत्तसंयत गुणस्थान - प्रत्याख्याना वरण कषाय के क्षयोपक्षय से जो जीव पापजनक व्यापारों से विधिपूर्वक सर्वथा निवृत्त हो जाते हैं वे संयत (मुनि) हैं। लेकिन संयत भी जब तक प्रमाद का सेवन करते हैं तब तक वे प्रमत्त संयत कहलाते हैं, और उनके स्वरूप-विशेष को प्रमत्त संयत गुणस्थान कहते हैं।

7. अप्रमत्तसंयत गुणस्थान - जो संयत (मुनि) विकथा, कषाय आदि प्रमादों को नहीं सेवते हैं, वे अप्रमत्त संयत हैं और उनका स्वरूप विशेष जो अप्रमत्तसंयत गुणस्थान कहलाता है - इस गुणस्थान में व्यक्त प्रमाद नष्ट हो चुके हैं। किन्तु सज्ज्वलन कषाय एवं नो कषाय का मद उदय रहता है।

8. निवृत्ति बादर गुणस्थान - निवृत्ति अर्थात् अध्यवसाय बादर अर्थात् भिन्न-भिन्न जिस गुण स्थान में आए हुए सम समय के त्रिकालवर्ती सभी जीवों के अध्यवसाय भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, उस को निवृत्ति बादर गुणस्थान भी कहते हैं। इस गु में स्थितीघात, रसघात, गुण-श्रेणी, गुण संक्रान्त

स्थितिबन्ध ये पांच कर्म पहले के गु की अपेक्षा अपूर्व होते हैं। अतः इसे अपूर्वकरण गुणस्थान कहते हैं।

9. अनिवृत्ति बादर गुणस्थान - अ - नहीं, निवृत्ति - अध्यवसाय, बादर-मित्र-मित्र अर्थात् जिस गुणस्थान में समसमयवर्ती त्रैकालिक जीवों के चाहे बढ़ते परिणाम हो, चाहे उतरते परिणाम हो उस-उस समय के परिणामों में मित्रता नहीं होती उस अवस्था को अनिवृत्ति बादर गुणस्थान कहते हैं।

10. सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान - इस गुणस्थान में सम्पराय अर्थात् कषाय (लोभ) के सूक्ष्म खण्डों का ही उदय होने से इसका सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान ऐसा सार्थक नाम प्रसिद्ध है। जिस प्रकार धुले हुए गुलाबी रंग के कपड़े में लालिमा (सुखी) सूक्ष्म-झीनी-सी रह जाती है, उसी प्रकार इस गुणस्थानवर्ती जीव संज्वलन लोभ के सूक्ष्म खण्डों का वेदन करता है। इसलिए इसे सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान कहते हैं।

11. उपशान्त कषाय वीतराग छदमस्थ गुणस्थान - जिसके कषाय उपशांत हुए हैं, राग का भी सर्वथा उदय नहीं है और जिनको छदम (आवरणभूतघातिकर्म) लगे हुए हैं, वे जीव उपशांत कषाय वीतराग छदमस्थ हैं और उनके स्वरूप विशेष को उपशांत कषाय वीतराग छदमस्थ गुणस्थान कहते हैं।

शरद ऋतु में होने वाले सरोवर के जल की तरह मोहनीय कर्म के उपशम से उत्पन्न होने वाले निर्मल परिणाम इस गुणस्थान वाले जीव के होते हैं। आशय यह है कि मोहनीय कर्म की सत्ता तो है परन्तु उदय नहीं होता है।

12. क्षीणकषाय वीतराग छदमस्थ गुणस्थान - मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय होने के पश्चात् ही यह गुणस्थान प्राप्त होता है। इस गुणस्थानवर्ती जीव के भाव स्फटिक मणि के निर्मल पात्र में रखे हुए जल के समान होते हैं। क्योंकि मोहनीय कर्म सर्वथा क्षय हो जाते हैं। राग भी नहीं शेष रहता है। जो मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय कर चुके हैं, किन्तु क्षीण कषाय (आवरण का आवरण) अभी विद्यमान है, उनको क्षीण कषाय वीतराग कहते हैं और उनके स्वरूप विशेष को क्षीण कषाय वीतराग छदमस्थ गुणस्थान कहते हैं।

13. सयोगिकेवली गुणस्थान - जो चार भागिक (चतुर्भागीय) दर्शनवारण, मोहनीय और अंतराय) का क्षय करने के पश्चात् ही मोहनीय दर्शन प्राप्त कर चुके हैं। जो पदार्थ के ज्ञान में अन्तर्गत हैं।

आदि की अपेक्षा नहीं रखते हैं और योग (आत्मवीर्य, शक्ति, उत्साह, पराक्रम) से सहित है, उन्हें सयोगीकेवली कहते हैं और उनके स्वरूप विशेष को सयोगी केवली गुणस्थान कहते हैं।

14. अयोगी केवली गुणस्थान - जो केवली भगवान योगो से रहित हैं वे अयोगी केवली कहलाते हैं, अर्थात् जब सयोगी केवली मन, वचन और काया के योगों का निरोध कर योग रहित शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं तब वे अयोगी केवली कहलाते हैं, और उनके स्वरूप विशेष को अयोगी केवली गुणस्थान कहते हैं। इस गुण स्थान में 5 लघु अक्षर (अ, इ, उ, ऋ, ए) के उच्चारण जितनी स्थिति तक रहकर - 1 वेदनीय 2. आयुष्य 3 नाम और 4 गोत्र - इन चार अघातीय कर्म का क्षय करके अफुसमाण (दूसरे समय का स्पर्श न करनेवाली) गति से, एक समय की अविग्रह (बिना मोड़वाली) गति से औदारिक तैजस् और कर्मण शरीर को छोड़कर सिद्ध गति को प्राप्त होते हैं। सिद्ध गति में जन्म नहीं, मरण नहीं, जरा नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं, दुःख नहीं, दारिद्र्य नहीं, मोह नहीं, माया नहीं, कर्म नहीं, काया नहीं, चाकर नहीं, टाकर नहीं, गुरु नहीं, चेला नहीं, भूख नहीं, प्यास नहीं, ज्योति में ज्योति विराजमान हैं। अनंत सुखो में लीन, अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुखसायिक चारित्र, निराबाध, अक्षय स्थिति, अमूर्तिक, अगुरु लघु, अनंतवीर्य सहित विराजमान होते हैं।

3. स्थिति द्वार*

पहले गुणस्थान के तीन भंग हैं - 1 अनादि - पर्यवसित (अभिधि जीव की उपेक्षा) जिसकी आदि नहीं और अन्त भी नहीं, 2 अनादि सपर्यवसित (भिधि जीव की उपेक्षा) जिसकी आदि नहीं, किन्तु अन्त है, 3. सादि सपर्यवसित जिसकी आदि भी है और अन्त भी है। प्रतिपाती सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा तीसरे भग की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन अर्ध पुद्गल परापत्तन काल की है।

दूसरे गुणस्थान की स्थिति ज एक समय उ छह आवलिका ही है। तीसरे और बारहवे गुणस्थान की स्थिति ज.उ अन्तर्मुहूर्त की है। चौथे गुणस्थान की स्थिति ज.अन्तर्मुहूर्ति और उ तेनीस बार

झाड़ों की है।

पाचवे और तेरहवे गुणस्थान की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त और उ देशोन्न
ग्रोड पूर्व की है।

छठे गुणस्थान की जघन्य स्थिति एक समय की उ देशोन्न ग्रोड पूर्व की
है।

सातवे, आठवे, नौवे, दसवे और ग्यारहवे गुणस्थान की स्थिति ज, एक
समय उ अन्तर्मुहूर्त की है।

बारहवे गुणस्थान की स्थिति नध्य रीति में पाच तन्त्रु अक्षय के अनुसार
करने में जितना काल लगे, उतना है।

एक भी क्रिया नहीं हैं ।

3 मिथ्यात्वभिमुख होने से एव अनतानुबधी कषाय का उदय होने से मिथ्यात्व ही क्रिया लगना सम्व है ।

5. सत्ता द्वार ⁴

पहले गुणस्थान से ग्यारहवे गु तक आठों ही कर्मों की सत्ता होती है । बारहवे गुणस्थान में सात 7 कर्मों की सत्ता है और तेरहवे तथा चौदहवे गु में चार आघातिया कर्मों की सत्ता रहती है ।

4 आत्मा के साथ कर्मों का लगा रहना सत्ता है ।

5 क्योंकि बारहवे गु. में मोहनीय कर्म का अभाव हो जाता है ।

6. बन्ध द्वार ⁶

तीसरे गुणस्थान को छोड़कर पहले से सातवे गु तक सात तथा आठ कर्मों का बन्ध होता है (जब सात कर्मों का बन्ध होता है तथा आयु कर्म नहीं बन्धता) । तीसरे, आठवे और नौवे गुणस्थान में आयु-कर्म के सिवाय सात कर्मों का बन्ध होता है । दसवे गुणस्थान में मोहनीय और आयु के सिवाय छह कर्मों का बन्ध होता है । ग्यारहवे, बारहवे और तेरहवे गुणस्थान में एक सातावेदनीय का ही बन्ध होता है । चौदहवे गुणस्थान में बन्ध नहीं होता है ।

6 आत्माके साथ कर्मों का क्षीर-नीर के समान एकमेव हो जाना ।

7. उदय द्वार ⁷

पहले गुणस्थान से दसवे गुणस्थान तक आठों कर्मों का उदय होता है । ग्यारहवे तथा बारहवे गुणस्थान में मोहनीय कर्म के सिवाय सात कर्मों का उदय होता है । तेरहवे तथा चौदहवे गु. में चार अघातिया कर्मों का उदय होना है ।

7 अबाधाकाल पूर्ण होने पर कर्म का फल देना उदय कहलाता है ।

8. उदीरणा द्वार ⁸

पहले से लेकर छठे गुणस्थान तक तीसरे गुण. को छोड़कर

आठ कर्मों की उदीरणा होती है (सात की उदीरणा हो तो आयु कर्म की नहीं होती) तीसरे में आठ कर्मों की उदीरणा, सातवे, आठवे और नौवे गुणस्थान में छह कर्मों की उदीरणा, (आयु और वेदनीय छोड़कर) दसवे गुणस्थान में छह या पांच कर्मों की उदीरणा (छह की हो तो पूर्वोक्त दो छोड़ना और पांच की हो तो मोहनीय भी छोड़ देना)। ग्यारहवे गु में पांच कर्मों की उदीरणा, बारहवे गु में पूर्वोक्त पांच कर्मों की या नाम ओर गोत्र इन दो कर्मों की उदीरणा होती है। तेरहवे गु में पूर्वोक्त दो की उदीरणा होती है या किसी की नहीं होती। चौदहवे गुणस्थान में उदीरणा नहीं होती।

8 कर्मों की स्थिति पूर्ण होने से पहले ही तपस्या, लोच आदि के द्वारा उन कर्म को उदय में लाना उदीरणा है।

9. निर्जरा द्वार ⁹

पहले गुणस्थान से दसवे गु तक आठो कर्मों की निर्जरा होती है। ग्यारहवे तथा बारहवे गु में मोहनीय कर्म के सिवाय सात कर्मों की निर्जरा होती है और तेरहवे तथा चौदहवे गु में चार अघातिया कर्मों की निर्जरा होती है।

9 आशिक रूप से कर्मों का आत्मा से अलग होना।

10. भाव द्वार

भाव पांच होते हैं - औदायिक भाव 2 औपशमिक भाव 3 क्षायिक भाव 4 क्षायोपशमिक भाव और 5 पारिणामिक भाव।

पहले दूसरे और तीसरे गु में औदायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक ये तीन भाव होते हैं। चौथे से ग्यारहवे गु तक उपशम श्रेणी वाले में पांचो भाव होते हैं। चौथे से बारहवे गु तक क्षपक- श्रेणी वाले में औपशमिक छोड़कर शेष चारो भाव पाये जाते हैं। तेरहवे और चौदहवे गु में औदायिक, क्षायिक और पारिणामिक भाव - ये तीन भाव होते हैं, तथा सिद्धो में क्षायिक और पारिणामिक - ये दो भाव होते हैं।

1 गति कषाय आदि कर्मों के उदय से होने वाले भाव को औदायिक कहते हैं।

जैसे क्रोध आदि

छः भेद पाए जाते हैं दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, असत्री तिर्यक पंचेन्द्रिय इनका अपर्याप्त, संज्ञी पंचेन्द्रिय का पर्याप्त और अपर्याप्त । तीसरे गु. में जीव का एक ही भेद पाया जाता है - संज्ञी का पर्याप्त । चौथे गु. में संज्ञी का पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो भेद पाए जाते हैं । पांचवे से लेकर चौदहवे गुणस्थान तक जीव का एक ही भेद संज्ञी पंचेन्द्रिय का पर्याप्त पाया जाता है ।

15. गुणस्थान द्वार

प्रत्येक गुणस्थान अपने-अपने गुण से संयुक्त होता है । पहले गु. से चौथे गु. तक आठ बोल पाये जाते हैं । 1. असंयत 2. अप्रत्याख्यानी 3. अविरत 4. असंवृत 5. अपण्डित 6. अजाग्रत 7. अधर्मी 8. अधर्मव्यवसायी । पाचवें गु. में आठ बोल पाये जाते हैं - 1. संयतासंयत 2. प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी 3. विरताविरत 4. संवृतासंवृत 5. बालपण्डित 6. सुप्त-जाग्रत 7. धर्माधर्मी 8. धर्मा-धर्मव्यवसायी । छठे गुणस्थान से चौदहवें गु. तक आठ बोल पाये जाते हैं 1. संयती 2. प्रत्याख्यानी 3. विरत 4. संवृत 5. पण्डित 6. जाग्रत 7. धर्मी 8. धर्मव्यवसायी ।

दूसरी तरह से गुणस्थान द्वार -

गत्यन्तर जाते मार्ग में गुणस्थान तीन - पहला, दूसरा और चौथा ।

अमर गु. तीन - 3, 12, 13

अप्रतिपाति गु. तीन - 12, 13, 14

तीर्थकर नामकर्म के बन्धक गु. पांच - 4, 5, 6, 7, 8

तीर्थकर के लिए अस्पृश्य गु. पांच - 1, 2, 3, 5, 11

शाश्वत गु. छ - 1, 4, 5, 6, 7, 13

अनाहारक गु. पांच - 1, 2, 4, 13, 14

मोक्ष प्राप्त करने वाला उस भव में कम से आठ गु. अवश्य प्राप्त करता है 4, 7, 8, 9, 10, 12, 13, 14 और ससार अवस्थान काल में कम से कम प्रथम गु. सहित नौ गु. प्राप्त करता है ।

1, 2, 4 विग्रह गति एवं 13 केवली समु. की अपेक्षा ।

16. योग द्वार

पहले दूसरे और चौथे गुणस्थान में 13 योग - 1 आहारक और 2 आहारक मिश्र) - इन दो को छोड़कर पाये जाते हैं। तीसरे गु में 10 योग (1 औदारिक मिश्र 2 वैक्रिय मिश्र 3 आहारक 4 आहारक मिश्र और 5 कर्मण, इन पांचो को छोड़कर) पाये जाते हैं। पाचवे गु में 12 योग (1 आहारक 2 आहारक मिश्र और 3 कर्मण को छोड़कर) पाये जाते हैं। छठे गु में कर्मण के सिवाय चौदह योग पाये जाते हैं। सातवें गु से बारहवें गु तक चार मनोयोग, चार वचन योग और एक औदारिक - इस प्रकार नौ योग पाये जाते हैं। तेरहवें गु में सात योग होते हैं - 1 सत्य मनोयोग 2 व्यवहार मनोयोग 3 सत्य वचन योग 4 व्यवहार वचन तथा 5 औदारिक 6 औदारिक मिश्र तथा 7 कर्मण चौदहवें गुणस्थान में योग नहीं होता।

कर्म ग्रन्थ भाग 2 में सातवें गुण में अहारक द्विक वैक्रिय दिक का उदय नहीं बताया है। तथा प्रज्ञापना सूत्र के 21 वें पद में भी अप्रमत्तावस्था में अहारक शरीर नहीं बताया है अतः 7 वें गुण में आहारक व वैक्रिय कायायोग नहीं मान कर 9 योग मानना ही उचित लगता है। मन्तातर से पंच संग्रह के प्रथम द्वार (योग वियोग) मार्गणा की सतरहवीं गाथा के अनुसार सातवें गुणस्थान में वैक्रिय एवं आहारक योग मानने, ग्यारवा योग भी मानी जाती है।

17. उपयोग द्वार

पहले और तीसरे गुणस्थान में छह उपयोग हो सकते हैं - तीन अज्ञान - मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभग ज्ञान और तीन दर्शन - चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन। दूसरे, चौथे और पाचवें गु में छह उपयोग होते हैं - 3 ज्ञान, 3 दर्शन।

छठे से बारहवें गु तक (10 वें गु को छोड़कर) सात उपयोग होते हैं - पूर्वोक्त छह और एक मन पर्याय ज्ञान। तेरहवें और चौदहवें गु में केवलज्ञान और केवलदर्शन - ये दो ही उपयोग होते हैं। 10 वें गुणस्थान में उपयोग पावे चार-मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान, मन-पर्याय ज्ञान।

18. लेश्या द्वार

पहले गुणस्थान से छठे गु. तक छ लेश्याएं पाई जाती हैं। सातवें

गु. मे तेजो, पद्म और शुक्ल- ये तीन लेश्याएं होती है । आठवे से बारहवें तक एक शुक्ल लेश्या ही होती है । तेरहवें गु. मे एक परम शुक्ल लेश्या होती है । चौदहवे गु. में लेश्या नहीं होती ।

19. हेतु द्वार

हेतु सत्तावन होते है - 5 मिथ्यात्व 25 कषाय, 15. योग और 12 अन्न (6 काय 5 इन्द्रिय, 1 मन) ।

पहले गुणस्थान मे आहारक और आहारक मिश्र को छोड़कर शेष पचपन हेतु पाये जाते हैं । दुसरे गुणस्थान में पांच मिथ्यात्व को छोड़कर पचास हेतु पाये जाते हैं । तीसरे गु. मे पूर्वोक्त पचास में से चार अनन्तानुबन्धी औदारिक मिश्र वैक्रिय मिश्र और कर्मण - इन सातों के सिवाय 43 हेतु पाये जाते है । चौथे गु. मे पूर्वोक्त 43 के साथ ही औदारिक मिश्र, वैक्रिय मिश्र और कर्मण ये तीन विशेष होकर 46 हेतु पाये जाते हैं । पांचवे गु. मे छियालीस मे से अप्रत्याख्यान की चौकडी त्रस की अविरति और कर्मण ये छह घटाकर चालीस हेतु पाये जाते है । छठे गु. में सत्ताईस हेतु पाये जाते है - 14 योग और 13 कषाय । सातवे आठवें गु. में औदारिक मिश्र, वैक्रिय वैक्रिय मिश्र और आहारक, आहारक मिश्र - इन पांच को छोड़कर बाईस हेतु पाये जाते है । नौवे गु. मे हास्य आदि छह के सिवाय सोलह हेतु पाये जाते है । दसवे गु. में नौ योग और सज्वलन का लोभ, ये दस हेतु पाये जाते है । ग्यारहवे तथा बारहवें गु. मे चार मन के, चार वचन के और एक औदारिक - ये नौ हेतु पाये जाते है । तेरहवें गु. मे सात हेतु पाये जाते है - 1 सत्य मन योग, 2 व्यवहार मन योग, 3 सत्य भाषा 4. व्यवहार भाषा 5. औदारिक 6 औदारिक मिश्र और 7 कर्मण । चौदहवे गु. में कोई भी हेतु नहीं होता ।

20. मार्गणा द्वार

यहा मार्गणा का तात्पर्य आने व जाने के मार्ग से है । जैसे - पहले गुणस्थान में आगति मार्गणा मे आगति मार्गणा पांच यानी पहले गुणस्थान मे जीव पांच गुणस्थान (2,3,4,5,6) से जा सकता है और गति मार्गणा 5 यानी पहले गुणस्थान का उत्तर पांच गुणस्थान (3,4 5,6,7) मे जा सकता है ।

55 पहले गुणस्थान में आगति मार्गणा पाच (दूसरे, तीसरे, चौथे, पाचवे और छठे गुणस्थान से आ सकते हैं) गति मार्गणा पाच (तीसरे, चौथे, पाचवे, छठे* सातवे गुणस्थान में जा सकते हैं) ।

टिप्पणी - उपशमनीकरण (पच सग्रह के) की 28 वी गाथा की टीका में पहले से सीधा छठे गुण में जाना बताया है ।

31 दूसरे गुणस्थान की आगति मार्गणा तीन (चौथा, पाचवा, छठा गुणस्थान) गति मार्गणा एक (पहला गुणस्थान) ।

45 तीसरे गुणस्थान की आगति मार्गणा चार (पहला, चौथा, पाचवाँ, छठा गुणस्थान) गति मार्गणा पाँच (गिरे तो पहला, चढ़े तो चौथा, पाचवाँ छठा सातवाँ गुणस्थान ।

46 चौथे गुणस्थान की आगति मार्गणा नौ (पहले से ग्यारहवे गुणस्थान तक दूसरे व चौथे को छोड़कर) गति मार्गणा छ (चढ़े तो पाचवाँ, छठा, सातवा, गिरे तो तीसरा, दूसरा, पहला गुणस्थान)

46 पाँचवे गुणस्थान की आगति मार्गणा चार (पहला, तीसरा, चौथा, छठा) गति मार्गणा छ. (चढ़े तो छठा* सातवाँ, गिरे तो चौथा, तीसरा, दूसरा, पहला गुणस्थान) ।

टिप्पणी - उवसमदिष्टि अन्तकरणे टिओ कोई देश विरययि लमेइ कोई पमतोयमत भावयि - शतक चूर्णि मों सातवाँ, गिरे तो तीसरा, दूसरा, पहला गुणस्थान) ।

56 छठे गुणस्थान आगति मार्गणा पाच, पहला, तीसरा, चौथा, पाचवा, सातवा । गति मार्गणा 6 (चढ़े तो सातवाँ, गिरे तो पाँचवा, चौथा, तीसरा, दूसरा, पहला गुणस्थान) ।

63 सातवे गुणस्थान की आगति मार्गणा छह (पहला, तीसरा, चौथा, पाँचवा, छठा, आठवा गुणस्थान) गति मार्गणा तीन (चढ़े तो आठवा गिरे तो छठा, काल करे तो चौथा गुणस्थान) ।

23 आठवे गुणस्थान में आगति मार्गणा दो (सातवा, नवा गुणस्थान) गति मार्गणा तीन (चढ़े तो नवाँ, गिरे तो सातवा, काल करे तो चौथा गुणस्थान)

23 नवे गुणस्थान में आगति मार्गणा दो (आठवा, दसवा गुणस्थान) मार्गणा तीन (चढ़े तो दसवाँ, गिरे तो आठवा, काल करे तो चौथा गु ।

- २५ दसवें गुणस्थान की आगति मार्गणा दो (नवां, ग्यारहवां गुणस्थान) गति मार्गणा चार (चढ़े तो ग्यारहवा-बारहवा गिरे तो नवां, काल करे तो चौथे गुणस्थान) ।
- १२ ग्यारहवें गुणस्थान की आगति मार्गणा एक - दसवां गुणस्थान गति मार्गणा दो - गिरे तो दसवां, काल करे तो चौथा गुणस्थान ।
- ११ बारहवें गुणस्थान की आगति मार्गणा एक - दसवां गुणस्थान गति मार्गणा एक - तेरहवां गुणस्थान ।
- १० तेरहवें गुणस्थान की आगति मार्गणा एक - बारहवां । गति मार्गणा एक - चौदहवां गुणस्थान ।
- १० चौदहवें गुणस्थान की आगति मार्गणा एक - तेरहवां गुणस्थान । गति मार्गणा एक - मोक्ष ।

21. ध्यान द्वार

पहले, दूसरे और तीसरे गुणस्थान में आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान पाये जाते हैं । चौथे और पांचवें में आर्तध्यान, रौद्रध्यान और धर्मध्यान पाये जाते हैं । छठे में आर्तध्यान और धर्मध्यान होता है । सातवें में केवल धर्मध्यान ही है । आठवें से तेरहवें तक शुक्लध्यान पाया जाता है और चौदहवें गुणस्थान में परमशुक्ल ध्यान होता है ।

मन की एकाग्रता को ध्यान कहते हैं ।

22. दण्डक द्वार

पहले गुणस्थान में चौबीस दण्डक, दूसरे में चौबीस में से पांच स्थावर के छोड़कर उन्नीस, तीसरे और चौथे में (उन्नीस में से तीन विकलेन्द्रिय के छोड़कर) सोलह, पांचवें में सैंझी तिर्यच पंचेन्द्रिय और मनुष्य - ये दो छठे से चौदहवें गु. तक मनुष्य का एक दण्डक पाया जाता है ।

23. जीवयोनि द्वार

पहले गुणस्थान में चौरासी लाख जीवयोनि । दूसरे गु. में (एकेन्द्रिय जीव)

52 लाख छोडकर) बतीस लाख । तीसरे चौथे गु मे (तीन विकलेन्द्रिय की छह लाख घटाकर छब्बीस लाख, पाचवे गु मे (चौदह लाख मनुष्यो की और चार लाख तिर्यचो की- इस प्रकार) अठारह लाख, छठे गु से चोदहवे गु तक मनुष्य की चौदह लाख जीवयोनिया पायी जाती है ।

24. निमित्त द्वार

पहले एव तीसरे गुणस्थान मे दर्शन मोहनीय का उदय निमित्त होता है । दुसरे गुण मे दर्शन मो का अनुदय एव चरित्र मो अनन्तानुबधी का उदय निमित्त होता है । चोथे गुणस्थान मे दर्शन मोहनीय का क्षय, उपक्षम या क्षायोपशम निमित्त होता है । पाचवें गु से सातवें गुणस्थान चरित्र मो का क्षायोपशम निमित्त होता है । आठवे से दसवे गु तक चरित्र मो का क्षय या उपशम निमित्त होता है । ग्यारहवे गु मे चारित्र मोहनीय का उपशम निमित्त होता है । बारहवे गु मे चारित्र मो का क्षय निमित्त होता है । तेरहवे गु मे ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय एवं अन्तराय कर्म का क्षय तथा योग का सद्भाव निमित्त होता है । चौदहवे गु मे योग का अभाव निमित्त होता है ।

25. चारित्र द्वार

पहले से चौथे गुणस्थान तक चारित्र नही होता, पाचवे गु मे देश चारित्र, छठे और सातवे गु मे तीन चारित्र होते है - 1 सामायिक 2 छेदोपस्थानीय और 3. परिहार विशुद्धि । आठवे, नौवे गु मे दो चारित्र होते है - 1 सामायिक 2 छेदोपस्थानीय । दसवे गु मे 1 सूक्ष्मसम्पराय चारित्र होता है । ग्यारहवे से चौदहवे गु तक यथाख्यात चारित्र होता है ।

26 आकर्ष द्वार

जीव एक भव की अपेक्षा और अनेक भवो की अपेक्षा प्रत्येक गुणस्थान को उत्कृष्ट कितनी बार स्पर्श सकता है, उस स्पर्श की सख्या विशेष को आकर्ष पहले गुणस्थान का तीसरा भग (सादि सपर्यवसित),

और पांचवा गुणस्थान एक भव की अपेक्षा जघन्य एक बार उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार बार प्राप्त हो सकता है । अनेक भवों की अपेक्षा जघन्य दो बार उत्कृष्ट असंख्यात बार प्राप्त हो सकता है । दूसरा गुणस्थान एक की अपेक्षा जघन्य एक बार उत्कृष्ट दो बार और अनेक भवों की अपेक्षा जघन्य दो बार उत्कृष्ट पांच बार प्राप्त हो सकता है । छठा और सातवां गुणस्थान मिलाकर एक भव की अपेक्षा जघन्य एक बार उत्कृष्ट पृथक्त्व 100 बार, अनेक भवों की अपेक्षा जघन्य दो बार उत्कृष्ट पृथक्त्व 1000 बार । आठवा, नवा, दसवा, गुणस्थान एक भव में जघन्य 1 बार उत्कृष्ट 4 बार, अनेक भवों की अपेक्षा जघन्य दो बार उत्कृष्ट नौ बार । ग्यारहवां गुणस्थान एक भव में जघन्य 1 बार उत्कृष्ट 2 बार । अनेक भवों की अपेक्षा जघन्य 2 बार उत्कृष्ट चार बार । बारहवा, तेरहवा, चौदहवा गुण. एक भव में एक बार और अनेक भवों में भी एक बार ।

27. समकित द्वार

क्षायिक सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान से चौदहवे गु. तक होता है । उपरान्त सम्यक्त्व चौथे गु. से ग्यारहवे गु. तक होता है । क्षायोपशमिक (वेदक) सम्यक्त्व चौथे से सातवे गु. तक होता है । सास्वादन सम्यक्त्व दूसरे गु. में होता है । मिथ्यात्व और मिश्र गु. में सम्यक्त्व नहीं है ।

28. अन्तर द्वार

पहले गुणस्थान के तीन भंग हैं - 1 अनादि अपर्यवसित (सदा से मित्यादृष्टि है और सदा रहेंगे) 2. अनादि- सपर्यवसित (जिनके मिथ्यात्व की आदि नहीं, किन्तु अन्त है), 3 सादि - सपर्यवसित (जिनके मिथ्यात्व की आदि भी है और अन्त भी है) ।

इन तीन भंगों में से तीसरे भंग का अन्तर ज. अन्तर्मुहूर्त और उ. 2 छासठ सागर झाड़ोरी है । दूसरे गुणस्थान का अन्तर जघन्य पत्न्योपन 3 असंख्यातवें भाग का, उत्कृष्ट देशोन् अर्ध पुद्. परावर्तन द. । तीसरे से लेकर ग्याहवे गु. तक (चौथा गुण. छोड़कर) का अन्तर ज. अन्तर्मुहूर्त 4 उ. देशोन् । 5 कम) अर्ध पुद्गल परावर्तन है । चौथा गुण. का अन्तर

जघन्य एक समय उत्कृष्ट देशोन अर्धपुदगल परावर्तन काल । बारहवे, तेरहवे और चौदहवे गु का अन्तर नहीं है ।

टिप्पणी - जीवाभिगम सुत्र मे सादि सपर्यवसित मिथ्या दृष्टि का अन्तर 66 सागरोपम झाझेरी कहा है । तदनुसार थोकडे मे उल्लेख किया है । कर्म ग्रन्थो के मन से मिथ्या दृष्टि का अन्तर 132 सागरोपम झाझेरी कहा गया है । उनके अनुसार 66 सागरोपम झाझेरी सम्यग्दृष्टि रह कर जीव सम्यग मिथ्या दृष्टि को प्राप्त करके पून 66 सागरोपम सम्यक दृष्टि रह कर फिर मिथ्या दृष्टि बनता है । तदनुसार मिथ्या दृष्टि का अन्तर 132 सागरोपम झाझेरी माना गया है ।

29. क्षेत्र प्रमाण द्वार

सास्वादन आदि सभी गुणस्थान वाले जीव लोक के असख्यातवे भाग मे रहे हुए है, मिथ्यादृष्टि सम्पूर्ण लोक मे है और समुदघात अवस्था मे सयोगी भी सम्पूर्ण लोकव्यापी होते है ।

30. गुणस्था स्पर्शना द्वार

3-4 थे गुण वाले आठ-आठ राजू को, दूसरे गुण - वाले बारह राजू को, 5 वे गुण वाले छह राजू को, 12 वे गुण - वाले राजू के अस भाग को तथा शेष गुणस्थान वाले सात राजू प्रमाण लोक को स्पर्श करते है ।

31. अल्पबहुत्व द्वार (जीव प्रमाण)

सबसे कम उपशमक (8-11 वे गुण वर्ती) तथा उपशात मोही (11 वे गुणवर्ती) जीव एक समय मे 54 तक पाये जाते है श्रेणि के सपूर्ण काल की अपेक्षा सख्यात पाये जाते है इनके क्षपक (8-10 वे गुणस्थानवर्ती) उससे 12 वे और 14 वे गुण वाले परस्पर तुल्य जीव स गुण (प्रतिपदमान की अपेक्षा 108) उससे 8,9,10 गुण मे परस्पर तुल्य विशेषाधिक (प्रतिपध्यमात की अपेक्षा 162) । उनसे तेरहवे गुण वाले जीव स गुण और ये (पृथक्त्व करोड)।

उनसे सातवें गुण सं. गुणा । (प्रथक 100 करोड) उनसे छठे गुण वाले सं गुणा ये ज. और उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार करोड पाये जाते हैं । उनसे 5 वे गुण वाले असं. गुणा उससे दूसरे गुण वाले अस गुणा इनसे तिसरे गुण वाले अस गुणा उससे चौथे गुण वाले असं गुणा. उससे पहले गुण वाले अनंत गुणा ।

६. पुच्छिस्सुणं (वीर स्तुति) अर्थ सहित

पुच्छिस्सु णं समणा माहणा य
अगारिणो या परतित्थिया य ।
से केइ णेगंत हियं धम्म - माहु
अणेलिसं साहु समिक्खयाए ॥१॥

अन्वयार्थ = समणा श्रमणो, यमाहणा = और ब्राह्मणो, अगारिणो = गृहस्थो, पर तित्थिया य = और परतीर्थीको ने, पुच्छिस्सु = पूछा कि, से केइ = वह कौन है, णेगंतहियं = एकान्त हितकर, अणेलिसं साहु = अनुपम श्रेष्ठ, धम्म - धर्म को, समिक्खयाए = सम्यक् प्रकार से विचार कर, आहु = कहा ।

भावार्थ - श्रमण, ब्राह्मण, क्षत्रियादि गृहस्थ और शाक्य आदि अन्य मतावलम्बी लोगो ने पूछा कि वे कौन है जिसने एकान्त रूप से आचारण योग्य हितकर श्रुत चरित्र रूप अनुपम श्रेष्ठ धर्म का कथन सम्यक् रूपेण किया ।

कहं च णाणं कहं दसणं से,
सीलं कहं णाय सुयस्स आसी ।
जाणासि णं भिक्खु । जहा तहेणं,
अहा सुयं बूहि जहा णिसत ॥२॥

अन्वयार्थ - से णाय सुयस्स = उस ज्ञात पुत्र का, णाण = ज्ञान कैसा था ? कह दसण = दर्शन कैसा था, सील कहं आसी = यम नियम रूप आचरण कैसा था ? भिक्खु = हे भिक्षु, जहा तहेण जाणासि = जैसा उनको जानते हो, अहा सुयं = जैसा सुना है, जहा णिसत = जैसा निश्चय किया, बूहि-कहिये।

भावार्थ - हे गुरुवर्य । क्षत्रिय कुल आभूषण श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का वस्तु के विशेष धर्मों को जानने का बोध-ज्ञान कैसा था ? सामान्य धर्मों को जानने वाला उपयोग दर्शन कैसा था ? उनका यम नियम रूप शील कैसा था ? हे भगवन् । यह आप यथार्थ रूप में जानते हो, उनके बारे में जैसा सुना हो, अथवा गुरुकुल में रहते आपने जैसा देखा हो, उसे अनुग्रह कर मुझे कहिए ।

खेयण्णए से कुसले महेसी,
अणंत णाणी य अणंत दंसी ।
जसंसिणो चक्खु पहे टियस्स,
जाणाहि धम्मं च धिइं च पेहि ॥3॥

अन्वयार्थ - से खेयन्नए = वे संसार के दुःखों को जानने वाले थे, कुसले महेसी = निपुण महर्षि थे, अणंत णाणीय अणंत दंसी = अनन्त ज्ञानी और अनन्त दर्शी थे, जसंसिणो = यशस्वी, चक्खु पहे टियस्स = लोचन मार्ग पर स्थित, धम्मं जाणाहि = धर्म को जानो, धिइं च पेहि = और धैर्य को देखो विचारो ।

भावार्थ - श्रमण भगवान महावीर स्वामी कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न होने एवं चतुर्गति संसार परिभ्रमण के दुःखों को जानने वाले थे तथा कर्मों को हटाने, निवारण के उपदेश में निष्णात थे तपश्चरण करने एवं परीषहोपसर्गों को सहने से महर्षि थे । वे अविनाशी ज्ञानवान् थे, अनन्तदर्शी थे, नरेन्द्रो, देवेन्द्रों और असुरेन्द्रों से बढकर यशस्वी थे, भवस्थ केवली अवस्था में लोक के चक्षु पथ पर स्थित थे । उनके श्रुत एवं चारित्र धर्म को जानो एवं उनके धैर्य को देखो ।

उड्डं अहेयं तिरियं दिसासु,
तसा य जे थावर जे य पाणा ।
से णिच्च णिच्चेहिं समिक्ख पण्णे
दीवेव धम्मं समियं उदाहु ॥4॥

अन्यवार्थ- उड्डं अहेयं तिरियं = ऊपर नीचे तिरछे, दिसासु = दिशाओं में, तसा य ज = जो त्रस और, थावर जे य पाणा = स्थावर जो प्राणी रहने हे, णिच्च णिच्चेहि = नित्य और अनित्य से, समिक्ख = सम्यक् प्रज्ञा से जानकर, से पत्ते = उन प्रज्ञा पुरुष ने, दीवेव दीपक वन्, समिय = समनन्त, धम्म = धर्म का, उदाह = कथन किया है ।

भावार्थ - उर्ध्व, अध. और तिरछी दिशाओं में जो भी त्रस और स्थावर प्राणी है, उनकी नित्य और अनित्य उभय अवस्थाओं को सम्यक् ज्ञान से

पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को प्रकट करने के लिये अथवा अथवा
 डूबते हुए समस्त प्राणियों के लिये ईश्वर के लिये अथवा अथवा
 वास्तव धर्म की प्रकृति समझने के लिये

से सत्व दंती अनिमृद पत्नी

गिरान गंधे धिडमं हियप्पा ।

अणुत्तरे सत्व जगसि दिज्जं

गथा अइए अनए अणाउ ॥5॥

अन्वयार्थ - से सत्वदंती = वह सर्वदंती, अनिमृद पत्नी = अपरजाल
 ज्ञानवाले, गिरान गंधे = मूल गुण और उत्तर गुण की विशुद्ध पालना करने
 वाले, धिडम = धैर्यवान्, हियप्पा = आत्मा स्वरूप में रहने वाले, सत्व
 जगसि-अखिल विश्व में, अणुत्तरे दिज्ज = सर्वोत्तम विद्वान्, गथा अइए =
 ग्रन्थियों से रहित, अमए-निर्भय, अणाउ = आयु से रहित ।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर सर्वदंती, केवल ज्ञानी थे, मूलगुणों
 और उत्तर गुणों के विशुद्ध पालक थे, परम धैर्यवान् आत्म स्वरूप में रमण
 करने वाले थे । अखिल विश्व में सर्वोत्तम ज्ञानी तथा बाह्य आभ्यन्तर
 ग्रन्थियों से रहित थे, समग्र भयों से रहित और चतुर्विध आयु से विमुक्त थे।

से भूइ पण्णे अणिए अचासी,

ओहंतरे धीरे अणंत चक्खू ।

अणुत्तरं तप्पइ सूरिए वा,

वइ रोयणिंदे व तमं पगासे ॥6॥

अन्वयार्थ - से भूइ पण्णे = वे अनन्त ज्ञानी, अणिए आचारी =
 इच्छानुसार विचरण करने वाले, ओहंतरे = संसार तरने वाले, धीरे =
 धैर्यवान्, अणंत चक्खू = अनन्त दर्शनवान्, सूरिए व = सूर्य की तरह,
 अणुत्तर = सर्वाधिक, तप्पइ = तपता है, वइ रोयणिन्दे व = अग्नि सदृश, तम
 पगासे = अन्धकार से प्रकाश करने वाले हैं ।

भावार्थ - श्री महावीर स्वामी अनन्त ज्ञानी, अप्रतिबद्ध ।

संसार सागर में तिरने वाले, धैर्यवान, अनन्त दर्शनधारी, सूर्य के समान प्रकाशवान हो तप रहे थे। वे अग्नि के समान अज्ञान अन्धकार को नष्ट कर पदार्थों को यथार्थ रूप में प्रकाशित करते थे।

अणुत्तरं धम्ममिणं जिणाणं
णेया मुणी कासव आसुपण्णे
इंदेव देवाण महाणुभावे
सहस्स णेया दिविणं विसिद्धे ॥७॥

अन्वयार्थ - आसुपण्णे = शीघ्र बुद्धि वाले, कासव = काश्यप गोत्रिय, मुणी = मुनि, जिणाणं = जिनवरों के, इणं अणुत्तरं = इस सर्वश्रेष्ठ, धम्मं णेया = धर्म के प्रणेता है, दिविणं = स्वर्गलोक में, सहस्स देवाणं = हजारों देवताओं का, इंदेव = इन्द्र नेता हैं, महाणुभावे विसिद्धे = महान् प्रभावशाली है।

भावार्थ - शीघ्र पारगामी तीक्ष्ण बुद्धि वाले, काश्यप गोत्रवान् मुनि श्री वर्धमान स्वामी ऋषभादि जिनेश्वर भगवंतों के इस सर्वश्रेष्ठ धर्म के आद्य प्रणेता है। जिस तरह देवलोक में हजारों देवताओं का नेता इन्द्र महान् प्रभावशाली होता है उसी प्रकार भगवान् महावीर त्रिलोक में सर्वोत्तम श्रेष्ठ, अद्वितीय महाप्रभावक है।

से पण्णया अक्खय सागरे वा,
महोदही वावि अणंत पारे
अणाइले वा अकसाइ मुक्के
सक्केव देवाहि वड्ढं जुइमं ॥८॥

अन्वयार्थ - से सागरे वा = वे श्रमण भगवान् महावीर समुद्र सदृश, पण्णया अक्खय = प्रज्ञा से अक्षय, महोदही वावि = स्वयं भू श्रमण समुद्र जन, अणंत पारे = असीम सामर्थ्यवान, अणाइले वा = निर्मल मनिमान, अक्खय = कषाय से रहित, मुक्के = संयोगो से विमुक्त, सक्केव = शक्येन्द्र की तरह, देवाहि वड्ढं = देव के अधिपति, जुइमं = अत्यन्त तेजस्वी है।

भावार्थ - भगवान् महावीर प्रज्ञा से समुद्र के समान अक्षय हैं, स्वयं

सुन्दरानन्द जी के द्वारा लिखित है, यह पुस्तक अनेक विद्वानों
के द्वारा पढ़ी गई है और वे सब इस पुस्तक की प्रशंसा करते हैं।
इस पुस्तक में अनेक नवीन विचारों का उल्लेख है।

ये वीरिण पडिपुण वीरिण
सुदंसणे वा णग सब सेहे ।
सुरालए वासी सुदागरे से,
विरायए णेग गुणोव वेए ॥१॥

अन्वयार्थ - ये = वे वर्धमान स्वामी, वीरिण = उत्तम वीर से
सुदंसणे = पूर्ण शक्ति सम्पन्न, सुदंसणे वा = जिस प्रकार सुन्दरानन्द जी
सुदंसणे = सब पर्वतों में श्रेष्ठ, सुरालये = देवतोग में, वासी = रहने वाले को
सुदंसणे = हर्षित करने वाले, णेग गुणों-वेए = अनेक गुणों से युक्त होने
विराय = सुरोन्नत होता है ।

भावार्थ - वीर्यान्तराय कर्म का समूल उच्छेद करने से भी वर्धमान स्वामी
उत्तम से परिपूर्ण शक्ति सम्पन्न है, सब पर्वतों में सुन्दरानन्द पर्वत प्रधान है
उसी प्रकार सर्व दर्शनों में जिन दर्शन सर्वश्रेष्ठ है । जैसे देवलोक में रहने वाले को
वै देवलोक हर्षजनक है वैसे ही वीर जिनेश्वर अनेक गुणों से सम्पन्न होने से
अखिल विश्व को अपने गुणों से आनन्द देनेवाले है, अतः प्रीतिकर समेत है ।

जाइ जसो दंसण णाण सीले ॥१॥

अन्वयार्थ - महतो पव्वयस्स = महान सुन्दरानन्द पर्वत का, सुदंसण यश
गिरिस्स = सुदर्शन गिरि का, जसो पवुच्चई = यश कहा जाता है, इन - पर्वतों
तरह, समणे णाय - पुते एतोवमे = ज्ञात पुत्र श्रमण भगवान महावीर को वसी
की उपमा दी जाती है, जाइ जसो दंसण णाण सीले = जाते, यश, दर्शन
ज्ञान और शील से श्रेष्ठ है ।

भावार्थ - उस महान् पर्वत सुदर्शन गिरि का यश पूर्वोक्त प्रकार से
गया है, उसी के समान ज्ञातपुत्र श्रमण महावीर है । वे वीर भगवान्
महान्, यश में अद्वितीय, दर्शन में अनुपमेय, ज्ञान में अनुत्तरणीय

सर्वोत्तम है। सर्वप्रधान उपमा देने की दृष्टि से ही यहाँ सुमेरु का परिचय दिया गया है।

गिरिविरे वा निसहाययाणं,
रुयए व सेट्ठे वलयायताणं
तओवमे से जग भूइ पण्णे,
मुणीण मज्झे तमुदाहु पण्णे ॥15॥

अन्वयार्थ - आयाण = लम्बे आकार वाले, गिरिविरे = पर्वतों में श्रेष्ठ,
निसह व = निषध प्रधान है, वलयायताणं = वर्तुल पर्वतों में, रुयए व = जैसे
रुचक पर्वत, सेट्ठे = श्रेष्ठ है, जगभूइ पण्णे = संसार में अधिक बुद्धिमान को,
तओवमे = वही उपमा है, पण्णे = बुद्धिमान, मुणीण मज्झे = मुनियों के मध्य
में, तमुदाहु = भगवान् महावीर को श्रेष्ठ कहते हैं।

भावार्थ - जैसे दीर्घ आकार वाले पर्वतों में गिरिराज निषध प्रधान है, अथवा
गोलाकार पर्वतों में रुचक पर्वत श्रेष्ठ है, उसी तरह संसार के समस्त ज्ञानवान्
मुनियों में सर्वोत्तम प्रज्ञावान् भगवान् महावीर स्वामी है, ऐसा बुद्धिमान पुरुषों
ने कहा है।

अणुत्तरं धम्म-मुई रइता
अणुत्तरं ज्ञाण वर झियाइं
सुसुक्क सुक्कं अपगंड सुक्कं
संखिन्दु - एगंतवदात-सुक्कं ॥16॥

अन्वयार्थ - अणुत्तर धम्म - मुई रइता = सर्वोत्तम श्रुत - चरित्र धर्म को
कहकर, अणुत्तरं ज्ञाण वरं झियाइं = सर्वोत्तम श्रेष्ठ ध्यान ध्याते थे, सुसुक्क
सुक्कं = श्रेष्ठ शुक्ल वस्तुवत् शुक्ल था, अपगंड सुक्कं = दोष रहित शुक्ल
था, संखिन्दु = शख और चन्द्रमा वत्, एगंतवदात सुक्कं = एवान्त जगत् में
विशुद्ध शुक्ल।

भावार्थ - ज्ञान पुत्र श्रमण भगवान् महावीर सर्वोत्तम श्रुत, धर्म और
चारित्र्य धर्म का निरूपण करके अनुत्तर ध्यान करने थे। सुसुक्क धम्म व
शुक्ल वस्त्र के समान शुक्ल, निदोष तथा शब्द अन्तर्गत चन्द्रमा के समान

सर्वथा स्वच्छ और शुद्ध होता था ।

अणुत्तरग्ग परमं महेसी
असेस कम्मं स विसोहइत्ता ।
सिद्धि गइ साइ - मणतपत्ते,
माणेण सीलेण य दंसणेण ॥17॥

अन्वयार्थ - स महेसी = वे महर्षि, नाणेण सीलेणं य दसंणेण - ज्ञान, चरित्र और दर्शन से, असेस कम्मं = सम्पूर्ण कर्मों को, विसोहइत्ता = शोधन करके, अणुत्तरग्ग = सर्वोत्तम अग्र, परमं सिद्धि = प्रधानसिद्धि, गइ = गति को प्राप्त हुए, साइ - मणत पत्ते = जिसका आदि है, अन्त नहीं ।

भावार्थ - महर्षि वीर जिनेश्वर ने ज्ञान, शील और दर्शन के द्वारा सम्पूर्ण कर्मों का विशोधन - क्षय करके, सर्वोत्तम श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त की, जिसकी आदि तो है, अन्त नहीं है ।

रुक्खेसु णाए जह सामली वा
जसि रइं वेदयति सुवण्णा
वणेसु वा णंदण माहु सेड्ड,
णाणेण सीलेण य भूइपण्णे ॥18॥

अन्वयार्थ - जह = जैसे, रुक्खेसु णाए = वृक्षों में जगत्प्रसिद्धि, सामली वा - शात्मली वृक्ष है, जसि - जिस पर, सुवण्णा - सुपर्ण = भवन पति विशेष, रइं वेदयइ = आनन्द का अनुभव करते हैं, वणेसु वा णंदण सेड्ड माहु = वनों में सर्वश्रेष्ठ नन्दन वन कहा है, णाणेण सीलेण य भूइ पण्णे = ज्ञान और चरित्र से सर्वोत्तम श्रेष्ठ महावीर स्वामी को कहते हैं ।

भावार्थ - जैसे वृक्षों में देवकुरु क्षेत्र में रहा शात्मली वृक्ष सर्वश्रेष्ठता के रूपमें प्रसिद्ध है, उन पर भवनपति देव सुपर्णकुमार रमण का आनन्द लेते हैं अथवा सम्पूर्ण वनों में नन्दन वन सर्वोत्तम देवों का क्रीडा स्थल है, उसी प्रकार जीवरक्षा की प्रमुख प्रज्ञा वाले भगवान् महावीर ज्ञान शील में सर्वोत्तम कहे जाते हैं ।

थणियं व सद्गण अणुत्तरे उ
चंदोव ताराण महाणुभावे
गंधेसु वा चंदण माहु सेट्ठं
एवं मुणीणं अपडिण्णमाहु ॥१९॥

अन्वयार्थ - सद्गण = शब्दों में थणियं = मेघ गर्जन, अणुत्तरे = प्रधान है और ताराणं = ताराओं में, महाणुभावे चंदो = महा प्रभावी चन्द्रमा श्रेष्ठ है, तथा गंधेसु चन्दण सेट्ठ माहु = गंधों में चन्दन गन्ध श्रेष्ठ है। एवं = इसी प्रकार मुणीणं = मुनियों में, अपडिण्णमाहु = कामना विमुक्त भगवान् महावीर श्रेष्ठ कहे जाते हैं।

भावार्थ - सम्पूर्ण शब्दों में मेघगर्जन श्रेष्ठ है, समस्त नक्षत्रों में प्रकाश वाला चन्द्रमा प्रधान है और गंध वाले पदार्थों में गोशीर्ष चन्द्रन प्रधान है उसी प्रकार मुनियों में निःस्पृह निराकांक्षी महावीर को बुद्धिमान लोग सर्वश्रेष्ठ कहते हैं।

जहा संयंभु उदहीण सेट्ठे
नागेसु वा धरणिंद -माहु सेट्ठे ।
खोओदए वा रसवेजयंते ,
तवोवहाणे मुणि वेजयंते ॥२०॥

अन्वयार्थ - जहा उदहीण = जैसे समुद्रों में, संयंभू सेट्ठे = स्वयंभू रमण समुद्र श्रेष्ठ है, नागेसु धरणिंद सेट्ठे माहु = नाग कुमारों धरणेंद्र को श्रेष्ठ कहते हैं खोओदए वा रस वेजयंते = इक्षु रसोदक सब रसों में श्रेष्ठ है, तवो वहाणे = विशिष्ट तप के कारण, मुणि वेजयंते = मुनि श्री भगवान् महावीर सर्वश्रेष्ठ है।

भावार्थ - समुद्रों में स्वयंभू रमण समुद्र श्रेष्ठ है, नाग कुमारों में धरणेंद्र प्रमुख है, इक्षु रसोदक सर्व रसवानों में श्रेष्ठ है, उसी प्रकार समस्त तपस्वियों में श्रमण महावीर स्वामी सर्वश्रेष्ठ है।

हत्थीसु एरावण माहु णाए
सीहो मियाणं सलिलाण गंगा
पक्खी सु वा गरुले वेणुदेवे

णिव्वाण - वादीणिह णाय पुत्ते ॥21॥

अन्वयार्थ - हत्थीसुणाए = हाथियों में जगत्प्रसिद्ध, एरावणमाहु = ऐरावत हाथी को कहते हैं, मियाणं सीहो = मृगों में सिंह, सलिलाण गगा = नदियोंमें गंगा, पक्काखीसु वा गरुले वेणुदेवे = पक्षियों में वेणु देव गरुड श्रेष्ठ है, इह निव्वाण वादीण = इस ससार में मोक्ष वादियों में, णाय पुत्ते = ज्ञात पुत्र महावीर प्रधान है ।

भावार्थ - इन्द्रवाहन रूप में प्रसिद्ध ऐरावत हाथी समग्र हाथियों में श्रेष्ठ है, पशुओं में वनराज सिंह प्रमुख है, नदियों के जलो में गंगा जल सर्वोत्तम है, पक्षियों में वेणुदेव अर्थात् गरुड प्रधान है, उसी प्रकार निर्वाणवादियों में ज्ञात पुत्र भगवान् महावीर सर्वश्रेष्ठ है ।

जोहेसु णाए जह वीस सेणे,
पुप्फेसु वा जह अरविंद माहु
खत्तीण सेट्ठे जह दंतवक्के
इसीण सेट्ठे तह वद्धमाणे ॥22॥

अन्वयार्थ - जहा णाए = जैसे जग जाहिर, वीससेणे जाहेसु = विश्वसेना वासुदेव योद्धाओं में, सेट्ठ = श्रेष्ठ है, जहा पुप्फेसु = जैसे फूलों में, अरविंद माहु = कमल को प्रधान कहते हैं, जह खत्तीण = जैसे क्षत्रियों के मध्य में, दंत वक्के = दन्त वक्र चक्रवर्ती श्रेष्ठ है, तह = उसी प्रकार, इसीण वद्धमाणे सेट्ठे = ऋषियों में वर्धमान स्वामी श्रेष्ठ हैं ।

भावार्थ - जैसे योद्धाओं में वासुदेव जगत्प्रसिद्ध योद्धा है, जैसे पुष्पों में कमल पुष्प प्रधान है, जैसे क्षत्रियों में दन्त चक्रवर्ती श्रेष्ठ है, उसी प्रकार ऋषियों में वर्धमान स्वामी प्रधान है ।

दाणाण सेट्ठ अमयप्पयाणं,
सच्चेसु वा अणवज्जं वयंति
तवेसु वा उत्तम बंभ चेरं,
लोगुत्तमे समणे णायपुत्ते ॥23॥

अन्वयार्थ - दाणाणं = समस्त दोनों में, अभय - प्रयाणसेढुं = अभयदान श्रेष्ठ है, सच्च्वेसु = सत्य वचनों में, अणवज्जं वयंति = पीडाकारी न हो, उस सत्य वचन को श्रेष्ठ कहते हैं, तवेसु = तपो में, बभवेरं उत्तम = नव कोटि युक्त ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ है, समणे = श्रमणों में, णायुपुत्त = ज्ञात पुत्र वर्धमान स्वामी, लोगुत्तमे = संसार में सर्वोत्तम है ।

भावार्थ - जगत् के सर्वदानों में सर्वश्रेष्ठदान अभयदान है, समस्त सत्य वाक्यों में दुःख न पहुँचाने, घात न करने वाला वाक्य श्रेष्ठ है, तपो ने नव बाड सहित ब्रह्मचर्य का पालन करना श्रेष्ठ तप है, उसी प्रकार ज्ञात पुत्र भगवान् महावीर तीन लोक में सर्वोत्तम है ।

टिईण सेड्डा लव सत्तमा वा,
सभा सुहम्मा व सभाण सेड्डा ।
निब्बाण सेड्डा जह सव्व धम्मा,
ण णाय पुत्ता परमत्थि णाणी ॥24॥

अन्वयार्थ - टिईण = स्थिति वाले में, लव सत्तमा = पाँच अनुत्तर विमानवासी देव, सेड्डा = श्रेष्ठ है, सभाण = सब सभाओं में, सुहम्मा सभा सेड्डा = सुधर्मा सभा श्रेष्ठ है, जह सव्व धम्मा = जैसे सर्वधर्मों में, निब्बाण सेड्डा = मोक्ष श्रेष्ठ है, ण णाय पुत्ता परमत्थि णाणी = ज्ञात पुत्र महावीर स्वामी से कोई श्रेष्ठ ज्ञान वान् नहीं है ।

भावार्थ - जितने भी स्थिति वाले हैं, उनमें पाँच अनुत्तर विमानों में रहने वाले देव सर्वोत्कृष्ट स्थितिवाले हैं, समस्त सभाओं में सुधर्मा सभा अनेक क्रीडा स्थलों से सम्पन्न होने से श्रेष्ठ है, जैसे सभी धर्मों - कुप्रावचनिक भी अपने दर्शन को निर्वाण प्रदाता कहते हैं । अतः निर्वाण श्रेष्ठ है, इसी प्रकार ज्ञात पुत्र से श्रेष्ठ कोई ज्ञानवान् नहीं है ।

पुद्धो वमे धुणइ विगय गेहि
न सण्णिहिं कुव्वइ आसु पण्णे ।
तरिउं समुद्धं च महाभवोद्धं,

अनयंकरे वीर अणंत चक्षू ॥25॥

अनयार्थ - पुढेवने = पृथ्वी के समान, सबके आधार नूत, धुन्ड = कर्म नल को दूर करने वाले, विग्य गेही = अनासक्त है, अणु एणु = शीघ्र बुद्धि वाले, न सज्जिहिं कुब्ज = न संग्रह करते हैं। सनुई व = सारवत्, महानबोध = विशाल संसार के, तरिउं = पार कर गये, अनयंकरे = प्रसिद्ध को अनयदाता, वीर = महावीर जिनेश्वर, अणंत चक्षू = अनन्त दर्शन वाले हैं

भावार्थ - भगवान महावीर सर्वप्राणियों के लिए पृथ्वी के समान आधारभूत है, अष्ट प्रकार के कर्मदल सनूह को नष्ट करनेवाले है, गृध्दि भाव से सर्वेष्ट रहित है, सर्वत्र सर्वदा उपयोगवान है, किसी भी वस्तु की सन्निधि नहीं करते है, नहामयकर जन्म-मरण रूप संसार को तैर कर पाए हुए हैं, जिन तत्त्व मोक्ष को प्राप्त हो गए हैं, अभ्यंकर है और अनन्त ज्ञान - दर्शन सम्पन्न है।

कोहं च माणं च तहे व मायं

लोमं चउत्थं अज्झत्थ दोसा

एयाणि वंता अरहा महेसी,

न कुब्बइ पावं ण कारवेइ ॥26॥

अनवयार्थ - अरहा महेसी = अरिहंत महर्षि, कोहं च माणं च तहेव मायं = क्रोध, मान और माया तथा उसी प्रकार, चउत्थं लोहं = चौथे रूप, एयाणि = इन, अज्झत्थ दोसा = अध्यात्म दोषों को, वंता = छोड़ करके, ण पावं कुब्बइ = न पाप करते है, न कारवेइ = न करवाते है।

भावार्थ - अर्हन् महर्षि महावीर क्रोध, मान, माया और चौथे लोभ ऊपर रूप आत्मा को विकृत करने वाली वैभाविक वृत्ति को त्याग करके चल रहे थे। वे स्वयं न पापमय प्रवृत्ति का सेवन करते थे और न पाप का सेवन करवाते थे।

किरिया - किरिय वेणइयाणु वायं,

अण्णाणियाणं पडियच्च टाण।

से सब्ब वाय इइ वेयइत्ता,

उवड्डिए सज्जम दीह राय ॥27॥

अन्वयार्थ - किरिय - अकिरिय = क्रियावादी, अक्रियावादी के मत को वेणइया - अणुवायं = विनय वादी के कथन को, अण्णाणियाण = अज्ञान वादियों के, ठाणं = मत को, पडियच्च = जानकर, से इति = उस वीर प्रभु ने इस प्रकार, सब्ब वायं = सब वादियों के मत को, वेयइत्ता = जानकर के, संजम दीह राय = संयम में जीवन भर के लिए, उवहिए = स्थित हुए हैं।

भावार्थ - क्रियावादी, अक्रियावादी, विनयवादी तथा अज्ञानवादियों के मत को जानकर, अर्थात् प्रतिति करके उस वीर प्रभु ने सभी वादों को जानकर जीवन - पर्यन्त संयम भाव में स्थिर हुए।

से वारिया इत्थी सराइभत्तं,
उवहाणवं दुक्ख खयड्डयाए ।
लोगं विदित्ता आरं परं च,
सब्बं प्रभू वारिय सब्ब वारं ॥28॥

अन्वयार्थ - से प्रभु = उन प्रभु महावीर स्वामी ने, सराइ भत्त इत्थी वारिया = रात्रि भोजन सहित स्त्री को छोड़कर के, दुक्ख- खटड्डयाए = दुखों को क्षय करने के लिए, उवहाणव = तपस्या में लगे थे, आरं पर च लोग विदित्ता = इस लोक और परलोक को जानकर, सब्ब वारं सब्ब वारिया = सब प्रकार के पापों को छोड़ दिया।

भावार्थ - प्रभु महावीर ने रात्रि भोजन के साथ - साथ स्त्री सेवन, ससर्ग का भी परित्याग कर दुःखों को क्षय करने के लिए तपश्चर्या में लग गए। इस लोक और परलोक तथा इनके कारणों को जानकर के समस्त पापकर्मों का पूर्णरूपेण त्याग कर दिया था।

सोच्चा य धम्मं अरहंत भासियं,
समहियं अड्ड - प ओव सुद्धं ।
तं सदहणा य जणा अणाउ,
इंदेव देवाहिव आगमिस्संति ॥29॥

अन्वयार्थ - अरहंत भासियं = अरिहत देव द्वारा कथित, समाहियं =

युक्ति युक्त, अहु - पओव - सुध्द = अर्थ और पदों से पूर्ण शुध्द, धम्म सोच्चा = धर्म को सुनकर, तू सदद हणा = उनमें श्रद्धा रखने वाले, जणा = मनुष्य, अणाउ = आयु कर्म रहित होकर मोक्ष को पाते हैं, या इदेव = अथवा वे इन्द्र, देवाहिव = देवताओं के अधिपति, आगमिस्सति = होते हैं ।

भावार्थ - अहिरत प्रभु द्वारा प्रतिपादित युक्ति- युक्त, अर्थ और पद दोनों दृष्टियों से निर्दोष धर्म को सुनकर उस पर जो श्रद्धा रखते हैं, वे भव्य जन आयुर्कर्म से रहित होकर मुक्ति को पाते हैं अथवा इन्द्र के समान देवताओं के स्वामी बनते हैं ।

७. दशवैकालिक के चार अध्ययन - अर्थसहित

दुमपुष्फिया प्रथम अध्ययन

धम्मो मंगलमुक्किटटं, अहिंसा संजमो तवो ।

देवा वि तं णमंसंति, जस्स धम्मो सया मणो ॥१॥

अन्वयार्थ - अहिंसा = प्राणियों की हिंसा का त्याग करना तथा जीवों की रक्षा करना, संजमो - संयम और तवो = तपरूप धम्मो = श्रुत - चारित्र रूप धर्म, मंगलं = कल्याणकारी और उक्किटटं = श्रेष्ठ है । जस्स = जिसका , मणो = मन, सया = सदा, धम्मो - धर्म में लगा रहता है, त = उसको, देवा = देव, वि-भी, नमंसंति = नमस्कार करते हैं ॥१॥

भावार्थ - श्रुत - चारित्र रूप धर्म में लीन प्राणी देवों का भी पूज्य बन जाता है ।

जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रस ।

ण य पुप्फंकिलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं ॥२॥

अन्वयार्थ - जहा = जिस प्रकार, भमरो = भ्रमर, दुमस्स = वृक्ष के, पुप्फेसु = फूलों में से, रसं = रस को, आवियइ = पीता है, य = और, पुप्फं = फूल को, ण किलामेइ = पीड़ित नहीं करता, य = और सो = वह भ्रमर, अप्पयं = अपनी आत्मा को, पीणेइ = संतुष्ट कर लेता है ॥२॥

भावार्थ - जैसे भ्रमर अनेक वृक्षों के फूलों से थोड़ा-थोड़ा रस चूसता है । इस प्रकार वह फूलों को कष्ट नहीं पहुंचाता हुआ अपनी आत्मा को संतुष्ट कर लेता है ।

एमेए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो ।

विहंगमा व पुप्फेसु, दाणभत्तेसणे रया ॥३॥

अन्वयार्थ - एमेए = इसी प्रकार ये, लोए = लोक में, जे = जो, मुत्ता = द्रव्य भाव परिग्रह से मुक्त, समणा = श्रमण तपस्वी, साहुणो = साधु, संति = हैं वे, पुप्फेसु = फूलों में, विहंगमा = पक्षियों के, व = समान, दाणभत्तेसणे = दाता द्वारा दिए हुए आहारादि की गवेषणा में, रया = रत रहते हैं ॥३॥

भावार्थ - साधु, गृहस्थियों को असुविधा न पहुंचाते हुए अनेक घरों से थोड़ा थोड़ा प्रासुक आहारादि ग्रहण करने में ठीक उसी प्रकार रत रहते हैं,

त्यागता है, वह सकप्पस्स = इच्छाओं के, वस गओ = वश में होकर, पए पए = पद - पद पर, विसीअंतो = खेदित होकर, सामण्णं = श्रमण धर्म का, कहु नु = किस प्रकार, कुज्जा = पालन कर सकता है ॥१॥

भावार्थ - जो इन्द्रियो के विषयो का त्याग नहीं करता, उसकी इच्छाएं हमेशा बढ़ती रहती हैं, उसे कभी सन्तोष नहीं होता। सन्तोष न होने से मानसिक कष्ट होता है, जिससे चारित्र-धर्म की आराधना नहीं हो सकती। अतः सर्वप्रथम इन्द्रियो को वश में करना चाहिए।

वत्थगंधमलंकारं, इत्थीओ सयणाणि य ।

अच्छंदा जे न भुंजंति, न से चाइत्ति वुच्चइ ॥२॥

अन्वयार्थ - जे = जो पुरुष, अच्छंदा = पराधीन होने के कारण, वत्थ = वस्त्र, गंध = गन्ध, अलंकारं = आभूषण, इत्थीओ - स्त्रीयों को और सयणाणि = शय्या को, न = नहीं, भुंजंति = भोगता है, से = वह, चाइत्ति = त्यागी, ण = नहीं, वुच्चइ = कहा जाता है ॥२॥

भावार्थ - जो पुरुष रोग आदि किसी कारण से पराधीन होकर विषयों का सेवन नहीं कर सकता, वह त्यागी नहीं कहलाता, किन्तु अपनी इच्छा से विषयों का त्याग करने वाला ही वास्तव में सच्चा त्यागी कहलाता है।

जे य कंते पिए भोए, लद्धे वि पिड्ढिकुब्बइ ।

साहीणे चयइ भोए, से हु चाइत्ति वुच्चइ ॥३॥

अन्वयार्थ - जे = जो पुरुष, लद्धे - प्राप्त हुए, वि = भी, कंते = मनोहर, पिए = प्रिय, भोए = भोगने योग्य, य = और, साहीणे = स्वाधीन, भोए = भोगो को, पिड्ढिकुब्बइ = उदासीनतापूर्वक, चयइ = त्याग देता है, से = वह, हु = निश्चय से, चाइत्ति = त्यागी, वुच्चइ = कहलाता है।

भावार्थ - भोगो की प्राप्ति होने पर भी और भोगो की स्वतंत्रता रहते हुए भी जो भोगो को नहीं भोगता, वही आदर्श त्यागी कहलाता है।

समाइ पेहाए परिव्वयंतो सिया मणो निस्सरइ बहिद्धा ।

ण सा महं णोवि अहं पि तीसे, इच्चेव ताओ विणएज्ज रागं ॥४॥

अन्वयार्थ - समाइपेहाए = समभाव पूर्वक, परिव्वयतो = संयम मार्ग में

विचरण करते हुए साधु का, मणो = मन, सिया = कभी, बहिध्दा = समय से बाहर, निस्सरइ - निकल जाए तो, सा = वह स्त्री, मह = मेरी, ण = नहीं है, और, अह = मैं, पि = भी, तीसे-उसका, णो वि = नहीं हूँ, इच्चेव = इस प्रकार विचार कर, ताओ = उस स्त्री पर से, राग = राग भाव को, विणएज्ज = दूर करे ॥4॥

आयावयाही चय सोगमल्लं । कामे कमाहि कमियं खु दुक्खं ॥

छिदाहि दोस विणएज्ज रागं । एवं सुही होहिसि सपराए ॥5॥

अन्वयार्थ - आयावयाही = आतापना तो और शरीर को तपस्या से सुखा डालो, सोगमल्ल = सुकुमारता को, चय = त्याग दो, कामे = काम-भोगों को, कमाही = दूर करो, खु = निश्चय ही, दुक्ख = दुःख, कमियं = दूर होगा, दोस = द्वेष को, छिदाहि = नष्ट करो, राग = राग को, विणइज्ज = दूर करो, एव = ऐसा करने से, सपराए = ससार में, सुही = सुखी, होहिसि = होओगे ॥5॥

भावार्थ - पूर्वोक्त गाथा में सूत्रकर्ता ने मनोनिग्रह का अन्तरंग उपाय बतलाया है। अब मनोनिग्रह का बाह्य उपाय बतलाते हुए कहते हैं कि समय से बाहर जाते हुए मन को वश में करने के लिए शरीर की सुकोमलता का त्याग कर के ऋतु अनुसार आतापना लेनी चाहिए, तपस्या करनी चाहिए और राग - द्वेष को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा करने से प्राणी सुखी होता है। .

पक्खदे जलिय जोइं, धूमकेउं दूरासयं ।

णेच्छति वतयं भुतु, कुले जाया अगंधणे ॥6॥

अन्वयार्थ - अगंधणे = अगन्धन नामक, कुले = कुल में, जाया = उत्पन्न हुए सर्प, जलिय = जलती हुई, धूमकेउ = धुआँ निकलती हुई = दूरासय कठिनाई से सहने योग्य, जोइं = अग्नि में, पक्खदे = गिर जाते हैं किन्तु, वतय - वमन किए हुए विष को, भुतु = भोगने की, न इच्छति = इच्छा नहीं करते ॥6॥

भावार्थ - सती राजमती रथनेमि से कहती है कि अगन्धन कुल में उत्पन्न हुए सर्प, अग्नि में जल कर मर जाना तो पसंद करते हैं, किन्तु उगले हुए विष को पुनः पीना नहीं चाहते।

धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो तं जीवियकारणा ।

वतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे ॥7॥

अन्वयार्थ - अजसोकामी = हे अपयश के इच्छुक । ते = तुझे, धिरत्थु = धिक्कार हो, जो = जो, तं = तू जीवियकारणा = असंयम रूप जीवन के लिए, वतं = वमन किए हुए को, आवेउं-पीना, इच्छसि = चाहता है । इसकी अपेक्षा तो, ते = तेरे लिए, मरणं = मर जाना, सेयं = श्रेष्ठ, भवे है ॥7॥

भावार्थ - सती राजमती चंचल चित्त बने हुए रथनेमि को संयम स्थिर करने के लिए उपदेश देती है कि संयम धारण कर के असंयम में आना निन्दनीय है । ऐसे असंयम पूर्ण और पतित जीवन की अपेक्षा तो संयमावस्था में मृत्यु हो जाना अच्छा है ।

अहं च भोगरायस्स, तं चसि अंधगवण्हिणो ।

मा कुले गंधणा होमो, संजम णिहुओ चर ॥8॥

अन्वयार्थ - अहं च = मैं राजमती, भोगरायस्स = भोजराज उग्रसेन की पुत्री हूँ, च = और, तं = तू, अंधगवण्हिणो = अन्धकवृष्णि = समुद्रविजय का पुत्र, असि = है, गंधणा कुले = गन्धन कुल में उत्पन्न सर्प के समान, मा होमो = मत हो, निहुओ = मन को स्थिर रखकर, संजमं = संयम का, चर पालन कर ॥8॥

भावार्थ - राजमती, रथनेमि से कहती है कि हम दोनों उच्च कुल में उत्पन्न हुए हैं । अतः उगले हुए विष को पुनः पी जाने वाले गन्धन कुल के साँप के समान न होना चाहिए ।

जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारीओ ।

वाया-विद्धोव्व हडो, अड्डिअप्पा भविस्ससि ॥9॥

अन्वयार्थ - तं = हे मुनि । तुम, जा = जा = जिन = जिन, नारीओ स्त्रियो को, दिच्छसि = देखोगे, जइ = यदि उन-उन पर, भावं = बुरे भाव, काहिंसी = करोगे तो, वाया-विद्धोव्व = वायु से प्रेरीत, हडो व्व = हड नामक वनस्पती की भांति, अड्डि अप्पा = अस्तिर आत्मा वाले, भविस्ससि = हो जाओगे ॥9॥

भावार्थ - राजमती रथनेमि से कहती है कि है मुनि । जिस किसी भी स्त्री को देखकर यदि तुम इस प्रकार काम - मोहित हो जाओगे, तो जैसे समुद्र के किनारे खड़ा हुआ हड नाम का वृक्ष हवा के एक झोके से समुद्र में गिर पड़ता है, वैसे तुम्हारी आत्मा भी उच्च पद से नीचे गिर जाएगी ।

तीसे सो वयणं सोच्चा, सजयाइ सुभासियं ।

अकुसेण जहा णागो, धम्मे सपडिवाइओ ॥10॥

अन्वयार्थ - सो = वह, रथनेमि, तीसे = उस, सजयाइ = सयमवती साध्वी के, सुभासिय = सुभाषित, वयण = वचन, सोच्चा = सुनकर, धम्मे = धर्म में, सपडिवाइओ = स्थिर हो गया, जहा = जैसे, अकुसेण = अकुश से, णागो = हाथी वश में हो जाता है ।

भावार्थ - ब्रह्मचारिणी राजमती के सुन्दर वचन सुनकर रथनेमि धर्म - मार्ग में उसी प्रकार स्थिर हो गए, जिस प्रकार अकुश से हाथी वश में हो जाता है ।

एवं करेति संबुद्धा, पडिया पवियक्खणा ।

विणियट्ठति भोगेसु, जहा से पुरिसुत्तमो । त्ति बेमि ।

अन्वयार्थ - संबुद्धा = तत्त्वज्ञ, पडिया = पाप से डरने वाले पण्डित, पवियक्खणा = विचक्षण मनुष्य, एव = ऐसा ही, करेति = करते हैं अर्थात् भोगेसु = भोगों से, विणियट्ठति - निवृत्त हो जाते हैं, जहा = जैसे, से = वह पुरिसुत्तमो = पुरुषों में उत्तम रथनेमि भोगों से निवृत्त हो गया ॥11॥ त्ति बेमि = हे जम्बू । जैसा मैंने भगवान से सुना है, वैसा ही कहता हूँ ।

भावार्थ - जो विवेकी होते हैं, वे विषय - भोगों के दोषों को जानकर उनका परित्याग उसी प्रकार कर देते हैं, जैसे रथनेमि ने कर दिया ।

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

खुड्डियायार तीसरा अध्ययन

जो निर्ग्रन्थ महर्षियों के आचरण करने योग्य नहीं है, ऐसे 52 अनाचार

का वर्णन इस अध्ययन में किया गया है ।

संजमे सुद्धिअप्पाणं, विप्पमुक्काण ताइणं ।
तेसिमेयमणाइण्णं, णिगंथाणं महेसिणं ॥1॥

अन्वयार्थ - संजमे = समय में, सुद्धिअप्पाणं = भली भांति स्थिर आत्मा वाले, विप्पमुक्काण = सांसारिक बन्धनों से रहित, ताइणं = छः काय जीवों के रक्षक, तेसिं = उन, निगंथाण = परिग्रह रहित, महेसिण = महर्षियों के, एय = ये = आगे कहे जाने वाले, अणाइण्णं = अनाचार है ।

उद्धेसियं कीयगडं णियागमभिहडाणि य ।
राइभत्ते सिणाणे य, गंधमल्ले य वीयणे ॥2॥

अन्वयार्थ - 1 उद्धेसिय = औद्देशिक, 2. कीयगडं = साधु के लिए खरीदा हुआ, 3. नियागं = किसी का आमंत्रण स्वीकार कर उसके घर से लिया हुआ आहार, 4 अभिहडाणि = साधु के लिए सामने लाया हुआ, य = और 5 राइभत्ते = रात्रि भोजन, य = और 6 सिणाणे = स्नान, 7. गंध-सुगंधित पदार्थों का सेवन, 8. मल्ले = फूला दि की माला, य = और 9 वीयणे = पंखादि से हवा लेना ॥2॥

सण्णिही गिहिमत्ते य, रायपिडे किमिच्छए ।
संवाहणा दंतपहोयणा य, संपुच्छणा देहपलोयणा य ॥3॥

अन्वयार्थ - 10, संनिही = घी गुड आदि वस्तुओं का संचय करना, 11. गिहिमत्ते = गृहस्थ के पात्र में भोजन करना, य = और, 12 रायपिडे = राजपिंड का ग्रहण करना, 13, किमिच्छए = तुमको क्या चाहिए इसप्रकार याचक से पूछकर जहां उसकी इच्छानुसार दान दिया जाता हो, ऐसी दानशाला आदि से आहारादि लेना, 14. संवाहणा = मर्दन करना, य = और, 15 दंतपहोयणा = अंगुली आदि से दांत धोना, 16 संपुच्छणा = गृहस्थों से सावध्य कुशल = प्रश्न आदि पूछना, य = और 17 देहपलोयणा = दर्पण

आदि ने कुछ डेहना ३

उद्धावर य गालीए, उत्तस्त य धारणहार ।
तेगिच्छं पहणा पाए, सनारंन्मं च जोइणो ॥५॥

अन्वयार्थ - 18. उद्धावर = जुड़ा खेलना, य = और, गालीए = लैपड
= पाता शतरंज आदि खेलना, य = और 19. उत्तस्त धारणहार = उत्त
धारण करना, 20. तेगिच्छं = रोग का इलाज करना, 21. पाए पहणा = पैरों
में जूते आदि पहिनना, च = और 22. जोइणो = अग्नि का, सनारंन्मं =
आरम्भ करना ॥५॥

सिज्जायरपिंडं च, आसंदी पलियंकए ।
गिहंतरणिसिज्जा य, गायस्सुव्वट्टणाणि य ॥५॥

अन्वयार्थ - 23. सिज्जायरपिंडं = शय्यातर का आहार लेना, च =
और, 24. आसंदी = वेत आदि के बने हुए आसन पर बैठना, 25 पलियंकए
= पलग पर बैठना, 26 गिहंतरणिसिज्जा = गृहस्थ के घर बैठना या दो घरों
के बीच बैठना, य = और, 27 गायस्सुव्वट्टणाणि = मैल उतारने के लिए
शरीर पर उबटन करना ।

गिहिणो वेयावडियं, जा य आजीववत्तिता ।
तत्ता णिव्वुड भोइत्तं, आउरस्सरणाणि य ॥६॥

अन्वयार्थ - 28 गिहिणो = गृहस्थ की, वेयावडिय = वेयावत्त करना
अर्थात् उसे आहारादि देना, य = और, जा = जौ, 29 आजीववत्तिता =
जाति, कुल आदि बताकर आजीविका करना, 30 तत्तानिव्वुड भोइत्तं = उसे
अच्छी तरह से प्रासुक नहीं हुआ है, ऐसे मिश्र आहार पानी का सेवन करना,
य = और, 31 आउरस्सरणाणि = रोग अथवा मूख से पीड़ित होने पर परले
भोगे हुए पदार्थों को याद करना या शरण चाहना ॥६॥

मूलए सिगबेरे य, उच्छुखंडे अणिव्वुडे ।

कंदे मूले य सच्चित्ते, फले बीए य आमए ॥7॥

अन्वयार्थ - 32 अनिबुडे = सचित्त, मूलए - मुल्ला, य = और 33 सिंगबेरे = अदरख, 34 उच्छुखंडे = इक्षुखण्ड- गंडेरी, य = और, 35 कंदे = कन्द वज्रकन्द आदि, 36. सच्चित्ते = सचित्त, मूले = मूल = जड, 37 फले = फल, आम, नीबू आदि, य = और 38 आमए = सचित्त, बीए - तिलादि बीजो का सेवन करना ॥7॥

सोवच्चले सिधवे लोणे, रोमालोणे य आमए ।

सामुद्दे पंसुखारे य, कालालोणे य आमए ॥8॥

अन्वयार्थ - 39 आमए = सचित्त, सोवच्चले = संचल नमक, 40 सिधवे लोणे = सैन्धव नमक, 41 रोमालोणे = रोमा नमक, 42 सामुद्दे = समुद्र का नमक, य = और 43 पंसुखारे = ऊषर नमक, य = और 44 आमए = सचित्त, कालालोणे = काला नमक का सेवन करना ॥8॥

धूवणे त्ति वमणे य, वत्थीकम्म विरेयणे ।

अंजणे दंतवणे य, गायब्भंगविभूसणे ॥9॥

अन्वयार्थ - 45 धूवणे त्ति = अपने वस्त्र आदि को धूप दे कर सुगन्धित करना, य = और 46 वमणे = औषधिआदि से वमन करना, 47 वत्थीकम्म = मलादि की शुद्धि के लिए बस्ती कर्म करना, 48 विरेयणे = जुलाब लेना, 49 अंजणे = आंखों में अंजन लगाना, 51. गायब्भंग = सहस्रपाक आदि तेलों से शरीर की मालिश करना, य = और 52. विभूसणे = शरीर को विभूषित करना ॥9॥

सव्वमेयमणाइण्णं, णिग्गंथाण महेसिणं ।

सजमम्मि य जुत्ताण, लहुभूयविहारिणं ॥10॥

अन्वयार्थ - सजमम्मि = संयम, य = और तप में, जुत्ताणं = लगे हुए,

लहुभूयविहारिण = वायु के समान अप्रतिबध विहार करने वाले, निग्गथाण = निग्रथ, महेसिण = महर्षिणो के, एय = ये, सव्व = सभी, आणइत्त = अनाचार है ॥10॥

पंचासव परिण्णाया, तिगुत्ता छसु सजया ।

पचणिग्गहणा धीरा, णिग्गथा उज्जुदसिणो ॥11॥

अन्वयार्थ - पंचासवपरिण्णाया = पाच आश्रवो के त्यागी, तिगुत्ता = मन, वचन और काय = गुप्ति से युक्त, छसु सजया = छ काय जीवो की रक्षा करने वाले, पचनिग्गहणा = पाच इन्द्रियो के निग्रह करने वाले, धीरा = परीषह उपसर्ग सहन करने में धीर, उज्जुदसिणो = सरल स्वभावी, निग्गथा = निर्ग्रन्थ होते हैं ॥11॥

आयावयंति गिम्हेसु, हेमतेसु अवाउडा ।

वासासु पडिसलीणा, संजया सुसमाहिया ॥12॥

अन्वयार्थ - सुसमाहिया = प्रशस्त समाधिवत, संजया = सयमी मुनि, गिम्हेसु = ग्रीष्म ऋतु में, आयावयति = सूर्य की आतापना लेते हैं, हेमतेसु = हेमन्त ऋतु में, अवाउडा = अल्प वस्त्र या वस्त्र रहित रहते हैं, वासासु = वर्षा ऋतु में, पडिसलीणा = कछुए की तरह इन्द्रियो को वश में करके रहते हैं ॥12॥

भावार्थ - जिस ऋतु में जिस प्रकार की तपस्या से अधिक कायक्लेश होता है, उस ऋतु में मुनि वही तपस्या करते हैं ।

परीसहरिउदंता, धूयमोहा जिइदिया ।

सव्वदुक्खपहीणद्धा, पक्कमंति महेसिणो ॥13॥

अन्वयार्थ - परीसहरिउदंता = परीषह रूपी शत्रुओं को जीतने वाले, धूयमोहा = मोह, ममता के त्यागी, जिइदिया = इन्द्रियो को जीतने वाले, महेसिणो = महर्षि, सव्वदुक्खपहीणद्धा = सभी दुःखों का नाश करने के लिए, मोक्ष प्राप्ति के लिए, पक्कमंति = पराक्रम करते हैं = सयम और तप में प्रवृत्त होते हैं ॥13॥

दुक्कराइं करित्ताणं, दुस्सहाइं सहितु य ।

के इत्थदेवलोएसु, केइ सिज्झंति णीरया ॥14॥

अन्वयार्थ - दुक्कराई = दुष्कर क्रियाओं को, करित्ताणं = कर के, य = और, दुस्सहाइ = दुःसह कष्टों को, सहितु = सहनकर के, केइ = कितनेक, देवलोएसु = देवलोकों में उत्पन्न होते हैं और केइत्थ = कई इसी भव में, णीरया = कर्म - रज से रहित हो कर, सिज्झंति = सिद्ध हो जाते हैं - मोक्ष चले जाते हैं ॥14॥

खवित्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य ।

सिद्धिमग्गमणुप्पत्ता, ताइणो परिनिब्बुडे । ति बेमि ।

अन्वयार्थ - सिद्धिमग्ग = मोक्षमार्ग के, अणुप्पत्ता = साधक, ताइणो = छः काय जीवों के रक्षक मुनि, संजमेण = संयम से, य = और, तवेण = तप से, पुव्वकम्माइं = पहले बंध हुए कर्मों को, खवित्ता = क्षय कर के, परिनिब्बुडे = निर्वाण प्राप्त करते हैं ॥15॥ ति बेमि = पूर्ववत् ।

छज्जीवणिया चतुर्थ अध्ययन

इस अध्ययन में छः काय जीवों का स्वरूप तथा उसकी रक्षा का उपाय बतलाया गया है -

सुयं मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं, इह खलु छज्जीवणिया नामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुयक्खाया सुपण्णत्ता सेय मे अहिज्जितं अज्झयणं धम्मपण्णत्ती ॥1॥

अन्वयार्थ - आउसं = हे आयुष्यमन् शिष्य । मे = मैंने, सुय-सुना है कि, तेण = उन, भगवया = भगवान् ने, एव - इस प्रकार, अक्खाय = कहा है कि, इह = इस जिनशासन में, खलु = निश्चय से, छज्जीवणिया = छ काय के जीवों का कथन करने वाला, नाम = नामक, अज्झयण = अध्ययन है, समणेणं = श्रमण - तपस्वी, कासवेण = काश्यपगोत्रीय, भगवया = भगवान्, महावीरेण = महावीर ने, पइया = सम्यक् प्रकार से उसकी प्रपणा की है, सुयक्खाया = सम्यक् प्रकार से कथन किया है, सुपण्णत्ता = भली प्रकार से बतलाया है । शिष्य ने पूछा = भगवन् । क्या, अज्झयण = उस अध्ययन का,

अहिज्जिउ = अध्ययन करना = सीखना, मे - मेरे लिए, सेयं = कल्याणकारी है। गुरु ने कहा = हों। धम्मपण्णत्ती - उस अध्ययन को सीखने से धर्म का बोध होता है।

कयरा खलु सा छज्जीवणिया णामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुयक्खाया सुपण्णत्ता सेयं मे अहिज्जिउ अज्झयण धम्मपण्णत्ती
॥२॥

अन्वयार्थ - कयरा = वह छज्जीवणिया अध्ययन कौन-सा है, जिसका अध्ययन करने मेरे लिए कल्याणकारी है। शेष शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है।

इमा खलु या छज्जीवणिया नामज्झयणं समणेण भगवया महावीरेण कासवेण पवेइया सुयक्खाया सुपण्णत्ता सेय मे अहिज्जिउ अज्झयणं धम्मपण्णत्ती
॥३॥

अन्वयार्थ - अब गुरु शिष्य के प्रश्न का उत्तर देते हैं कि इमा - वह छज्जीवणिया अध्ययन इस प्रकार है। शेष शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है।

तजहा-पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणस्सइकाइया तसकाइया।

अन्वयार्थ - तंजहा = जैसे कि, पुढविकाइया = पृथ्वीकायिक = पृथ्वीकाय के जीव, आउकाइया = अप्कायिक (जल) के जीव, तेउकाइया = तेउकायिक (अग्निकाय) संबन्धी जीव, वाउकाइया = वायु के जीव, वणस्सइकाइया = वनस्पतिकाय के जीव, तसकाइया = त्रस काय के जीव।

पुढवी चित्तमतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएण।
आउ चित्तमतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अण्णत्थ सत्थपरिणएण। तेउ
चित्तमतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अण्णत्थ सत्थपरिणएण।
वाउचित्तमतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अण्णत्थ सत्थपरिणएण। वणस्सई
चित्तमतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अण्णत्थ सत्थपरिणएण ॥४॥

अन्वयार्थ - सत्थपरिणएण = शस्त्र - परिणत के, अण्णत्थ = अतिरिक्त

पुढयी = पृथ्वीकाय, आऊ = अप्काय, तेऊ = अग्निकाय, वाऊ = वायुकाय और, वणस्सई = वनस्पतिकाय, चित्तमंतमक्खाया = सचित्त कही गई है, अणेगजीवा = यह अनेक जीवों वाली है, पुढोसत्ता = उसमें अनेक जीव पृथक् = पृथक् रहे हुए हैं। पाचो स्थावरकाय सचित्त है। वे अनेक जीव रूप हैं। उन जीवों का अस्तित्व पृथक् - पृथक् है। इन कायों के जो - जो शस्त्र हैं, उनसे जब तक परिणत न हो जाए अर्थात् दूसरा शस्त्र न लग जाए, तब तक ये सचित्त रहते हैं। शस्त्र - परिणत होने पर अचित्त हो जाते हैं। आगे वनस्पतिकाय का विशेष वर्णन करते हैं।

तंजहा - अग्गबीया, मूलबीया, पोरबीया, खंधबीया बीयरुहा सम्मुच्छिमा, तणलया, वणस्सइ काइया सबीया चित्तमतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अण्णत्थ सत्थपरिणएणं ॥५॥

अन्वयार्थ - तंजहा = वह इस प्रकार है, अग्गबीया = ऐसी वनस्पति जिसका बीज अग्रभाग पर होता है, जैसे कोरट का वृक्ष, मूलबीया = जिसका बीज मूल भाग में होता है, जैसे कुट्ट आदि, पोरबीया = जिसका बीज (पर्व गोंठ) में होता है, जैसे गन्ना आदि, खंधबीया = जिसका बीज स्कन्ध में होता है, जैसे बड़, पीपल आदि, बीयरुहा = बीज से उगने वाली वनस्पति, जैसे चौबीस प्रकार के धान्य, सम्मुच्छिमा = बिना बीज के अपने आप उत्पन्न होने वाली वनस्पति, जैसे अंकुर आदि, तणलया = तृण, लता आदि ये सब, वणस्सइकाइया = वनस्पतिकायिक है, अणेगजीवा = उसमें अनेक जीव हैं, पुढोसत्ता = वे भिन्न - भिन्न सत्ता वाले हैं, सत्थपरिणएण = शस्त्र परिणत के, अन्नत्थ = अतिरिक्त, सबीया = बीज सहित वनस्पति, चित्तमतमक्खाणा = सचित्त कही गई है। अब त्रसकाय का वर्णन किया जाता है -

अं॥

से जे पुण इमे अणेगे बहवे तसा पाणा, तंजहा - अंया, पोयया जराउया, रसया, संसेइमा, सम्मुच्छिमा, उब्भिय, उववाइया। जेसिं केसिं च पाणाण, अभिक्कंतं, पडिक्कंतं, संकुचियं, पसारियं, रुयं, मंतं, तसिय, पलाइयं आगइगइविण्णाया, जे य कीडपयंगा, जा य कुंथु-पिवीलिया, सव्वे वेइदिया सव्वे तेइंदिया, सव्वे चउरिदिया, सव्वे पचिंदिया, सव्वे तिरिक्खजोणिया, सव्वे णेरइया, सव्वे मणुआ, सव्वे देवा, सव्वे पाणा परमाहम्मिया। एसो खलु

छट्ठो जीवणिकाओ तसकाओत्ति पवुच्चइ ॥६॥

अन्वयार्थ - से = अब, जे = जो, इमे = ये आगे कहे जाने वाले, तसा पाणा = त्रस प्राणी है, वे पुण = फिर, अणगे = अनेक तथा, वहवे = बहुत प्रकार के है। तजहा = जैसे कि, अडया- अडे से उत्पन्न होने वाले, पोयया = पोतज (जन्म के समय चर्म से आवृत होकर कोथली सहित उत्पन्न होने वाले), जराउया = जरायु सहित पैदा होने वाले, रसया = रस में उत्पन्न होने वाले द्वीन्द्रियादि, ससेइमा = पसीने से उत्पन्न होने वाले, समुच्छिमा = समूच्छिर्म (देव नारकी के अतिरिक्त बिना माता - पिता के संयोग से होने वाली जीवों की उत्पत्ति), उब्भिया : जमीन फोड़कर उत्पन्न होने वाले, उववाइया - उपपात जन्म वाले देव नारकी आदि, जेसि केसि च = इनमें से कोई - कोई, पाणाण = प्राणी, अभिक्कंतं = सामने आना, पडिक्कत = पीछे सरकना, सकुचिय = शरीर को सकुचित कर लेना, पसारिय = शरीर को फैलाना, रुय - शब्द का उच्चारण करना, भतं = इधर - उधर भ्रमण करना, तसिय = भयभीत होना, पलाइय = डर से भागना, आगइगइ = आगति और गति, वित्राया = आदि क्रियाओं को जानने वाले हैं, य = और जे = जो, कीडपयंगा = कीड़े और पतंगे हैं, ये = और जा = जो, कुथुपिपीलिया - कुथुवा और चींटियाँ हैं, वे सब्बं = सभी बेइदिया = बेइन्द्रिय, सब्बे = सभी, तेइदिया = तेइन्द्रिय, सब्बे = सभी, चउरिदिया = चौरिन्द्रिय, सब्बे-सभी, पचिदिया = पंचेन्द्रिय, सब्बे = सभी, तिरिक्खजोणिया = तिर्यच, सब्बे = सभी, नेरइया = नारकी के जीव, सब्बे = सभी, मणुआ = मनुष्य, सब्बे = सभी, देवा-देव, सब्बे = सभी, पाणा = प्राणों, परमाहम्मिया = परम सुख के अभिलाषी हैं। ऐसो = यह, खलु = निश्चय करके छट्ठो = छठा, जीवणिकाओ - जीवणिकाय, तसकाओत्ति = त्रसकाय, पवुच्चइ = कहा जाता है।

भावार्थ - सभी प्राणी सुख को चाहते हैं। अतः किसी की हिंसा नहीं करनी चाहिए।

इच्चैसिं छण्ह जीवणिकायाणं नेव सयं दडं समारभिज्जा, णेवन्नेहि दडं समारभाविज्जा, दडं समारमंतेऽवि अण्णे ण समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविह तिविहेणं मणेणं वायाए काएण ण करेमि, ण कारवेमि, करंतं पि अण्णं ण समणुजाणामि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाण

वोसिरामि ॥७॥

अन्वयार्थ - मुनि, इच्चेसि = इन, छण्हं = छः, जीवनीकायाण - जीवनीकायो के, दडं = हिंस रूप दंड का, सयं = स्वयं, नेव समारंभिज्जा - आरम्भ न करे, अत्रेहिं = दूसरो से, दंडं = हिंसा रूप दंड का, नेव समारभाविज्जा = आरम्भ न करावे और, दंडं = हिंसा रूप दण्ड का, समारभते = आरम्भ करते हुए, अत्रेऽवि = अन्य जीवों को, न समणुजाणिज्जा = भला भी न समझे। अब शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन्। मै, जावज्जीवाए - जीवन पर्यंत, तिविहं - तीन करण से करना, कराना और अनुमोदना से और तिविहेणं - तीन योग अर्थात्, मणेण - मन से, वायाए = वचन से, और काएण = काया से, न करेमि = न करूंगा, न कारवेमि = न कराऊंगा और करंतं पि = करते हुए, अत्रं = दूसरे को, न समणुजाणामि = भला भी नहीं समझूंगा। भंते = हे भगवन्। तस्स - उस दण्ड का, पडिक्कमामि - प्रतिक्रमण करता हूँ, निदामि = आत्मसाक्षी से निंदा करता हूँ, गरिहामि = गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ। अप्पाणं = हिंसा - दण्ड सेवन करने वाले पापात्मा को, वोसिरामि = त्यागता हूँ।

पढमे भंते । महव्वए पाणाइवायाओ वेरमणं । सव्वं भंते । पाणाइवाय पच्चक्खामि । से सुहुमं वा, वायरं वा, तसं वा, थावरं वा, णेव सय पाणे अइवाइज्जा, णेवण्णेहिं, पाणे अइवायाविज्जा पाणे अइवायंते वि अण्णे ण समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं ण करेमि, ण कारवेमि करंतं पि अण्णं ण समणुजाणामि । तस्स भंते । पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । पढमे भंते । महव्वए उवड्ढिओमि, सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं ॥८॥

अन्वयार्थ - भते = हे भगवान। पढ मे = प्रथम, महव्वए = महाव्रत मे पाणाइवायाओ = प्राणातिपात से, वेरमणं = निवर्तन होता है, अत, भंते = हे भगवन्। मै, सव्वं = सभी प्रकार की, पाणाइवायं = प्राणातिपात रूप हिंसा का, पच्चक्खामि = त्याग करता हूँ, से = अभी से लेकर, सुहुमं = सूक्ष्म, वा अथवा, वायर-बादर, तसं- त्रस, वा = अथवा, थावरं = स्थावर प्राणियों के, पाणे = प्राणों को, सयं = स्वयं, न अइवाइज्जा = हनन नहीं करूंगा और नेव-न, अत्रेहि = दूसरो से, पाणे = प्राणियों के प्राणो का, अइवायाविज्जा = हनन

कराऊगा । पाण = प्राणियों के प्राणों का अइवायते = हनन करने वाले, अत्रेऽवि - दूसरो को, न समणुजाणिज्जा - भला भी नहीं जानूँगा, जावज्जीवाए = जीवन पर्यन्त, तिविह - तीन करण (करना, कराना, अनुमोदना) से, तिविहेण = तीन योग अर्थात् मणेण = मन से, वायाए = वचन से, काएण - काया से, न करेमि = न करूँगा, न कारवेमि = न कराऊगा, करतपि = करते हुए, अत्रे = दूसरो को, न समणुजाणाणि = भला भी नहीं समझूँगा, भते = हे भगवन् । मै तस्स = उस हिंसा रूपी पाप से, पडिक्कामि = निवृत्त होता हूँ, निदामि - उस पाप की निदा करता हूँ, गरिहामि = गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ, अप्पाण - हिंसा रूप दड सेवन करने वाली आत्मा को, वोसिरामि = त्यागता हूँ, 'भते = हे भगवन् । मै सव्वाओ = सभी, पाणाइवायाओ = प्राणातिपात से, वेरमणं = निवृत्ति रूप, पढमे - प्रथम, महव्वए = महाव्रत मे, उवट्ठिओमि = उपस्थित होता हूँ ।

भावार्थ - शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन् । मै प्रथम महाव्रत के पालन में सावधान होता हूँ और पूर्वकाल में किए हुए हिंसा सबधी पाप से निवृत्त होता हूँ ।

अहावरे दुच्चे भंते । महव्वए मुसावायाओ वेरमणं । सव्व भते ! मुसावाय पच्चक्खामि, से कोहा वा, लोहा वा, भया वा, हासा वा, णेव सय मुस वइज्जा, णेवण्णेहि मुसं वायाविज्जा, मुसं वयंते वि अण्णे ण समणुजाणेज्जा, जावज्जीवाए तिविह तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं ण करेमि, ण कारवेमि करत पि अण्णं ण समणुजाणामि । तस्स भंते । पडिक्कामि णिंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । दुच्चे भंते । महव्वए उवट्ठिओमि, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमण ॥१॥

अन्वयार्थ - भते = भगवन् । अहावरे - इसके बाद, दुच्चे - दूसरे, महव्वए - महाव्रत में, मुसावायाओ = मृषावाद से, वेरमण = निवर्तन होता है । भंते = हे भगवन् । मै, सव्व = सभी प्रकार के, मुसावाय = मृषावाद का, पच्चक्खामि - त्याग करता हूँ । से = वह इस प्रकार, कोहा = क्रोध से, वा = अथवा, लोहा वा - लोभ से, भया वा = भय से, अथवा, हासा वा = हँसी से, सय = मैं स्वयं, मुसावाय = असत्य, नेव वइज्जा = नहीं बोलूँगा, नेवऽत्रहि = न दूसरो से,

मुसं = असत्य, वायाविज्जा = बोलाऊँगा, मुसं = असत्य, वयतेऽपि - बोलते हुए, अत्रे = दूसरो को, न समणुजाणिज्जा = भला भी नहीं समझूँगा। जावज्जीवाए से वोसिरामि तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है। भते = हे भगवन्। मै, सब्बाओ = सभी, मुसावायाओ = मृषावाद को, वेरमण = त्याग रूप, दुच्चे - दूसरे, महव्वए = महाव्रत में, उवड्ढिओमि = उपस्थित होता हूँ।

अहावरे तच्चे भंते । महव्वए अदिण्णादाणाओ वेरमणं । सब्ब भते । अदिण्णादाणं पच्चक्खामि । से गामे वा, नगरे वा, रण्णे वा, अप्पं वा, बहु वा, अणुं वा, थूलं वा, चित्तमंतं वा, अचित्तमंतं वा, णेव सयं अदिण्ण गिण्हिज्जा , णेनत्रेहिं अदिण्णं गिण्हाविज्जा, अदिण्णं गिण्हंते वि अत्रे ण समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविह तिविहेणं मणेणं वायाए काएण ण करेमि, ण कारवेमि, करंतं पि अत्रं ण समणुजाणामि । तस्स भंते । पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । तच्चे भंते । महव्वए उवड्ढिओमि सब्बाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं ॥१०॥

अन्वयार्थ - भते = हे भगवन्। अहावरे - इसके बाद, तच्चे - तीसरे, महव्वए = महाव्रत में, अदिण्णादाणाओ - अदत्तादान से, वेरमणं - निवर्तन होता है, भंत = हे भगवन्। मै, सब्ब सभी प्रकार के, अदिण्णादाणं - अदत्तादान का, पच्चक्खामि = प्रत्याख्यान करता हूँ, से = वह इस प्रकार कि, गामे - ग्राम में, वा - अथवा नगरे वा - नगर में अथवा, रण्णे वा = वन में, अप्प वा = अल्प अथवा, बहुं वा = बहुत, अणुं - सूक्ष्म, वा = अथवा, थूल वा = स्थूल, चित्तमंतं वा = सचेतन अथवा, अचित्तमत वा = अचेतन आदि किसी भी, अदिण्णं = बिना दिए हुए पदार्थ को, सयं = मैं स्वयं, नेवगिण्हिज्जा = ग्रहण नहीं करूँगा, नेवडन्नेहिं - न दूसरो से और अदित्र = बिना दिए हुए पदार्थ को गिण्हाविज्जा - ग्रहण कराऊँगा और, गिण्हंते वि = ग्रहण करते हुए, अत्रे = दूसरो को, न समणुजाणिज्जा = भला भी नहीं समझूँगा। जावज्जीवाए से वोसिरामि तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है। भंते = हे भगवन्। मै, अदित्रादाणाओ = अदत्तादान से, वेरमणं = निवृत्ति रूप, तच्चे = तीसरे, महव्वए = महाव्रत में, उवड्ढिओमि = उपस्थित होता हूँ।

अहावरे चउत्थे भंते । महव्वए मेहुणाओ वेरमण । सब्बं भंते । मेहुण

पच्चक्खामि, सेदिव्व वा माणुस वा तिरिक्खजोणिय वा, णेव सयं मेहुण सेविज्जा, णेवन्नेहि मेहुण सेवाविज्जा, मेहुणं सेवते वि अण्णे ण समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविह तिविहेणं मणेणं वायाए काएण ण करेमि ण कारवेमि करत पि अण्णं ण समणुजाणामि । तस्स भते । पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि । चउत्थे भंते । महव्वए उपड्विओमि सव्वाओ मेहुणाओ वेरमण ॥११॥

अन्वयार्थ - भते = हे भगवन् । अहावरे = इसके बाद, चउत्थे = चौथे, महव्वए - महाव्रत मे, मेहुणाओ = मैथुन से, वेरमण = निवर्तन होता है । भते = हे भगवन् । मै, सव्व = सभी प्रकार के, मेहुण = मैथुन का, पच्चक्खामि = प्रत्याख्यान रकता हूँ, से = वह इस प्रकार की, दिव्व = देव सबधी, वा = अथवा, माणुसं = मनुष्य सबधी वा = अथवा तिरिक्खजोणिय = तिर्यच सबधी, इन तीनों जातियों मे किसी के भी साथ, मेहुण = मैथुन, सयं = मै स्वय, नेवसेविज्जा = सेवन नहीं करूँगा, नेवऽन्नेहि = न दूसरो से, मेहुणं = मैथुन, सेवाविज्जा = सेवन कराऊँगा और मेहुण = मैथुन, सेवतेऽवि = सेवन करने वाले, अन्ने = दूसरो को, न समणुजाणिज्जा - भला भी नहीं समझूँगा । जावज्जीवाए से वोसिरामि तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है । भते = हे भगवन् । मै, सव्वाओ = सभी प्रकार के, मेहुणाओ = मैथुन से, वेरमण = निवृत्ति रूप, चउत्थे = चौथे, महव्वए - महाव्रत मे, उवड्विओमि = उपस्थित होता हूँ और प्रतिज्ञा करता हूँ ।

अहावरे पंचमे भते । महव्वए परिग्गहाओ वेरमणं । सव्व भंते । परिग्गह पच्चक्खामि से अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमत वा अचित्तमतं वा नेव सय परिग्गहं परिगिण्हिज्जा, णेवन्नेहि परिग्गह परिगिण्हाविज्जा परिग्गहं परिगिण्हतेवि अन्ने ण समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएणं ण करेमि ण कारवेमि करंतं पि अन्न ण समणुजाणामि । तस्स भते । पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । पंचमे भंते । महव्वए उवड्विओमि सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमण ॥१२॥

अन्वयार्थ - भते - हे भगवन् । अहावरे - इसके बाद, पंचमे - पाँचवें, महव्वए - महाव्रत मे, परिग्गहाओ - परिग्रह से, वेरमण - निवर्तन होता है । अत, भते - हे भगवन् । मै, सव्व - सभी प्रकार के, परिग्गहं - परिग्रह

पच्चक्खामि - त्यागता हूँ, से - वह इस प्रकार है : अप्पं वा - अल्प अथवा बहु वा - बहुत , अणुं वा - सूक्ष्म अथवा, थूल वा - स्थूल, चित्तमत वा - सचेतन, अचित्तमतं वा - अथवा अचेतन, परिग्गहं - परिग्रह, सय - मै स्वयं, नेव परिगिण्हिज्जा - ग्रहण नहीं करूँगा , नेवऽन्नेहि - न दूसरो से, परिग्रह - परिग्रह को, परिगिण्हाविज्जा - ग्रहण कराऊँगा, परिग्रह - परिग्रह को, परिगिण्हतेऽवि -ग्रहण करने वाला, अन्ने- दूसरो को, न समणउजाणिज्जा - भला भी न समझूँगा । जावज्जीवाए से वोसिरामि तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है । भंते - हे भगवन् । मै सब्बाओ - सभी प्रकार के , परिग्गहाओ - परिग्रह से, वेरमणं - निर्वर्तन रूप, पंचमे - पाँचवे, महब्बए - महाव्रत मे, उवट्ठिओमि - उपस्थित होता हूँ ।

भावार्थ - शिष्य सभी प्रकार के परिग्रह से विरमण रूप पाँचवे महाव्रत को स्वीकार करने की प्रतिज्ञा करता है ।

अहावरे छट्ठे भंते । वए राइभोयणाओ वेरमणं । सव्वं भंते ! राइभोयण पच्चक्खामि । से असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, मेव सयू राइ भुंजिज्जा, णेवन्नेहिं राइं भुंजाविज्जा, राइं भुजंते वि अन्ने ण समणुजाणेज्जा । जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं ण करेमि, ण कारवेमि, करंतं पि अन्नं ण समणुजाणाणि । तस्स भंते । पडिक्कमामि । णिंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । छट्ठे भंते । वए उवट्ठिओमि सब्बाओ राइभोयणाओ वेरमण । इच्चैयाइं पंच महब्बयाइं राइभोयणवेरमणछट्ठाइं अत्तहियड्डयाए, उव सपजित्ता णं विहरामि ॥13॥

अन्वयार्थ - भंते - हे भगवन् । 'अहावरे - इसके बाद, छट्ठे- छठे, वए - व्रत मे, राइभोयणाओ - रात्रि - भोजन का, वेरमणं - त्याग होता है, अतः भते - हे भगवन् । मै, सव्वं - सभी प्रकार के, राइभोयणं - रात्रि - भोजन का, पच्चक्खामि - त्याग करता हूँ । से - वह इस प्रकार है कि, असण वा - अन्नादि अथवा, पाण वा - पानी आदि अथवा, खाइमं वा - खाद्य, मेवा अथवा, साइमं, वा - स्वाद्य - लोग, इलायची आदि, सय - मै स्वयं, राइं - रात्रि मे, नेव- नहीं, भुंजिज्जा - खाऊँगा, नेवन्नेहि - न दूसरो को, राइ - रात्रि मे, भुंजाविज्जा - खिलाऊँगा और राइं - रात्रि मे, भुंजतेऽवि - भोजन करने वाले, अन्ने - दूसरो को, न समणुजाणिज्जा - भला भी न समझूँगा । जावज्जीवाए से वोसिरामि तक

शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है। भंते - हे भगवन्। मै, सब्बाओ - सभी प्रकार के, राइभोयणाओ - रात्रि भोजन से, वेरमणं - निवृत्ति रूप, छट्ठे - छठे, वए = व्रत में, उवड्ढिओमि = उपस्थित होता हूँ। यहा से नए पेराग्राफ इच्चेयाइ = ये पहले कहे हुए, पच महब्बयाइं = पाच महाव्रतों को और राइभोयणवेरमण छट्ठाइ = रात्रि भोजन विरमण रूप छठे व्रत को, अत्तहियड्डयाए = आत्म - कल्याण के लिए, उवसपज्जिता ण = स्वीकार कर के मै, विहरामि = सयम में विचरता हूँ।

भावार्थ - अपनी आत्मा के कल्याण के लिए शिष्य अहिंसा आदि पाच महाव्रतों और छठे रात्रि भोजन त्याग रूप व्रत का पालन करने की प्रतिज्ञा करता है।

छः काय के जीवों की रक्षा के बिना चारित्र्य : धर्म का पालन नहीं हो सकता है। अतः छः काय के जीवों की रक्षा के विषय में सूत्रकार कहते हैं -

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा सजय - विरय - पडिहय - पच्चक्खाय - पावकम्मो, दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, पुढवि वा, भित्ति वा, सिलं वा, लेलुं वा ससरक्खं वा काय, ससरक्ख वा वत्थ, हत्थेण वा, पाएण वा, कट्ठेण वा, किलिचेण वा, अंगुलियाए वा, सिलागाए वा, सिलागहत्थेण वा, ण आलिहिज्जा, ण विलिहिज्जा, न घट्टिहिज्जा ण भिदिज्जा, अन्नं ण आलिहाविज्जा, ण विलिहाविज्जा न घट्टाविज्जा, ण भिदाविज्जा, अन्नं आलिहत वा, विलिहत वा, घट्टत वा, भिदत वा, न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण ण करेमि, ण कारवेमि करंतपि अन्नं ण समणुजाणाणि। तस्स भते। पडिक्कमामि निदामि गरिहामि अप्पारुणं वोसिरामि ॥१४॥

अन्वयार्थ - सजय = विरय-पडिहय = पच्चक्खाय पावकम्मो = सयमी, पापो से विरक्त, कर्मों की स्थिति को प्रतिहत करने वाला तथा पाप = कर्मों के बंध का प्रत्याख्यान करने वाला, से = वह पूर्वोक्त महाव्रतों को धारण करने वाला, भिक्खु = साधु, वा = अथवा भिक्खुणी वा = साध्वी दिया वा = दिन में अथवा, राओ वा = रात्रि में, एगओ, वा = अकेला अथवा, परिसागओ वा = साधु - समूह में, सुत्ते वा = सोते हुए, जागरमाणे वा - अथवा जागते हुए, से = इस प्रकार, पुढवि वा = पृथ्वी को अथवा भित्ति वा = दीवार को, सिल वा =

शिला को अथवा, लेतुं वा = ठेले को, ससरक्ख वा काय = सचित्त रज सहित वस्त्रो को, हत्थेण वा = हाथ से अथवा, पाएण वा = पैर से, कट्ठेण वा लकड़ी से अथवा, किलिचेण वा = डंडे से, अगुलियाए वा = अगुलि से अथवा, सिलागाए वा = लोहे की छड़ से अथवा, सिलागहत्थेण वा = लोहे की छड़ियों के समूह से, ण आलिहिज्जा = सचित्त पृथ्वी पर लिखे नहीं, ण विलिहिज्जा = विशेष लिखे नहीं, ण घट्टिज्जा = एक स्थान से दूसरे स्थान पर डाले नहीं, ण भिदिज्जा = भेदन न करे, अण्णं = दूसरे से, ण आलिहाविज्जा = लिखावे नहीं, ण विलिहाविज्जा = औरो से विशेष लिखावे नहीं, ण घट्टाविज्जा = एक स्थान से दूसरे स्थान पर गिरावे नहीं, न भिंदाविज्जा = भेदन न करावे, आलिहत वा = लिखने वाला, विलिहत वा = विशेष लिखने वाले, घट्टत वा = एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने वाले, भिदत वा = भेदन करने वाले, अण्णं = दूसरो को, ण समणुजाणिज्जा = भला भी नहीं समझे शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन् । मै, जावज्जीवाए = जीवन पर्यन्त, तिविह = तीन करण और, तिविहेणं = तीन योग से अर्थात् मणेण = मन से, वायाए = वचन से, काएण = काया से, ण करेमि = न करूँगा, ण कारवेमि = न कराऊँगा, करतपि = करते हुए, अण्ण = दूसरो को, ण समणुजाणामि = भला भी नहीं समझूँगा । भंते = हे भगवान् । मै, तस्स = उस पाप से, अर्थात् सचित्त पृथ्वी जन्य पाप से पडिक्कमामि = पृथक् होता हूँ, णिदामि = आत्मसाक्षी से निंदा करता हूँ, गरिहामि = गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ, अप्पाणं = ऐसे पापकारी कर्म से अपनी आत्मा को, वोसिरामि = हटाता हूँ ।

भावार्थ - इस सूत्र में पृथ्वीकाय की यतना का वर्णन किया गया है । अब आगे के सूत्र में अप्काय का यतना का वर्णन किया जाएगा ।

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, सजय - विरय - पडिहय - पच्चक्खाय - पावकम्मे दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिमागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से उदंग वा, ओसं वा, हिमं वा, महिय वा, करग वा, हरितणुग वा, सुध्दोदंगं वा, उदउल्लं वा कायं, उदउल्ल वा वत्थ, सिसिणिध्द वा काय सिसिणिध्द वा वत्थ, ण आमुसिज्जा, ण संफुसिज्जा, न आविलिज्जा,

ण पविलिज्जा, ण अक्खोडिज्जा ण पक्खोडिज्जा, ण आयाविज्जा ण पयाविज्जा, अन्नं ण आमुसाविज्जा ण सफुसाविज्जा ण आविलाविज्जा ण पविलाविज्जा ण अक्खोडाविज्जा ण पक्खोडाविज्जा, ण आयाविज्जा, ण पयाविज्जा, अण्णं आमुसंतं वा, संफुसंतं वा, आवीलतं वा, पवीलतं वा, अक्खोडतं वा, पक्खोडतं वा, आयावतं वा, पयावतं वा न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेण वायाए काएण ण करेमि, ण कारवेमि, करतं पि अण्णं ण समणुजाणामि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि णिदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ॥15॥

अन्वथार्थ : से भिक्खू वा से जागरमाणे तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है, साधु अथवा साध्वी, उदग वा = जल को, ओस वा = ओस को, हिम वा = बर्फ को, महिय वा = धूअर के पानी को, करग वा = ओले के पानी को, हरितणुग वा = हरियाली पर पड़े हुए जल बिंदुओं को, सुध्दोदग वा = आकाश से गिरे हुए जल को, उदउत्त वा काय = जल से भीगे हुए शरीर को, उदउत्त वा वत्थ = जल से भीगे हुए वस्त्र को, ससिणिध्द वा काय - कुछ - कुछ भीगे हुए शरीर को, ससिणिध्द वा वत्थ = कुछ - कुछ भीगे हुए वस्त्र को, न आमुसिज्जा = जरा भी स्पर्श न करे, न सफुसिज्जा = अधिक स्पर्श न करे, न आविलिज्जा = एक बार न निचोड़े, न पविलिज्जा = बार बार न निचोड़े, न अक्खोडिज्जा = न झटके, न पक्खोडिज्जा - बार-2 न झटके, न आयाविज्जा = न सुखावे, न पयाविज्जा = बार बार न सुखावे, अन्न = दूसरे से, न आमुसाविज्जा = जरा भी स्पर्श न करावे, न सफु साविज्जा = बार - स्पर्श न करावे, न आविलाविज्जा = न निचोड़वावे, न पवीलाविज्जा = बार-2 न निचोड़वावे, न अक्खोडाविज्जा - झटकावे नहीं, न पक्खोडाविज्जा = बार -बार झटकावे नहीं, न आयाविज्जा - न सुखवावे, न पयाविज्जा = बार - बार न सुखवावे तथा, आमुसतं वा = जरा भी स्पर्श करने वाले, सफुसतं वा = बार - बार स्पर्श करने वाले, आवीलतं वा = निचोड़ने वाले, पवीलतं वा = बार - निचोड़ने वाले, अक्खोडतं वा = झटकाने वाले, पक्खोडतं वा = बार - बार झटकाने वाले, आयावतं वा = सुखाने वाले, पयावतं वा = बार - बार सुखाने वाले, अन्न = दूसरे को, न समणुजाणिज्जा = भला नहीं समझे जावज्जीवाए से वोसिरामि तक का अर्थ पूर्ववत् है ।

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, संजय - विरय - पडिहय - पच्चक्खाय - पावकम्मे दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से अगणिं वा, इंगालं वा, मुम्मरं वा, अच्चि वा, जालं वा, अलाय वा, सुध्दागणिं वा उक्कं वा, ण उजिज्जा, ण घट्टिज्जा, ण भिदिज्जा न उज्जालिज्जा, ण पज्जालिज्जा ण निव्वाविज्जा, अन्नं ण उजाविज्जा, ण घट्टाविज्जा, ण भिदाविज्जा, ण उज्जालाविज्जा, ण पज्जालाविज्जा, ण निव्वाविज्जा, अन्नं उंजतं वा घट्टंतं वा, भिदंतं वा, उज्जालंतं वा, पज्जालतं वा, निव्वावंतं वा, ण समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिवहेणं मणेमण वायाए काएणं ण करेमि, ण कारवेमि, करंतं पि अण्णं ण समणुजाणाणिमि तस्स भंते ! पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥16॥

अन्वयार्थ - से भिक्खू वा से जागरमाणे तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है, साधु अथवा साध्वी, अगणि वा = अग्नि को, इंगाल वा = अंगारे को, मुम्मुर वा = चिनगारी, बकरी आदि के मीगणों की अग्नि को, अच्चि वा = दीपक की शिखा की अग्नि को, जालं वा = अग्नि के साथ मिली हुई ज्वाला को, अलाय वा = जलता हुआ कड़ा या काष्ठ की अग्नि को, सुध्दागणिं वा = काष्ठादि रहित शुद्ध अग्नि को, उक्कं वा = उल्कापात रूप अग्नि को, न उजिज्जा = ईंधन डालकर न बढ़ावे, न घट्टिज्जा = संघट्टा न करें, न भिदिज्जा = छिन्न - भिन्न न करे, न उज्जालिज्जा = जरा भी न जलावे, न पज्जालिज्जा = प्रज्वलित न करे, न निव्वाविज्जा = न बुझावे, अन्नं = दूसरे से, न उंजाविज्जा = ईंधन डालकर न बढ़ावे, न घट्टाविज्जा = संघट्टा न करवावे, न भिदाविज्जा = छिन्न - भिन्न न करवावे, न उज्जालाविज्जा = न जलवावे, न पज्जालाविज्जा = प्रज्वलित न करवावे, न निव्वाविज्जा = न बुझावे तथा, उंजंत वा = ईंधन डालकर बढ़ाने वाले, घट्टंतं वा = संघट्टा करने वाले, भिदंतं वा = छिन्न - भिन्न करने वाले, उज्जालंतं वा = जलाने वाले, पज्जालंतं वा = प्रज्वलित करने वाले, अन्नं = दूसरे को, न समणुजाणिज्जा = भला भी न समझे । जावज्जीवाए से वोसिरामि तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है । अब वायुकाय की यतना के विषय में वर्णन किया गया है -

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, संजय-विरय - पडिहय - पच्चक्खाय-पावकम्मो, दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा ,

जागरमाणे वा, से सिएण वा, विहुयणेण वा, तालियटेण वा, पत्तेण वा ,
पत्तभगेण वा, साहाए वा, साहाभंगेण वा, पिहुणेण वा, पिहुणहत्थेण वा ,
चेलेण वा, चेलकन्नेण वा, हत्थेण वा, मुहेण वा, अप्पणो वा काय, बाहिरं
वावि पोग्गल, ण फुमिज्जा, ण वीएज्जा, अन्न ण फुमाविज्जा, ण वीआविज्जा,
अण्ण फुमतं वा, वीयत वा ण समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं
मणेणं वायाए काएणं ण करेमि, ण कारवेमि, करतपि अण्णं ण समणुजाणाणि,
तस्स भते ! पडिक्कमामि णिदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिहामि ॥17॥

अन्वयार्थ - से भिक्खू वा से जागरमाणे तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है ।
साधु अथवा साध्वी, सिएण वा = चामर से, विहुयणेण वा = पक्षे से,
तालियटेण वा - ताड वृक्ष के पखे से, पत्तेण वा = पत्तों से, पत्तभगेण वा = पत्तों
के टुकड़ों से साहाए वा - शाखा से, साहाभंगेण वा = शाखा से टुकड़ों से,
पिहुणेण वा - मोर के पखों से, पिहुणहत्थेण वा = मोरपिच्छी से, चेलेण वा =
बख से, चेलकन्नेण वा = कपड़े के पल्ले से , हत्थेण वा = हाथ से, मुहेण वा
= मुख से, अप्पणो = अपने, काय - शरीर को, वा = अथवा, बाहिर वा वि =
बाहरी पुद्गलो को , न फुमिज्जा = फूँक न मारे, न वीएज्जा = पखे आदि से
हवा न करे, अन्न = दूसरे से, न फुमाविज्जा = फूँक न लगवावे, न वीआविज्जा
= पखे आदि से हवा न करावे, फुमतं वा = फूँक देने वाले, वीयत वा = हवा
करने वाले, अन्न = दूसरे को, न समणुजाणिज्जा = भला भी न समझे ।
जीवज्जीवाए से वोसिरामि तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है। अब वनस्पतिकाय
की यतना का वर्णन किया जाता है ।

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, संजय - विरय - पडिहय - पच्चक्खाय -
पावकस्से, दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे
वा, से वीएसु वा, बीयपइड्डेसु वा, रुढेसु वा, रुढपइड्डेसु वा, जाएसु वा ,
जायपइड्डेसु वा, हरिएसु वा, हरियइड्डेसु वा, छिन्नेसु वा, छिन्नपइड्डेसु वा,
सचित्तैसु वा, सचित्त कोलपडिनिस्सिएसु वा, ण गच्छेज्जा, म चिट्ठेज्जा, ण
निसीइज्जा, ण तुअट्ठिज्जा, अन्न ण गच्छाविज्जा, ण चिट्ठाविज्जा, ण
निसीयाविज्जा, ण तुअट्ठाविज्जा, अन्न गच्छतं वा, चिट्तं वा निसीअतं वा ,
तुअट्ठत वा न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए
काएण न करेमि न कारवेमि, करंतपि अण्ण न समणुजाणामि । तस्स भते !

पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥18॥

अन्वयार्थ - से भिक्खू वा से जागरमाणे तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है, साधु अथवा साध्वी, वीएसु वा = बीजो पर, वीयपइट्ठेसु वा = बीजो पर रखे हुए शयन आसनादि पर, रुढेसु वा = बीज उग कर जो अकुरित हुए हो, उन पर, रुढपइट्ठेसु वा = अंकुरित वनस्पति पर रखे हुए आसनादि पर, जाएसु वा = पत्ते आने की अवस्था वाली वनस्पति पर जायपइट्ठेसु वा = पत्ते आने की अवस्था वाली वनस्पति पर रखे हुए आसनादि पर, हरिएसु वा = हरी दूब आदि पर, हरियइट्ठेसु वा = हरी दूब आदि पर रखे हुए आसनादि पर, छिन्नपइट्ठेसु वा = वृक्ष की 'कटी हुई हरी शाखाओं पर रखे हुए आसनादि पर, सचित्तोसु वा = ऐसी वनस्पति जिस पर अंडा आदि हो, सचित्तकोलपडिनिस्सिएसु वा = घुन लगे हुए काठ पर, न गच्छेज्जा = न चले, न चिट्ठेज्जा = खड़ा न होवे, न निसीइज्जा = न बैठे, न तु अट्ठिज्जा = न सोवे, अन्नं = दूसरे को, न गच्छाविज्जा = न चलावे, न चिट्ठाविज्जा = न खड़ा करे, न निसीआविज्जा = न बैठावे, न तुअट्ठाविज्जा = न सुलावे, गच्छंतं वा = चलते हुए, चिट्ठंतं वा = खड़े हुए, निसीअतं वा = बैठते हुए, तु अट्ठंतं वा = सोते हुए, अन्नं = दूसरे को, न समणुजाणिज्जा = भला भी न जाने। जावज्जीवाए से वोसिरामि तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत्। आगे त्रसकाय की यतना का वर्णन किया जाता है -

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, संजय - विरय - पडिहय - पच्चक्खाय - पावकम्मो, दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से कीडं वा, पयंगं वा, कुंथु वा, पिवीलियं वा, हत्थंसि वा, पायंसि वा, बाहुंसि वा, उरुंसि वा, उदरंसि वा, सीसंसि वा, वत्थंसि वा, पडिग्गहंसि वा, कंबलंसि वा, पायपुच्छणंसि वा, रयहरणंसि वा, गुच्छगंसि वा, उडगंसि वा, दंडगंसि वा, पीढगंसि वा, फलंगंसि वा, सेज्जंसि वा, संथारगंसि वा, अण्णयरंसि वा, तहर्पेगारे उवगरणजाए तओ संजयामेव पडिलेहिय पडिलेहियपमज्जिय पमज्जिय एगंतमवणिज्जा, नो णं संघाय मावज्जिज्जा ॥19॥

अन्वयार्थ - से भिक्खू वा से जागरमाणे तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है, साधु अथवा साध्वी, कीड वा = कीड़े - मकोड़े को, पयंगं = वा - पतंगे को,

कुथु = वा कुथुवा को, जिहिल्लि व = डोहे डोहे = डोहे डोहे
 = पौव पर, बाहुसिवा = भुज पर, लल्लि व = लल्लि व
 सीससि वा = सिर पर, वल्लि व = वल्लि व
 कवलसि वा = कन्वल पर, पल्लुव = पल्लुव
 रयहरणसि वा = रजोहरण पर, गोल्लि व = गोल्लि व
 वल्ल पर, उडगसि वा = उडगसि व
 = चौकी पर, फलसि व = फले पर, लेज्जि व = लेज्जि व
 सथारे पर वा = अथवा, तहज्जारे - इसी प्रकार के, तहज्जारे व = तहज्जारे
 उवगरणजाए = उपकरण पर पड़े हुए वड़े आदि स्मिंद को, तओ = उस स्थान से
 अर्थात् हाथ-पैर आदि पर से, संज्यानेव = यतना पूर्वक, पडिलेहिय = पडिलेहिय
 = बार - बार मली प्रकार से प्रतिलेखना करके, पनल्लिय पनल्लिय = बार - बार
 सम्यक् प्रकार से पूँज कर, एगत = एकान्त स्थान में, अवणिज्जा = रख दे, किन्तु
 उन जीवों को, नो ण संघायनावज्जेज्जा = इस प्रकार इकट्ठा करके न रखे कि
 जिससे उन्हें पीडा हो ।

अजयं चरमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ ।
 बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥1॥
 अजयं चिड्डमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ ।
 बंधइ पावय कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥2॥
 अजयं आसमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ ।
 बंधइ पावय कम्मं, तं से होइ कडुय फलं ॥3॥
 अजयं सयमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ ।
 बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुय फलं ॥4॥
 अजयं मुंजमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ ।
 बंधइ पावय कम्मं, त से होइ कडुय फल ॥5॥
 अजयं भासमाणो य, पाणभूयाइ हिंसाइ ।
 बंधइ पावय कम्मं, त से होइ कडुय फलं ॥6॥

अन्वयार्थ - अजय = अयतना पूर्वक, चरमाणो = चलता हुआ, चिड्डमाणो
 खडा होता हुआ, आसमाणो = बैठता हुआ, सयमाणो = शीता हुआ, मुंजमाणो
 भोजन करता हुआ और, भासमाणो = बोलता हुआ आदि, पाणभूयाइं = १०

स्थावर जीवों की, हिसड़ = हिसा करता है। अ = जिससे, पावयं = पाप, कम्मं = कर्म का, बंधड़ = बंध होता है। तं = वह पाप कर्म, से - उस प्राणी के लिए कडुय = कटुक, फल = फलदायी, होड़ = होता है ॥1॥

भावार्थ - इन छः गाथाओं में अयतनापूर्वक चलने, खड़ा रहने, बैठने, सोने आदि का कटु फल बतलाया गया है, जो स्वयं उसी आत्मा को भोगना पड़ता है।

कहं चरे कहं चिड्डे, कहमासे कहं सए।

कहं भुंजंतो भासंतो, पाव कम्मं ण बंधड़ ॥7॥

अन्वयार्थ - अब शिष्य प्रश्न करता है = हे भगवन। यदि ऐसा है, तो मुनि कहं कैसे चरे-चले, कहं = कैसे, चिड्डे- खड़ा रहे, कहं - कैसे, आसे = बैठे, कह = कैसे, सए = सोवे, कहं = कैसे भुंजंतो = भोजन करता हुआ और कहं = कैसे, भासंतो = बोलता हुआ, पावं = पाप, कम्मं = कर्म, न = नहीं, बंधड़ = बाधता है ॥7॥

जयं चरे जयं चिड्डे, जयमासे जयं सए।

जयं भुंजंतो भासंतो, पावकम्मं ण बंधड़ ॥8॥

अन्वयार्थ - गुरु उत्तर देते हैं कि जयं = यतनापूर्वक, चरे = चले, जय = यतनापूर्वक, चिड्डे = खड़ा रहे, जयं = यतनापूर्वक, आसे = बैठे, जय वयतनापूर्वक, सए-सोवे, जयं = यतनापूर्वक, भुंजंतो = भोजन करता हुआ और, जय = यतनापूर्वक, भासंतो = बोलता हुआ, पावं = पाप, कम्मं = कर्म, न = नहीं, बंधड़ = बांधता है।

सव्वभूयप्पभूयस्स संमं भूयाइं पासओ।

पिहियासवस्स दंतस्स, पावकम्मं ण बंधड़ ॥9॥

अन्वयार्थ - सव्वभूयप्पभूयस्स = संसार के समस्त प्राणियों को अपनी आत्मा के समान समझने वाले, संमं = सम्यक् प्रकार से, भूयाइं = सभी जीवों को, पासओ = देखने वाले, पिहियासवस्स = आश्रवों को रोकने वाले और, दंतस्स = इन्द्रियों को दमन करने वाले के, पावं = पाप, कम्मं = कर्म, न = नहीं, बंधड़ = बाँधता है ॥9॥

पढमं णाण तओ दया, एवं चिद्धइ सब्संजए ।
अण्णाणी किं काही, कि वा णाही सेयपावगं ॥10॥

अन्वयार्थ - पढमं = पहले, नाणं = ज्ञान है, तओ = उसके पश्चात, दया = दया है, एव = इस प्रकार, सब्संजए = सभी साधु, चिद्धइ = आचरण करते हैं । अण्णाणी = सम्यक ज्ञान से रहित अज्ञानी पुरुष, कि = क्या, काही = कर सकता है और, किवा = कैसे, सेयपावगं = पुण्य और पाप को, नाही = जान सकता है ।

भावार्थ - सबसे पहला स्थान ज्ञान का है और उसके बाद दया अर्थात् क्रिया है । ज्ञानपूर्वक क्रिया से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है । अज्ञानी, जिसे साध्य-साधन का भी ज्ञान नहीं है, वह क्या कर सकता है ? वह अपने कल्याण और अकल्याण को भी कैसे समझ सकता है ?

सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं ।
उभयं पि जाणइ सोच्चा, जं सेयं तं समायरे ॥11॥

अन्वयार्थ - सोच्चा = सुनकर ही, कल्लाणं - कल्लाण को जाणइ - जानता है, सोच्चा = सुनकर ही, पावग - पाप को, जाणइ = जानता है और, उभयं पि = दोनों को भी, सोच्चा = सुनकर ही, जाणइ = जानता है, अतः जं = जो, सेय = आत्मा के लिए हितकारी हो, त = उसका, समायरे = आचरण करे ॥11॥

भावार्थ - हिताहित का ज्ञान सुनकर ही होता है । इसलिए इनमें से जो श्रेष्ठ हो, उसी में प्रवृत्ति करनी चाहिए ।

जो जीवे वि ण याणेइ, अजीवे वि ण याणेइ ।
जीवाजीवे अयाणंतो, कहं सो णाहीइ संजमं ॥12॥

अन्वयार्थ - जो = जो, जीवे वि = जीव के स्वरूप को, न = नहीं याणेइ = जानता और, अजीवे वि = अजीव के स्वरूप को भी, न = नहीं, याणेइ = जानता । जीवाजीवे = इस प्रकार जीवाजीव के स्वरूप को, अयाणतो = नहीं जानने वाला, सो = वह साधक, संजम = सयम को, कह = कैसे, नाहीइ = जानेगा अर्थात् नहीं जान सकता ॥12॥

जो जीवे वि वियाणेइ, अजीवे वि वियाणेइ ।
जीवाजीवे वियाणंतो, सो हु णाहीइ संजमं ॥13॥

अन्वयार्थ - जो = जो जीवे वि = जीव का स्वरूप वियाणेइ = जानता है तथा, अजीवे वि = अजीव का स्वरूप भी, वियाणेइ = जानता है । इस प्रकार, जीवाजीवे = जीव और अजीव के स्वरूप को, वियाणंतो = जानने वाला, सो = वह साधक, हु = निश्चय ही, सजम = सयम के स्वरूप को, नाहीइ = जान सकेगा।

जया जीवमजीवे य, दो वि एए वियाणेइ ।
तया गइं बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ ॥14॥

अन्वयार्थ - जया = जब आत्मा, जीवमजीवे = जीव और अजीव, ए ए = इन दोनों को, वियाणइ = जान लेता है, तया = तब, सव्व जीवाण = सभी जीवों की, बहुविहं = बहुत भेदों वाली, गइं = नरक, तिर्यच आदि नानाविध गति को भी, जाणइ = जान लेता है ॥ 14॥

भावार्थ - इस गाथा में तथा आगे की गाथाओं में ज्ञान प्राप्ति से लेकर मोक्ष प्राप्ति तक का क्रम बतलाया गया है ।

जया गइं बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ ।
तया पुण्णं च पावं च, बंधं मुक्खं च जाणइ ॥15॥

अन्वयार्थ - जया = जब आत्मा, सव्वजीवाण = सभी जीवों की, बहुविहं = बहुत भेदों वाली, गइं = नरक तिर्यच आदि नानाविध गति को, जाणइ = जान लेता है, तया = तब, पुण्ण = पुण्य, च = और पाव = पाप को, च = तथा, बंध = बन्ध, च = और, मुक्ख = मोक्ष को भी, जाणइ = जान लेता है ॥15॥

जया पुण्णं च पावं च, बंधं मुक्खं च जाणइ ।
तया निव्विंदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे ॥15॥

अन्वयार्थ - जया = जब, पुण्ण = पुण्य, च = और, पाव = पाप को, च =

तथा, बध = बन्ध, च = और, मुख्य = मोक्ष को भी, जाणइ = जान लेता है, तया = तब, जे दिव्वे = जो देव, य = ओर, जे माणुसे = मनुष्य सबधी, भोए = काम भोग है, उनकी, निव्विदए = असारता को समझ कर उन्हें छोड़ देता है ॥16॥

जया निव्विदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे ।

तया चयइ सजोग, सब्भितरबाहिर ॥17॥

अन्वयार्थ - जया = जब, जे दिव्वे = जो देव, य = और, जे माणुसे - मनुष्य सबधी, भोए = काम = भोगों की, निव्विदए = असारता को समझ कर उन्हें छोड़ देता है, तया = तब, सब्भितरबाहिर = राग - द्वेष कषाय रूपआभ्यतर और माता-पिता तथा सम्पत्ति रूप बाह्य, सजोग = सयोग को, चयइ = छोड़ देता है।

जया चयइ सजोगं, सब्भितरबाहिरं ।

तया मुण्डे भवित्ता ण, पव्वइए अणगारिय ॥18॥

अन्वयार्थ - जया - जब, सब्भितरबाहिर- आभ्यन्तर और बाह्य, सजोग - सयोग को, चयइ - छोड़ देता है, तया- तब, मुण्डे - द्रव्य और भाव से मुण्डित, भवित्ताण - होकर, अणगारिय - अनगार वृत्ति को, पव्वइए - ग्रहण करता है ॥18॥

जया मुण्डे भवित्ताणं, पव्वइए अणगारिय ।

तया संवरमुक्किट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तर ॥19॥

अन्वयार्थ - जया = जब, मुण्डे = द्रव्य और भाव से मुण्डित, भवित्ताण = होकर, अणगारिय अनगार वृत्ति, पव्वइए = ग्रहण करता है, तया = तब, उक्किट्ठ = उत्कृष्ट और, अणुत्तर = सर्वश्रेष्ठ, संवर धम्मं = संवर धर्म को, फासे = प्राप्त करता है ॥19॥

जया संवरमुक्किट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तर ।

तया धुणइ कम्मरय, अबोहिकलुस कड ॥20॥

अन्वयार्थ - जया = जब, उक्किट्ठ = उत्कृष्ट और, अणुत्तर = प्रधान, संवर धम्म = संवर धर्म को, फासे = प्राप्त करता है । तया तब, अबोहिकलुस आत्मा के मिथ्यात्व से उपर्जित किए हुए, कम्मरय = कर्म रूपी रज को,

झाड देता है ॥20॥

जया धुणइ कम्मरयं, अबोहिकलुसं कड ।

तया सब्बत्तगं णाणं, दंसणं चाभिगच्छइ ॥21॥

अन्वयार्थ - जया = जब, अबोहिकलुस कड = आत्मा के मिथ्यात्व परिणाम द्वारा उपार्जित किए हुए, कम्मरय = कर्म रूपी रज को, धुणइ = झाड देता है, तया = तब, सब्बत्तग - सभी पदार्थों को जानने वाले, नाण = केवल ज्ञान, च = और दसण = केवल - दर्शन को, अभिगच्छइ = प्राप्त कर लेता है ॥21॥

जया सब्बत्तगं णाणं, दंसणं चाभिगच्छइ ।

तया लोगमलोग च, जिणो जाणइ केवली ॥22॥

अन्वयार्थ - जया = जब, सब्बत्तग = सभी पदार्थों को जानने वाले, नाण = केवल ज्ञान, च = और, दंसणं = केवल दर्शन को, अभिगच्छइ = प्राप्त कर लेता है, तया = तब, जिणो = राग - द्वेष का विजेता, केवली- केवल ज्ञानी होकर, लोग = लोक, च = और अलोगं = अलोक के स्वरूप को भी, जाणइ = जान लेता है ॥ 22॥

जया लोगमलोग च, जिणो जाणइ केवली ।

तया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसि पडिवज्जइ ॥23॥

अन्वयार्थ - जया = जब, जिणो = राग-द्वेष का विजेता, केवली = केवल ज्ञानी हो कर, लोग = लोक, च = और, अलोगं - अलोक को, जाणइ = जान लेता है, तया = तब आत्मा, जोगे = मन, वचन और काया के योगों का, निरुंभित्ता = निरोध कर के, सेलेसि = शैलेशीकरण को, पडिवज्जइ = प्राप्त करता है ॥23॥

जया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ।

तया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ णीरओ ॥24॥

अन्वयार्थ - जया = जब, जोगे = मन, वचन और काया के योगों का, निरुंभित्ता = निरोध कर के, सेलेसि = शैलेशीकरण, पडिवज्जइ = प्राप्त करता है, तया = तब आत्मा, नीरओ = कर्म रूपी रज से रहित होकर और, कम्म= समस्त कर्मों का, खवित्ताण = क्षय करके सिद्धि = मोक्ष में गच्छइ = चला जाता

है ॥24॥

जया कम्मं खवित्ताण, सिद्धिं गच्छइ नीरओ ।

तया लोगमत्थयत्थो, सिद्धो हवइ सासओ ॥25॥

अन्वयार्थ - जया = जब नीरओ = कर्म रुपी रज से रहित होकर नीरओ कम्म = समस्त कर्मों का, खवित्ताण = क्षय करके, सिद्धि = मोक्ष, गच्छइ = चला जाता है, तया = तब आत्मा, लोगमत्थयत्थो = लोक के अग्रभार पर स्थित, सासओ = शाश्वत, सिद्धो = सिद्ध, हवइ = हो जाता है ॥25॥

सुहसायगस्स समणस्स, सायाउलगस्स णिगाम साइस्स।

उच्छोलणा पओअस्स, दुल्लहा सुगई तारिसगस्स ॥26॥

अन्वयार्थ - सुहसायगस्स = सुख में आसक्त रहने वाले, सायाउलगस्स = सुख के लिए व्याकुल रहने वाले, निगामसाइस्स = अत्यंत सोने वाले, उच्छोलणा पओअस्स = शरीर की विभूषा के लिए हाथ - पाँव आदि धोने वाले, तारिसगस्स = साधु को, सुगई = सुगति मिलना, दुल्लहा = दुर्लभ है ॥26॥

तवोगुणपहाणस्स, उज्जुमइ खतिसंजमरयस्स ।

परीसहे जिणंतस्स, सुल्लहा सुगई तारिसगस्स ॥27॥

अन्वयार्थ - तवोगुणपहाणस्स = तप रुपी गुणों से प्रधान, उज्जुमइ = सरल बुद्धि वाले, खतिसंजमरयस्स = क्षमा और संयम में रत, परीसहे = परीक्षा में, जिणंतस्स = जीतने वाले, तारिसगस्स = साधु को, सुगई = सुगति, सुल्लहा = सुलभ है ॥27॥

भावार्थ - तप सयम में अनुरक्त, सरल प्रकृति वाले तथा दाहक प्रवृत्ति वाले समभावपूर्वक सहन करने वाले साधक के लिए सुगति प्राप्त होना सुलभ है

सयम स्वीकार करते हैं, तो ते = वे, खिप्प = शीघ्र, अमरभवणाइ = स्वर्ग अथवा मोक्ष को, गच्छति = प्राप्त हो जाते हैं ॥28॥ भावार्थ - पूर्ण वैराग्य के साथ थोड़े समय तक पालन किया हुआ संयम भी सुगति देने वाला होता है ।

इच्चेयं छज्जीवणियं, सम्मदिट्ठी सया जए ।

दुल्लहं लहितु सामण्णं, कम्मुणा ण विराहिज्जासि । त्ति बेमि ।

अन्वयार्थ - सया = सदा, जए = यतनापूर्वक प्रवृत्ति करने वाला, सम्मदिट्ठी-सम्यग्दृष्टि, दुल्लहं = दुर्लभ, सामण्णं = साधुपने की, लहितु - प्राप्त करके, इच्चेयं = पूर्वोक्त स्वरूप वाले, छज्जीवणियं = छ जीवनिकाय की, कम्मुणा = मन, वचना, काया से, ण विराहिज्जासि = विराधना न करे ॥29॥ त्तिबेमि = श्री सुधर्मा स्वामी, जम्बूस्वामी से कहते हैं कि जैसा मैंने भगवान् महावीर स्वामी से सुना है, वैसा ही कहा है ।

॥ छज्जीवणिया नामक चौथा अध्ययन समाप्त ॥

अर्थ सहयोगी

जय गुरु नाना ॥

॥ जय गुरु राम ॥

आचार्य श्री १००८ श्री रामलालजी जी म. सा. द्वारा घोषित
ज्ञान चेतना वर्ष - २००५-०६ पर हार्दिक शुभकामनाएं

रामेशाचार्य महान है तब संयम गुण खान ॥
ऐसे सुझानी आचार्य श्री की मेरा अनेक प्रणाम ॥

राम गुरु का है करमान,
हर श्रावक बन जाये क्रियावान ॥

शुभेच्छुक

सुन्दरलाल विनीतकुमार दुगड

63, पार्क स्ट्रीट, पोस्ट - कोलकाता
(पश्चिम बंगाल)

Tel : (033) - 22299840 / 22160031

(O) (033) - 22483350 / 51466941

(Mo.)(033) - 9830032021

अर्थ सहयोगी

॥ जय गुरु नाना ॥

॥ जय गुरु राम ॥

आचार्य श्री रामलालजी म.सा. द्वारा घोषित : ज्ञान चेतना वर्ष 2005-2006

Deepak Gems



U.K. BUILDERS

210, Panchratna, Opera House,
Mumbai - 400 004.

Tel : (O) : 23680097, 23680189
(R) : 23649821, 23616100

पूज्य पिताश्री सेठ श्री माणकचंदजी सांखला जेठाना-(राजस्थान)

पूज्य मातुश्री श्रीमती भंवर कंवर सांखला जेठाना (राजस्थान)

माणकचन्द, कंवर लाल, दीपक, राजीव, आदित्य, आयुष्य
एवं समस्त सांखला परिवार,
निहालचंद, ज्ञानचंद एवं समस्त संचेती परिवार

शुभेच्छुक

कंवरलाल सांखला

मंत्री : अ.भा.साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर

उपाध्यक्ष : श्री साधुमार्गी जैन संघ, मुंबई

